MAPA- 603

# कार्मिक प्रशासन (भाग- 1)

# PERSONNEL ADMINISTRATION

## (Part- 1)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

## अध्ययन मंडल

| | |
|---|---|
| प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे<br>निदेशक- समाज विज्ञान विद्या शाखा<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी | प्रो0 अजय सिंह रावत<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी |
| प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग<br>केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड | प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य )<br>राजनीति विज्ञान विभाग<br>कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड |
| डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर, राजनीति विज्ञान<br>जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश | डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी |
| डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड | |

**पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन**

डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर)
लोक प्रशासन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

| **इकाई लेखक** | **इकाई संख्या** |
|---|---|
| डॉ0 मनीषा माथुर, लोक प्रशासन विभाग, कनोरिया राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय , जयपुर | 1, 2, 3, 4 |
| डॉ0 जाकिर हुसैन, सेवानिवृत प्रोफेसर<br>सहसवानी टोला, ओल्ड सीटी, बरेली, उत्तर प्रदेश | 5, 6, 7,8, 9 |
| प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी, राजनीति विज्ञान विभाग<br>एस0बी0एस0 पी0जी0 कालेज, रूद्रपुर | 10, 11, 12 |

**प्रकाशन वर्ष- 2022**

**कापीराइट @** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

**प्रथम संस्करण-** 2022

प्रकाशक निदेशालय- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
प्रकाशन से पूर्व की प्रति।

## अनुक्रम


| खण्ड-1 कार्मिक प्रशासन | |
|---|---|
| **1.** कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, प्रकृति और क्षेत्र | 1 – 13 |
| **2.** कार्मिक प्रशासन के कार्य और महत्व | 14 – 23 |
| **3.** प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उनकी भूमिका | 24 – 37 |
| **4.** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं | 38 – 48 |
| **खण्ड-2 भारत में लोक सेवा** | |
| **5.** आधुनिक नौकरशाही के सन्दर्भ में लोकसेवा | 49 – 61 |
| **6.** नौकरशाही के आधार | 62 – 71 |
| **7.** भारत में लोक सेवा का विकास | 72 – 84 |
| **8.** सेवाओं का वर्गीकरण | 85 – 96 |
| **9.** सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ | 97 – 108 |
| **खण्ड-3 कार्मिक अभिकरण** | |
| **10.** संघ लोक सेवा आयोग/राज्य लोक सेवा आयोग/कर्मचारी चयन आयोग | 109 – 126 |
| **11.** केन्द्रीय और राज्य प्रशिक्षण संस्थान | 127 – 144 |
| **12.** प्रशासनिक अधिकरण | 145 – 156 |

# इकाई- 1 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, प्रकृति एवं क्षेत्र

**इकाई की संरचना**

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा
    1.2.1 कार्मिक प्रशासन: परिभाषा एवं अर्थ
1.3 कार्मिक प्रशासन: विकास के चरण
1.4 कार्मिक प्रशासन: प्रकृति
1.5 कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र
1.6 निष्कर्ष
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.0 प्रस्तावना

किसी भी देश के उद्देश्यों की प्राप्ति में सबसे महत्वपूर्ण इकाई संगठन ही होता है एक सफल संगठन ही देश की सफलता की सबसे प्रथम आवश्यकता होती है। किसी भी संगठन को सफल बनाने हेतु दो बातें आवश्यक होती हैं। प्रथम, उसमें उपलब्ध मानव शक्ति की गुणवत्ता, द्वितीय नेतृत्व की गुणवत्ता। अर्थात, शक्ति संगठन को सफल नहीं बना सकती सफलता के लिये मानव शक्ति की आवश्यकता होती है। यद्यपि, संगठन के सफलतापूर्वक संचालन में वित्तीय, तकनीकी एवं अन्य प्रकार के साधनों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है, परन्तु सबसे श्रेष्ठ स्थान या भूमिका उसमें उपस्थित मानव संसाधन की होती है। कार्मिक प्रशासन मानव साधनों के उचित प्रबंधन से जुड़ा होता है। इस इकाई में हम कार्मिक प्रशासन के इन्हीं पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन के विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को समझ पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की विभिन्न परिभाषा ओं के आधार पर उसके अर्थ को जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की प्रकृति का विवेचन कर पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र को विस्तार पूर्वक समझ पाएंगे।

## 1.2 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा

आधुनिक युगलोक कल्याणकारी राज्यों का युग है, जहां विकास एवं कल्याण से संबंधित सभी कार्य प्रशासन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। सरकार का यही उत्तरदायित्व संगठनों के कार्य, उत्तरदायित्व, गतिविधियों आदि में

सीमित वृद्धि करता है इसके परिणाम स्वरूप संगठनों की मांग तो बढ़ती ही है साथ ही साथ उनसे कार्यकुशलता की अपेक्षाएं भी बढ़ती जाती हैं, क्योंकि संगठन की सफलता इस बात पर ही निर्भर करती है कि उस में कार्यरत कर्मचारी विकास की बढ़ती गति एवं मांग के साथ किस प्रकार से सामंजस्य बिठाता है एवं संगठन के हितों के लिए कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को समझने के लिए हम इसके विकास के चरणों इसकी परिभाषा अर्थ एवं प्रकृति के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं।

### 1.2.1 कार्मिक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा

आदि काल से लेकर अब तक मानव सभ्यताओं तथा संस्कृति का अत्यधिक विकास हुआ है। विश्व इतिहास के पन्नों में वर्णित तथा अवर्णित शासन व्यवस्थाओं ने भी विकास की इस प्रक्रिया में व्यापक भूमिका निभायी है।
विकास की ये सदियों पुरानी प्रक्रिया संगठनात्मक प्रयासों तथा संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर करती रही है।विकास के लिए आवश्यक संसाधनों में मशीन, प्राकृतिक सामग्री,तकनीक,वित्त तथा श्रम शक्ति की उपलब्धता प्राथमिक शर्त है।समस्त प्रकारके संसाधनों में मानव श्रम शक्ति अर्थात कर्मचारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शेष संसाधनों का सदुपयोग मानवीय कुशलता तथा प्रतिबद्धता पर ही निर्भर करता है। अतः वर्तमान प्रशासनिक परिदृश्य में सर्वाधिक ध्यान मानव संसाधन विकास (Human Resource Development) पर दिया जा रहा है।प्रशासन तथा प्रबंध से संबद्ध इकाइयों में कार्मिक प्रशासन को अब एच. आर. डी.(H.R.D.) भी कहते हैं, क्योंकि संगठनात्मक लक्ष्यों की संपूर्ति तथा उस संगठन की छवि उसमें कार्यरत कार्मिकों पर ही निर्भर करती है। इसलिए ई. एन. ग्लैडेन कहते हैं- "लोक प्रशासन में कर्मचारी ही मुख्य तत्व है।"
संगठन अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण होता है परंतु वास्तविक रूप में वह अकेला कुछ नहीं कर सकता। वास्तविक रूप में उसमें काम करने वाले स्त्री-पुरुष जो विभिन्न उच्च और निम्न पदों पर नियुक्त होते हैं वो बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यदि संगठन में से कार्मिक को निकाल दें तो वह एक अमूर्त वस्तु बन जाता है, अर्थात वह पारस्परिक संबंधों की एक ऐसी व्यवस्था मात्र रह जाता है जो संगठन के मस्तिष्क में अथवा काग़ज़ पर ही होती है। संगठन के भीतर विविध पदों पर कार्य करने वाले कार्यकर्ता, अधिकारी अथवा सेवक सामूहिक रूप से कार्मिक अथवा सेवकों के नाम से पुकारे जाते हैं।
किसी भी देश का प्रशासन वास्तविक रूप में सेवीवर्ग अथवा कार्मिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है।शासन में नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक नेतृत्व द्वारा किया जाता है, लेकिन उन नीतियों को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व सेवीवर्ग पर है। राज्य की कल्याणकारी स्वरूप के विस्तार के साथ-साथ सेवीवर्ग अथवा कार्मिक प्रशासन का महत्व बढ़ता जा रहा है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सफल सेवीवर्ग प्रशासन जहाँ एक ओर प्रशासन की सफलता के लिए परमावश्यक है, वहीं दूसरी ओर लोक-कल्याण की अभिवृद्धि का भी आधार-स्तंभ है। अत: प्रशासन-यन्त्र को संचालित करने वाले इन लोगों का ध्यान रखें बिना सम्पूर्ण प्रशासकीय ढांचा चरमरा जाएगा और प्रशासकीय प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाएगी। अर्थात प्रशासन के मानवीय पहलू की अपेक्षा अधिक घातक होगी। व्यवहार में, वहीं प्रशासन सफल हो सकता है जो मानव-स्वभाव और मानवीय आकांक्षाओं के अनुरूप हो। सेवीवर्ग प्रशासन अथवा कार्मिक प्रबन्ध वह केन्द्र बिन्दु है जिसके इर्द-गिर्द प्रशासन की विविध समस्याएं छायी रहती हैं। सुयोग्य और कुशल कर्मचारी प्रशासकीय ढांचे और प्रशासकीय प्रक्रिया की निर्बलताओं को दूर करके प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति को संभव बनाते हैं, जबकि अयोग्य और अकुशल कर्मचारी श्रेष्ठ प्रशासनिक ढांचे और प्रक्रिया को निर्बल और अस्त-व्यस्त बना देते हैं। इस संबंध में हरमन फ़ाइनर का कहना है, "लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।" इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सुगठित तथा सुविचारित सेवीवर्ग प्रशासन ही किसी प्रशासनिक संगठन की सफलता का मुख्य आधार है। नीग्रो का मानना है कि, कार्मिकों की कुशलता तथा योग्यता ही संगठन की सफलता को निर्धारित करती है। योग्य तथा

प्रतिबद्ध कर्मचारी, कमजोर प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों को दूर कर उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल रहते है जबकि अयोग्य तथा निकृष्ट कर्मचारी सर्वोत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को भी असफल सिद्ध कर सकते है।"

उपरोक्त वर्णित अवधारणा की विवेचना के उपरान्त अब कार्मिक प्रशासन के अर्थ को विस्तार से समझते हैं। कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिक संसाधनों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है,इसके लिए पूर्व विचारित नियमों,परंपराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के विकास, प्रतिधारण और चयन में किया जाता है ताकि वैज्ञानिक और व्यवस्थित ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। सरल शब्दों में कार्मिक प्रशासन कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन, भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवा निवृत्ति आदि आयामों को समाहित किया जाता है।

कार्मिक प्रशासन को सेवीवर्गीय या स्टाफ़ प्रबंध या जनशक्ति प्रबंध के नाम से भी जाना जाता है। औद्योगिक संस्थानों में कार्मिक प्रशासन से सम्बंधित प्रकरण "कर्मचारी प्रबन्ध", मानव संसाधन प्रबन्ध या "श्रम सम्बन्ध" या "औद्योगिक सम्बन्ध" के नाम से भी समझे जाते हैं। कार्मिक प्रशासन के प्रति गम्भीर चिन्तन उत्पन्न कराने में एफ. डब्लू. टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान है।

कार्मिक प्रशासन के अर्थ को और स्पष्टता से समझने के लिए आइए इसकी कुछ परिभाषाओं को देखा जाए-

नैशनल इन्स्टिटूट ऑफ़ पर्सोनेल मैनेजमेंट (National Institute of Personnel Management) ने कार्मिक प्रशासन को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है, ''कार्मिक प्रबन्ध प्रबन्धन कार्य का वह भाग है जिसका सम्बन्ध प्रमुखतया संगठन के भीतर मानवीय रिश्तों से होता है। इसका उद्देश्य इन रिश्तों को ऐसे आधार पर बनाए रखना है जो व्यक्ति की भलाई को ध्यान में रखते हुए उन सभी को जो उस संगठन में कार्य करते हैं, इस योग्य बनाता है कि वे संगठन के प्रभावकारी रूप से चलने में अपना योगदान दें।''

पीयर्स और मायर्स का कथन है कि ''कार्मिक प्रबन्ध, कर्मचारियों की समर्थता को विकसित करने का एक तरीक़ा है ताकि वे अपने कार्य से अधिकतम संतोष प्राप्ति करें और संगठन के लिए अपने उत्तम प्रयास करें।''

मार्शल ई. डिमॉक के अनुसार, ''कार्मिक प्रशासन ऐसी प्रशासनिक प्रक्रियाओं का नाम है जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार लक्ष्यों का नियम तथा परिवर्तन किया जाता है।''

एडविन फ़िलपो के विचरानुसार, "सेवीवर्ग प्रबन्ध, कार्य करने वालों लोगों अर्थात कर्मचारियों की कार्य सम्पन्नता को नियोजित, संगठित, निर्देशित तथा नियंत्रित करता है।"

इस प्रकार विभिन्न परिभाषाओं के द्वारा कार्मिक प्रशासन का अर्थ विस्तार से जान लेने के बाद ये भी जान लें कि सरकारी कार्यालयों एवं निजी संगठनों में कार्मिक प्रशासन से सम्बंधित व्यवस्था भी अलग अलग प्रकार से देखी जा सकती है या उपस्थित होती है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में चूँकि कार्यों की प्रकृति, उत्पादन, वितरण, विनियोजन, कार्मिक प्रकरणों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, अतः वहाँ कार्मिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए एक पृथक से इकाई, शाखा या विभाग होता है, जो एक वरिष्ठ प्रबन्धक के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसके विपरीत सरकारी विभागों या कार्यालयों में प्रायःअलग से कार्मिक प्रशासन की कोई इकाई नहीं होती है, बल्कि सम्बन्धित कार्यालय या विभाग में कार्मिकों के लिए दी जाने वाली प्रक्रियाएं ही सामूहिक रूप से कार्मिक प्रशासन कहलाती हैं। संबंधित कार्यालय का अधिकारी ही कार्मिक अधिकारी होता है। सरकारी कार्यालयों में सामान्य रूप से दो शाखाएं अवश्य होती है- संस्थापना शाखा(Establishment branch) और लेखा शाखा (Accounts branch)। इन दो शाखाओं के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक शाखाएं भी संबंधित कार्यालय की कार्य प्रकृति के अनुसार गठित की जाती है।

संस्थापना शाखा को कार्मिक प्रशासन का लघु रूप माना जाता है। कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतनवृद्धि, पदोन्नति इत्यादि का कार्य इसी शाखा के द्वारा देखा जाता है। सरकारी पैसे को राजकोष से निकालने, व्यय करने, बिल तैयार करने तथा वेतन इत्यादि का समस्त कार्य लेखा शाखा द्वारा सम्पादित होता है। कार्मिक

प्रकरणों के सभी वित्तीय मामले इसी शाखा के द्वारा निपटाए जाते हैं।अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि,कार्मिकों से सम्बंधित विभिन्न कार्य एवं उनका कार्यान्वयन कार्मिक प्रशासन कहला सकता है ,फिर चाहे वह किसी भी शाखा से संपादित किया जाए।

उपरोक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के माध्यम से कार्मिक प्रशासन की कुछ विशेषताओं को इंगित किया जा सकता है-

- कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों अर्थात मानवीय तत्वो से सम्बंधित होता है।
- संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक  होता है।
- कर्मचारियों को संगठनमें लाने, उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से सम्बन्धित कार्य करता है।
- कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर से प्रभावित होता है।
- कर्मचारियों की क्षमताओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करता है।
- संगठात्मक विकास के लिए यह एक आवश्यक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
- समग्र प्रशासन का वह भाग है जो कार्मिक मामलों से सम्बंधित है।

## 1.3 कार्मिक प्रशासन के विकास के चरण

राष्ट्रीय स्तर पर कार्मिक प्रशासन के विकास के चरणों को देखने से पहले आइए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्मिक प्रशासन के विकास को समझते हैं। ब्रिटेन में कुछ उद्यमियों ने कल्याणकारी विचारधारा को अपनाया, जिसके कारण वहां पर स्वत: ही आधुनिक कार्मिक प्रशासन की स्थापना हो गई। जबकि दूसरी तरफ अमेरिका की बात करें तो कार्मिक प्रबंध की धारणा का विकास  वास्तव में यही पर हुआ माना जाता है। इस तथ्य को समझने के लिए निकोलस हेनरी द्वारा अमेरिका में सरकारी तंत्र के कार्मिक प्रशासन अर्थात लोक कार्मिक प्रशासन द्वारा विश्लेषित 7 चरणों को देखते हैं- प्रथम चरण(1789-1829), द्वितीय चरण(1829-1883), तृतीय चरण(1883-1906), चतुर्थ चरण(1906-1937), पंचम चरण (1937-1955), षष्टम चरण(1955-1970 ), सप्तम चरण (1970-tl ll date)

प्रथम काल को एल. डी. व्हाइट ने भद्रजनों द्वारा शासन माना, क्योंकि इस समय अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज वॉशिंगटन ने संघीय नौकरशाही में योग्य तथा प्रतिभावान लोगों को नियुक्त करने को प्राथमिकता दी। 1832 में अमरीकी सीनेटर विलियम एल. आर. मर्की  ने 'लूट प्रणाली' का नाम दिया था, क्योंकि उस समय एंड्रयू जैक्सन के काल में नौकरशाही लूट प्रणाली से भरी थी। चतुर्थ काल एफ.डब्लू. टेलर के वैज्ञानिक प्रबंधन का दौर था। वैज्ञानिक प्रबंधन का यह सिद्धांत  ही वास्तव में कार्मिक प्रशासन की आधारशिला था।

टेलर ने कार्मिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन या भर्ती, व्यवस्थित प्रशिक्षण व्यवस्था तथा कार्मिकों के व्यक्तिगत विकास पर अत्यधिक बल दिया था और उनके ही सहयोगी एच. एल. गेंट  ने कहा था कि इस वैज्ञानिक प्रबंध आंदोलन को सफल बनाने में कार्मिकों की भागीदारी होना अति आवश्यक है। गेंट ने कहा कि कार्मिकों को केवल यह बताना ही काफी नहीं होगा कि उन्हें कैसे काम करना चाहिए बल्कि उन्हें इस बात के लिए भी तैयार करना होगा कि वे अपना काम अपनी पूरी काबिलियत के साथ निभा सके। इसी के साथ मेरी  पार्कर फ़ौलेट ने भी प्रबंध

के प्रशिक्षण तथा विकास आयामों पर जोर दिया।अर्थात इस दौर में वैज्ञानिक प्रबंधन का समर्थन करने वाले सभी लोगों ने कार्मिकों में कार्यकुशलता बढ़ाने तथा उनमें से अपने कार्य के प्रति उदासीनता को रोकने का प्रयास किया।

इसके बाद कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में करीब करीब इसी काल में भारी हलचल एल्टन मेयो के हार्थॉर्न प्रयोगों के द्वारा मची प। इन प्रयोगों के द्वारा मानव संबंधों के अध्ययन का आंदोलन प्रारंभ हुआ। आगे जाकर इसी के कारण कार्मिक प्रबंध के सिद्धांत तथा व्यवहार विकसित होने लगे।

पंचम चरण में ब्राउन्लो समिति की प्रशासनिक प्रबंधन पर एक रिपोर्ट आई जिसने लोक प्रशासन को प्रबंध की ओर झुकाया। षष्ठम् चरण में लोक सेवाओं में पेशेवर अंदाज को बढ़ावा मिला। सप्तम चरण में राजनीति और प्रशासन में आपस में समीपता बहुत बढ़ी।

इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत में सरकार के अथक प्रयासों के कारण ही कार्मिक प्रशासन की उन्नति हुई है। भारत में कार्मिक प्रबंधन के क्षेत्र में सरकार की रुचि ऐसे ही नहीं बनी थी। इसके पीछे अनेक कारण उत्तरदायी थे, जैसे उत्पादन के स्तर में कमी श्रमिकों का असंतोष एवं भर्ती के अव्यवस्थित तरीके आदि। वास्तव में तो कार में प्रबंध की धारणा का विकास तो संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था । हमारे देश भारत में कार्मिक प्रबंध के विकास का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। 1920 के दशक में पैदा हुए औद्योगिक विवादों ने सरकार व उद्योगपतियों का ध्यान श्रमिक समस्याओं का उचित कार्मिक प्रबंधन व्यवस्था के द्वारा समझाने की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। यही कारण रहा कि 1920 में ही कई बड़े औद्योगिक संस्थानों व कल कारखानों में श्रमिक कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इन अधिकारियों ने श्रमिकों की शिकायतों को निपटाने के साथ-साथ औद्योगिक भाईचारे को भी बढ़ाने का काम किया। इसके पश्चात वर्ष 1937 में बंगाल सरकार के सुझाव पर भारतीय जूट मिल परिषद ने पहले तो एक श्रमिक कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की एवं इसके द्वारा श्रमिकों की शिकायतों का सफल रूप से सुलझाएं जाना देख, बाद में 1939 में पांच अन्य अधिकारियों की भी नियुक्ति की गई। इसके बाद भारतीय चाय परिषद तथा भारतीय इंजीनियरिंग परिषद ने भी इस व्यवस्था का अनुसरण अपने अपने संस्थानों में किया। वर्ष 1941 में भारत सरकार ने एक त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन बुलाया जिसमें सरकार, श्रमिकों तथा कर्मचारियों के प्रवक्ता शामिल हुए। इस सम्मेलन का उद्देश्य एक समान विधान के काम को बढ़ावा देना, औद्योगिक विवादों को सुलझाने की एक निश्चित कार्य विधि सुझाना तथा औद्योगिक मामलों के संदर्भ में सलाह मशवरे को बढ़ावा देना था। वर्ष 1948 में जो कारखानों का अधिनियम बनाया गया, उसके तहत हर उद्योग में एक कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गई और साथ ही इनके नियुक्ति की प्रणाली, कर्तव्य और योग्यताओं के बारे में भी बताया गया इसी प्रकार से बाद के वर्षों में भी और इसी प्रकार के एक और अधिकारी की नियुक्ति की गई और उसे 'कार्मिक अधिकारी' का नाम दिया गया। यह अधिकारी श्रमिक कल्याण, औद्योगिक संबंधों तथा कार्मिक प्रशासन की समस्याओं को निपटाता है। यही कारण है कि अब भारत की लगभग हर कंपनी में ना केवल विशेषीकृत कार्मिक विभाग पाए जाते हैं, बल्कि इनमें पूर्णकालिक कार्मिक अधिकारी भी नियुक्त किए जाते हैं।

## 1.4 कार्मिक प्रशासन की प्रकृति

अब तक आप यह तो समझ ही गए होंगे कि, संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी अर्थात निजी, कार्मिक प्रशासन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है एवं उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। इसको और स्पष्ट तौर पर ऐसे भी समझा जा सकता है कि, हर संगठन के कुछ निश्चित उद्देश्य तथा लक्षण होते हैं एवं उन लक्षण एवं उद्देश्यों की प्राप्ति का एकमात्र साधन कार्मिक प्रशासन ही होता है। संगठन स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है अर्थात यदि सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक पर्यावरण में परिवर्तन आता है तो संगठन के प्रबंधन को भी सामंजस्य स्थापित करने हेतु परिवर्तित होना पड़ता है और क्योंकि प्रबंधन परिवर्तित होता है तो कार्मिक प्रशासन

भी प्रभावित होता है। कार्मिक प्रशासन पर यह प्रभाव कार्मिकों के बदलते जीवन मूल्यों उनकी संगठन से अपेक्षाओं, कार्यकुशलता आदि के रूप में प्रदर्शित होता है।

आपको ज्ञात होगा कि किसी भी संगठन में कार्मिकों द्वारा संपादित की जाने वाली गतिविधियों को दो श्रेणियों में बांटा जाता है- लाइन एवं स्टाफ।

किसी भी संगठन की ऐसी गतिविधियां जो उस संगठन के आधारभूत या बुनियादी लक्ष्यों से संबंधित होती हैं वह लाइन गतिविधियों की श्रेणी में आती हैं एवं स्टाफ गतिविधियां वह होती हैं जो कि कार्य क्षेत्र से संबंधित भूमिकाओं के निष्पादन में सहायक होती हैं। अर्थात किसी भी संगठन के सफल संचालन में, लाइन तथा स्टाफ कार्मिकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है या यूँ कहें कि इनके बिना संगठन कार्य नहीं कर सकता तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कार्मिकों द्वारा संपादित की जाने वाली यह गतिविधियां ही प्रशासनिक गतिविधियां है।

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। जैसे- देश की सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक परिस्थितियों परिवर्तित होती है तदनुरूप कार्मिक प्रशासन के कार्य, प्राथमिकताएं एवं गतिविधियां भी परिवर्तित होती हैं एवं प्रशासन की प्रकृति के अनुरूप ही कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भी परिवर्तित होती है। भारत के संदर्भ में यदि भारतीय प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर वर्तमान काल तक यदि प्रकाश डाला जाए तो हम पाते हैं कि भारतीय प्रशासन की प्रकृति ब्रिटिश काल से लेकर वर्तमान कल्याणकारी राज्य एवं लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों की उत्पत्ति एवं प्रसार के पश्चात अत्यधिक परिवर्तित हो चुकी हैं। इसी कारण कारण प्रशासन में लोक कल्याणकारी, संकल्पना, आकार में विस्तार, जन-सहभागिता, अपेक्षा, लोकतांत्रिकता में विश्वास जैसी विशेषताओं का समागम किया। कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं के आधार पर ही कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को अग्रलिखित बिंदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **कार्मिकों की संख्या में बढ़ोतरी-** आधुनिक युग में शासन के समस्त कार्यकलाप प्रशासन के माध्यम से ही संचालित होते हैं।लोक कल्याणकारी प्रकृति को अपनाने के कारण ये कार्य दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। इन सब कार्यों के संपादन का उत्तरदायित्व प्रशासन अर्थात अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिक प्रशासन का ही है, क्योंकि प्रशासन तो अपने कार्यों का संपादन कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही करता है। इन बढ़ते कार्यों का निष्पादन करने के लिए बड़ी संख्या में कार्मिकों की आवश्यकता महसूस की जाती है और यह दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। कहा जा सकता है कि बहुत बड़ी संख्या में कार्मिकों का होना भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति के तौर पर ही देखा जाता है।
2. **गंभीर प्रकृति के दायित्व-** कार्मिक वर्ग प्रशासन के संगठन में मानव शक्ति के साथ व्यवहार करता है, जिसका अर्थ है इसका संबंध उन प्रक्रियाओं से है, जिनके द्वारा कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पद ग्रहण तथा पदोन्नति निश्चित की जाती है। परंतु अब कार्मिक प्रशासन के दायित्व गंभीर प्रकृति के हो गए हैं। अब कार्मिक प्रशासन को जनता की संतुष्टि, कार्मिकों की संतुष्टि का स्तर बनाए रखना, संगठन के लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त करना तथा कार्मिकों का विकास करना भी होता है। अतः अब गंभीर प्रकृति के दायित्वों का निर्वहन भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति ही मानी जाती है।
3. **मानवीय संबंधों तथा व्यवहारों के अनुरूप-** जैसा कि आपने जाना कि कार्मिक प्रशासन कार्मिकों से संबंधित है। कार्मिक स्वयं मनुष्य है, अतः कार्मिक प्रशासन की प्रकृति पूरी तरह से मानवीय संबंधों, व्यवहार तथा इसकी जटिलताओं से जुड़ी है। अलग-अलग स्थानों पर कार्मिकों का व्यवहार अलग-अलग मिल सकता है। परंतु अधिकांश कार्मिकों का चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, देश, भाषा से संबंधित हो मूल स्वभाव तो समान ही होता है। बदलती हुई दुनिया में मानवीय अपेक्षाओं तथा चेतना में भी परिवर्तन आता रहता है अतः कार्मिक प्रशासन को भी उसके अनुरूप स्वयं को ढालना होता होता है।

4. **उच्च योग्यताधारी कार्मिक-** आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान के युग में ज्ञान अर्जित करना बहुत आसान हो गया है। ऐसे में कार्मिक प्रशासन में उच्च योग्यता धारी कार्मिक पाए जाते हैं यह भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति ही बन गई है। अब योग्य, मेधावी, तथा गुणवान कार्मिक पहुंच सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। यह कार्मिक निरंतर अपनी योग्यताओं व गुणों में वृद्धि के लिए भी प्रयास करते रहते हैं।
5. **परिवर्तित प्रवृतियां-** बदलते समय के साथ-साथ कार्य करने की दशाएं, परिस्थितियां, परम्पराएँ, संस्कृतियां, सब परिवर्तित हो रही हैं। ऐसे में कार्मिक प्रशासन की प्रवृतियां भी ना केवल परिवर्तित होने लगी हैं, बल्कि मनोवृत्तियाँ तथा कार्यशैली भी परिवर्तित होने लगी है।
6. **विशेषीकरण-** प्राकृतिक विज्ञान की भांति ही सामाजिक विज्ञान में भी अब सामान्य से विशेष की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। कारणवश लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र भी विशेषीकृत होने लगा है। अर्थात प्रशासनिक इकाइयाँ एवं संस्थाएं कार्य विशेष की ओर केंद्रित होती हैं। अब एक ही संगठन या एक ही व्यक्ति से बहुत से कार्यों की अपेक्षा नहीं की जाती, बल्कि ऐसा माना जाता है कि, एक संगठन या व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कार्य ही करें। इसके लिए आवश्यक शर्त यह होती है कि उस कार्य में वह निपुण हो तथा उसे सक्षम तरीके से क्रियान्वित करें। यही सब कारण है कि अब कार्मिकों की योग्यताएं, पद तथा अपेक्षाएं सब विशेषीकृत होते जा रहे हैं।
7. **भेदभाव रहित-** कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भेदभाव रहित मानी जाती है। कार्मिक प्रशासन में किसी भी धर्म, जाति, लिंग, रंग वंश के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। अर्थात उच्च अधिकारी एवं निम्न अधिकारी के संबंध निर्दिष्ट हैं और वे धर्म, जाति आदि तत्वों से अप्रभावित रहते हैं।
8. **सहभागिता का बढ़ता महत्व-** लोक सेवाओं के कार्मिक प्रशासन की परंपरागत मान्यताओं तथा विचारधाराओं में परिवर्तन आया है। अब नए परिवेश में आम सहमति से ही सारे निर्णय लिए जाते हैं। एक दूसरे के साथ समन्वय तथा सहभागिता को महत्व दिया जाने लगा है। यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भी लोकतांत्रिक हो गई है। प्रशासन का यह प्रयास रहता है कि ना केवल लोक सेवक, बल्कि जन सहभागिता को भी अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयास करें।
9. **अभिप्रेरणाओं की पोषक-** वर्तमान में कार्मिक प्रशासन की प्रकृति सकारात्मक अभिप्रेरणाओं की पोषक है। संगठन की मानव संबंध एवं व्यवहारवादी विचारधाराओं के आधार पर अब यह माना जाने लगा है कि सेवक से दंड एवं प्रताड़ना के द्वारा नहीं बल्कि, पुरस्कार, प्रशंसा, अनौपचारिक संबंधों एवं सहयोगी पर्यवेक्षण आदि को बढ़ावा देकर ही श्रेष्ठ कार्य निष्पादन करवाया जा सकता है। इसके द्वारा संगठन की कार्यकुशलता एवं कार्मिकों की संतुष्टि को भी उच्च स्तर प्रदान किया जा सकता है।
10. **क्षेत्रीयता की ओर उन्मुख-** कार्मिक प्रशासन की प्रकृति क्षेत्रीयता की ओर उन्मुखता भी है। लोक प्रशासन के बढ़ते हुए क्षेत्र तथा कार्य क्षेत्र के कारण अब कार्मिक प्रशासन का भी विस्तार केंद्रीय स्तर से लेकर क्षेत्रीय स्तर तक होने लगा है। राज्य की लोक कल्याणकारी अवधारणा के कारण प्रशासन की जनकल्याण की गतिविधियों में वृद्धि हुई एवं उनके संपादन हेतु कार्मिकों की संख्या बढ़ने लगी है। प्रशासनिक विकेंद्रीकरण की अवधारणा भी क्षेत्रीयता की उन्मुखता को बढ़ावा देती है। प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन उनके नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। उन्हें सत्तारुढ़ दल की नीतियों तथा चुनावी घोषणाओं के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पूर्णतया निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से जनता की सेवा करें ताकि जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाएं राजनीतिक भेदभाव से मुक्त हो।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अब परंपरागत मान्यताओं को सिद्धांतों की कसौटी पर परखा जाता है। आज कार्मिक प्रशासन की कार्यशैली पूरी तरह

से ऐसे सिद्धांतों पर आधारित है जो बहुत से परीक्षणों से गुजरे हैं, तर्कों पर आधारित हैं एवं अनुभव के आधार पर उनको उपयोगी भी पाया गया है। कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को भलीभांति जानने के बाद आइए कुछ ऐसे सिद्धांतों को भी जानें जो मान्यता प्राप्त है एवं इसकी प्रकृति को और स्पष्टता से समझने में सहायक है। यह सिद्धांत कुछ इस प्रकार हैं-

1. **योग्यता का सिद्धांत-** आधुनिक लोक सेवा तथा नौकरशाही, वेबर प्रतिमान के योग्यता सिद्धांत को मंजूरी देती है। इस सिद्धांत के अनुसार योग्य व्यक्तियों के समूह में से बिना किसी भेदभाव के योग्यतम व्यक्ति का चयन किया जाता है। कार्मिक प्रशासन का यह दायित्व होता है कि वह संबंधित पदों पर भर्ती करने से पहले ही उन पदों के लिए आवश्यक योग्यताओं का स्पष्ट निर्धारण कर उनके लिए विज्ञप्ति जारी करें, सभी को आवेदन करने का अवसर प्रदान करें, निष्पक्ष चयन प्रक्रिया को अपनाते हुए चयन करें एवं योग्यता क्रम को निर्धारित करें।
2. **अवसर की समानता का सिद्धांत-** भारत एक लोकतांत्रिक देश है। इसका अपना लिखित संविधान है, जिसमें इस के नागरिकों को दी जाने वाली स्वतंत्रताएं, दायित्व एवं मौलिक अधिकार सभी स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-15 में प्रावधान किया गया है कि, राज्य के द्वारा किसी भी व्यक्ति से केवल धर्म, जाति, वंश, लिंग, वर्ण तथा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अर्थात विधि के समक्ष भारत का हर नागरिक समान है। इसी समानता के सिद्धांत के आधार पर लोक सेवाओं में प्रवेश के अवसर भी सभी को समानता के साथ प्राप्त हैं। लोक सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था सदा से ही विवाद का विषय है, जिसे अवसर की समानता के सिद्धांत के मार्ग में बाधा के तौर पर देखा जाता है। इस प्रकार अवसर की समानता भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को और स्पष्ट करता है।
3. **व्यक्तिगत विकास का सिद्धांत-** प्रत्येक कार्मिक का कौशल,क्षमताएँ आदि भिन्न-भिन्न होती है। राज्य की सेवाओं में काम करने वाले ऐसे भिन्न भिन्न प्रकृति के कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, आत्मविश्वास आदि में वृद्धि करना कार्मिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। अतः कार्मिकों की व्यक्तिगत मान्यताओं तथा आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही कार्मिकों के विकास के कार्यक्रम निर्धारित करने चाहिए।
4. **उचित पुरस्कार का सिद्धांत-** किसी भी संगठन को उसके उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ऐसे कार्मिकों की आवश्यकता होती हैं, जिन का मनोबल उच्च है। कार्मिकों का मनोबल तो तभी उच्च होता है जब संगठन के द्वारा कार्मिकों को सकारात्मक रूप से अभिप्रेरित किया जाए। अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार देना, प्रशंसा करना या प्रमाण पत्र देना हो सकता है। अतः कार्मिक प्रशासन की सकारात्मक अभिप्रेरणा की प्रकृति का विस्तार रूप ही उचित पुरस्कार का सिद्धांत है।
5. **माननीय व्यवहार का सिद्धांत-** संगठन की परंपरागत मान्यताओं के विपरीत आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार अब यह सिद्ध हो चुका है कि, मानव संबंध तथा समूह व्यवहार जिसमें कार्मिकों के मध्य भाईचारा, प्रेम तथा सहयोगी संगठन की सफलता की कुंजी है इसके अनुसार संगठन में उच्च अधिकारियों के मध्य एक सामान्य व्यवहार रहना चाहिए।
6. **उचित पारिश्रमिक का सिद्धांत-** समान कार्य के लिए समान वेतन एक ऐसा सर्वमान्य सिद्धांत है, जो यह प्रावधान करता है कि, समान प्रकृति के कार्य के लिए समान वेतन होना चाहिए। यह वेतन श्रमिक की योग्यता, निर्धारित अनुबंध एवं निश्चित रूप से कार्य की प्रकृति के आधार पर तय होना चाहिए। हमारे देश के संविधान में समान कार्य के लिए समान वेतन को राज्य के नीति-निर्देशक तत्व में सम्मिलित किया गया है। यही कारण है कि केंद्र व राज्य कर्मचारियों के वेतनमान में अंतर पाया जाता है। यह सिद्धांत का

उल्लंघन माना जाता है उनकी वेतन, मजदूरी, क्षतिपूर्ति तथा अवकाश मौलिक अधिकार नहीं है। अतः इस संदर्भ में कार्मिक प्रशासन से इस नियम के पालन की अपेक्षा ही की जा सकती है।

7. **विभिन्न हितों के मध्य समन्वय का सिद्धांत-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारी, सरकार तथा जनता तीनों से संबंधित होता है और तीनों पक्षों की अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। जनता की अपेक्षाएं होती हैं कि सरकार महंगाई कम करें, कम कर लगाए तथा लोकसेवक पूरी कुशलता के साथ कार्य करें। वहीं सरकार यह चाहती है कि कम से कम खर्चे में अधिक से अधिक कार्य संपादित हो और इन सबके बीच कर्मचारी चाहते हैं कि उन्हें अधिक वेतन, रोजगार की सुरक्षा, सुविधाएं, अधिक स्वतंत्रता तथा पर्याप्त पदोन्नति के अवसर प्रदान किए जाएं। एक श्रेष्ठ कार्मिक व्यवस्था वही है जिसमें इन तीनों (जनता, सरकार तथा कर्मचारी) के मध्य सामंजस्य तथा समन्वय स्थापित हो।
8. **कर्मचारियों की राजनीतिक तटस्थता का सिद्धांत-** भारतीय लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था में विभागीय मंत्री ना केवल सरकार का प्रतिनिधि होता है, बल्कि प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन, उनके नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। उन्हें सत्तारूढ़ दल की नीतियों तथा चुनावी घोषणाओं के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पूर्णतया निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से जनता की सेवा करें ताकि जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाएं राजनीतिक भेदभाव से मुक्त हो।
9. **काम की प्रतिष्ठा का सिद्धांत-** उच्चाधिकारियों को अपने निम्न अधिकारियों के द्वारा किए जाने वाले कार्यों को छोटा नहीं समझना चाहिए और ना ही उनके साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। वहीं दूसरी ओर निम्न अधिकारियों को भी अपने काम को निम्न नहीं समझना चाहिए।
10. **सहकारिता का सिद्धांत-** एक सबके लिए; सब एक के लिए, सहकारिता का सिद्धांत संगठनात्मक शक्ति का मजबूत आधार माना जाता है। इस सिद्धांत का तात्पर्य सामूहिक प्रयास होते हैं। कार्मिक प्रशासन के लिए यह सिद्धांत सबसे उपयुक्त माना जाता है। कार्मिक प्रशासन तथा सेवा का कार्य किसी एक कर्मचारी के द्वारा नहीं, बल्कि सामूहिक प्रयासों के द्वारा ही संभव है। प्रशासन का संपूर्ण कार्य किसी एक व्यक्ति एक स्तर के द्वारा ही नहीं संपादित किया जा सकता है, बल्कि यह समस्त कर्मचारियों, विभागों तथा स्तरों से संबंधित होता है और सब के द्वारा मिल-जुल कर ही पूरा किया जाता है। व्यावहारिक तौर पर नियमित कार्यों की विशेषज्ञता और कार्य विभाजन के बहाने से इस सिद्धांत की अवहेलना प्रशासनिक संगठनों में पाई जाती है, जो अपने आप में एक विकट समस्या है ।
11. **राष्ट्रीय विकास का सिद्धांत-** कार्मिक प्रशासन का यह भी एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, कि, लोक सेवकों के दिलों में देश के संविधान जनता तथा कानून के प्रति एक विशेष प्रकार की आस्था होनी चाहिए। इस भावना के तहत वे निरंतर जनकल्याण एवं राष्ट्रीय विकास के लिए कार्य करते रहें।

इस प्रकार कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को वर्णित करते उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप स्पष्ट रूप से ये समझ ही गये होंगे कि, लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन का संबंध संगठन के मानवीय तत्वों से होता है। कार्मिक-प्रशासन एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया है, जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन और परिवर्तन किया जा सके। कल्याणकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि और प्रशासन की सफलता एक कुशल कार्मिक प्रशासन पर ही निर्भर करती है, यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की सभी इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक-प्रशासन ही है।आधुनिक समय में राज्य संबंधी दर्शन अहस्तक्षेप नीति से अलग होकर सामाजिक कल्याण की नीति पर आधारित हो गया है और विकास के कार्यों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कार्यों को पूरा करने का

उत्तरदायित्व भी कार्मिक-प्रशासन ने अपने कंधों पर ले लिया है। तथा विकासशील देशों के कार्मिक प्रशासन की प्रकृति में ज्यादा अंतर नहीं होता है या यूँ कहें कि अधिकांश बातें एक समान सी ही होती हैं।

## 1.5 कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति उसकी विशेषताओं, आदि को समझने के बाद अब हम कार्मिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। जैसा कि आपने अब तक जाना कि, कार्मिक प्रशासन किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों से संबंधित होता है। कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और इसमें किसी भी संगठन में काम करने वाले लोगों के प्रबंध के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही किसी भी संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति होती है। कार्मिक प्रशासन का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। निम्न बिंदुओं के आधार पर हम कार्मिक प्रशासन के विस्तृत कार्य क्षेत्र को समझने का प्रयास करेंगे:-

1. **कार्मिक नीति का निर्माण-** किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए यह ज़रूरी है कि उसे नीतिगत ढंग से किया जाए।नीति न केवल मार्गदर्शक का काम करती है, बल्कि संबंधित कार्यों को नियंत्रित भी रखती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि नीति ही वह आधार होती है जिस पर किसी भी कार्य या कार्यक्रम का भविष्य एवं कुशलता निर्भर करती है। ठीक इसी प्रकार कार्मिक प्रशासन की कुशलता के लिए भी एक स्वस्थ कार्मिक या सेवीवर्गीय नीति की आवश्यकता होती है। यह कार्मिक प्रशासन का सबसे प्राथमिक दायित्व होता है कि वह संगठन के लक्ष्यों, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप कार्मिक नीति का निर्माण करे। कार्मिक नीति में कर्मचारियों के वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन एवं भत्ते, पेंशन तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। एक अच्छी एवं व्यावहारिक कार्मिक-नीति सदैव उद्देश्यपरक, गतिशील, समानता की समर्थक, स्पष्ट, निष्पक्ष, समन्वयकारी, सर्व पक्ष स्वीकार्य तथा संतुलन के गुणों से भरपूर होनी चाहिए। कार्मिकों की माँग एवं उस माँग की आपूर्ति का अनुमान लगाना तथा कार्मिकों का नियोजन करना एक अत्यंत गंभीर तथा चिंतनशील कार्य है, जिसका क्रियान्वयन कार्मिक प्रशासन के अधिकारियों द्वारा ही कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। कार्मिक नीति का निर्माण तथा क्रियान्वयन सदा एक केंद्रीय कार्मिक अभिकरण द्वारा किया जाता है । भारत में यह दायित्व कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय द्वारा संपन्न किया जाता है।
2. **पद वर्गीकरण-** पद वर्गीकरण के द्वारा संगठन में ऊपर से लेकर नीचे तक के सभी पदों के कार्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। एक समान योग्यता, वेतन तथा दायित्वों के अनुरूप पदों को विभाजित करने से वेतन, प्रशिक्षण एवं पदोन्नति इत्यादि से संबंधित सभी कार्य सरलतापूर्वक संपन्न हो जाते हैं। पद वर्गीकरण की प्रक्रिया मुख्यतः केंद्रीय स्तर का कार्य है अथवा कार्मिक या वित्त विभाग जैसे संगठन इस कार्य का संपादन करते हैं। संगठन के प्रत्येक स्तर पर चाहे उत्पाद वर्गीकरण का कार्य व्यापक रूप से नहीं होता हो फिर भी पद वर्गीकरण का कार्य कार्मिक प्रशासन से ही संबद्ध माना जाता है, क्योंकि कार्मिकों से संबंधित ज़्यादातर कार्य कार्मिक प्रशासन से ही संबंधित होते हैं।
3. **सेवी वर्ग की भर्ती-** कार्मिकों की भर्ती करना सेवी वर्ग प्रशासन का प्रथम तथा मूल भूत तत्व होता है। योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति को संगठन में लाने की प्रक्रिया ही भर्ती कहलाती है। किसी भी संगठन की कार्य कुशलता का आधार भी इसी बात पर निर्भर करता है कि भर्ती को कितनी निष्पक्षता तथा प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न किया गया है। योग्यता आधारित भर्ती ही सबसे निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था मानी जाती है एवं इसके द्वारा ही कर्मठ तथा प्रतिभावान व्यक्तियों को संगठन में भर्ती किया जा सकता है। कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों हेतु विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छँटनी,

भर्ती हेतु प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन, साक्षात्कार तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही माना जाता है।

4. **प्रशिक्षण-** प्रशिक्षण का अभिप्राय एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मनोबल तथा समन्वय में वृद्धि की जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा ही कर्मचारी पदोन्नति के योग्य बन पाता है। कार्मिक प्रशासन के प्रमुख उत्तरदायित्वों में से एक यह भी माना जाता है कि वह संगठन में कार्यरत विभिन्न पदों के कार्मिकों को यथावश्यक प्रशिक्षण दे अथवा इसकी समुचित व्यवस्था करे।
5. **पदोन्नति-** किसी भी संगठन या विभाग में योग्य तथा श्रेष्ठ कार्मिकों को भर्ती करने के पश्चात उन्हें संगठन में बनाए रखना भी कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण दायित्व होता है। कार्मिकों को अभिप्रेरित करने हेतु पदोन्नति की व्यवस्था प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। पदोन्नति के माध्यम से ही कर्मचारियों को संतुष्टि तथा अच्छे कार्य का पुरस्कार प्राप्त होता है। निम्न पद से उच्च पद पर जाने की यह प्रक्रिया पदोन्नति के साथ साथ आंतरिक भर्ती भी कहलाती है। कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों की पदोन्नति हेतु विभिन्न सिद्धान्त भी निर्धारित करता है। पदोन्नति का आधार योग्यता, वरिष्ठता अथवा योग्यता एवं वरिष्ठता का संयुक्तिकरण हो सकता है जो संबंधित विभाग के सेवा नियमों तथा पदों की प्रकृति पर निर्भर करता है। पदोन्नति की प्रक्रिया कार्मिक प्रशासन के लिए बहुत ही अहम एवं संवेदनशील मुद्दा होती है, क्योंकि पदोन्नति की प्रक्रिया में यदि कहीं कोई कमी रह जाती है तो वह कार्मिकों की संतुष्टि तथा कार्य शैली को प्रभावित करती है जिसका सीधा असर संगठन पर पड़ता है।
6. **वेतन एवं भत्ते-** किसी भी कार्मिक को कार्य निष्पादन के पश्चात नियमानुसार पारिश्रमिक दिया जाना एक सामान्य सिद्धांत है। प्रत्येक कार्मिक के लिए वेतन निर्धारण में उसकी स्वयं की योग्यता, पद के दायित्वों का स्तर, सेवा की अवधि, कार्य की प्रकृति तथा सेवानियमों को ही आधार बनाया जाता है। निर्धारित वेतन के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के भत्ते जैसे- ओवरटाइम भत्ता, यात्रा भत्ता आदि भी दिए जाते हैं।
7. **आनुषंगिक (Frinze Benefit) लाभ-** आनुषंगिक लाभ से तात्पर्य होता है, निर्धारित मौद्रिक वेतन के अतिरिक्त नियोक्ता द्वारा अपने कार्मिकों को दी जाने वाली सुविधाएँ। आनुषंगिक लाभ में वर्दी, अवकाश, ऋण, चिकित्सा व्यय पुनर्भरण, आवास तथा एल. टी. सी. जैसी सुविधाएँ भी कार्मिकों को नियमानुसार दी जाती हैं।
8. **निष्पादन मूल्यांकन-** कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का एक निर्धारित अंतराल पर मूल्यांकन करना, संगठन तथा कर्मचारी दोनों के हित में होता है। सामान्य भाषा में इसे वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (Annual Confidential Report) कहा जाता है और यह पदोन्नति की प्रक्रिया में एक सहायक दस्तावेज़ सिद्ध होता है। ऐसा करके संगठन के योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों की पहचान करके उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं का संगठन के हित में श्रेष्ठतम उपयोग किया जाता है।
9. **अभिलेख रखना-** प्रत्येक संगठन में प्रत्येक कर्मचारी की एक निजी सेवा पुस्तिका (service book) भी प्रशासन द्वारा संधारित की जाती है। इस पुस्तिका में कर्मचारी की नियुक्ति, वेतन, अवकाश, पदोन्नति तथा प्रशिक्षण इत्यादि का भी सम्पूर्ण ब्यौरा रखा जाता है।
10. **अनुशासनात्मक कार्यवाही एवं आचार संहिता-** किसी भी संगठन में व्यवस्था बनाए रखने हेतु अनुशासन नितांत आवश्यक होता है। लोक सेवाओं में अनुशासन बनाए रखने हेतु कुछ क़ानून एवं नियम निर्मित किए गए हैं, तथा प्रत्येक कार्मिक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन नियमों का पालन करें। किसी भी कर्मचारी द्वारा इन नियमों और कानूनों का उल्लंघन या उपेक्षा ही अनुशासनहीनता कहलाती है। अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न होने पर संबंधित कर्मचारी के विरुद्ध नियमानुसार अनुशासनात्मक

कार्यवाही की जाती है। संगठन में व्यवस्था बनाए रखने हेतु दोषी कार्मिक को दंडित भी किया जाता है। इस प्रकार की कार्यवाही कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। लोक सेवाओं में कर्मचारियों के व्यवहार को नियंत्रित करने तथा उसमें नैतिकता को बनाए रखने के लिए आचार संहिता भी निर्मित की जाती है।

11. **श्रम संबंध-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों के साथ सहज वार्ताएँ करता है, परिवेदना की प्रक्रिया में भाग भी लेता है, साथ ही परिवेदना के कारणों का पता लगाकर शांतिपूर्वक कर्मचारियों की विभिन्न समस्याओं का समाधान भी करता है। यह कर्मचारी संघों तथा संगठनों से वार्ता करने,नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में सुझाव तथा सहयोग भी देता है।

जैसा की अब तक के सम्पूर्ण विवरण से आप को ज्ञात हो चुका होगा कि कार्मिक प्रशासन का कार्य-क्षेत्र कार्मिकों की सभी प्रकार की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। उपरोक्त वर्णित सभी तत्वों के अतिरिक्त भी कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में कुछ और गतिविधियों को भी शामिल किया जा सकता है जो कुछ इस प्रकार से हैं-

- कर्मचारियों की प्रशंसा, पुरस्कार तथा प्रोत्साहन प्रदान करना;
- कर्मचारियों की सभी शिकायतों का निवारण करना;
- कर्मचारियों को केरियर के अवसर उपलब्ध करवाना। जैसे-उच्च अध्ययन पर भेजना;
- कार्मिक पक्ष पर अनुसंधान के प्रयास करना;
- कर्मचारियों का स्थानांतरण करना और
- पेंशन तथा सेवा निवृत्ति से संबंधित कार्य।
- कार्मिक संगठनों तथा कार्मिक संघों से वार्ता करना तथा उनके साथ एक सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।

## 1.6 निष्कर्ष

सम्पूर्ण इकाई के अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन कार्मिकों से सम्बन्धित है एवं लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिक संसाधनों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है। इसके लिए पूर्व विचारित नियमों,परंपराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के विकास, प्रतिधारण और चयन में किया जाता है ताकि वैज्ञानिक और अधिक व्यवस्थित ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. यह किसने कहा कि ‘‘लोक प्रशासन में कर्मचारी ही मुख्य तत्व है।’’
2. यह कथन किसका है कि ‘‘लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।’’
3. नौकरशाही में ‘लूट प्रणाली’ किस देश से संबंधित है?

## 1.7 सारांश

कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों अर्थात मानवीय तत्वों से सम्बंधित होता है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक होता है। कर्मचारियों को संगठन में लाने, उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से सम्बन्धित कार्य करता है। कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर से प्रभावित होता है। कर्मचारियों की क्षमताओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करता है।

संगठात्मक विकास के लिए यह एक आवश्यक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह समग्र प्रशासन का वह भाग है जो कार्मिक मामलों से संबंधित है।

संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी अर्थात निजी, कार्मिक प्रशासन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है एवं उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। संगठन स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है। अर्थात यदि सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक पर्यावरण में परिवर्तन आता है तो संगठन के प्रबंधन को भी सामंजस्य स्थापित करने हेतु परिवर्तित होना पड़ता है और क्योंकि प्रबंधन परिवर्तित होता है तो कार्मिक प्रशासन भी प्रभावित होता है। कार्मिक प्रशासन पर यह प्रभाव कार्मिकों के बदलते जीवन मूल्यों उनकी संगठन से अपेक्षाओं, कार्यकुशलता आदि के रूप में प्रदर्शित होता है। कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और इसमें किसी भी संगठन में काम करने वाले लोगों के प्रबंध के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही किसी भी संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति होती है।

## 1.8 शब्दावली

उत्तरदायित्व- किसी कार्य की जिम्मेदारी, परमआवश्यक- बहुत अधिक आवश्यक, पूर्णतया निष्पक्ष- किसी के भी पक्ष में न होना, अनुशासनात्मक कार्यवाही- कार्य या दायित्वों के विरूद्ध किए जाने वाले कार्यों पर दण्डात्मक कार्यवाही, राज्य का कल्याणकारी स्वरूप- राज्य या सरकरों द्वारा जनता के हित में किए जाने वाले कार्य, राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को दर्शाते हैं,

## 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** एन. ग्लैडेन, **2.** हरमन फाइनर, **3.** अमेरिका

## 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. सिन्हा, बी. एम. 1986, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कांसेप्टस एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
2. गोयल, एस. एल.1984, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा,1999, लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र 2008, कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।


## 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।


## 1.12 निबन्धात्ममक प्रश्न

1. कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके विकास के चरणों की चर्चा करें।
2. कार्मिक प्रशासन की परिभाषा देते हुए इसकी प्रकृति पर प्रकाश डालें।
3. कार्मिक प्रशासन के अर्थ और परिभाषा की व्याख्या करते हुए इसके क्षेत्र की व्याख्या करें।

# इकाई- 2 कार्मिक प्रशासन के कार्य एवं महत्व

**इकाई की संरचना**

2.0प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य
2.3 कार्मिक प्रशासन के कार्य
2.4 कार्मिक प्रशासन का महत्व
2.5 निष्कर्ष
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 2.0 प्रस्तावना

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा ही होगा कि कार्मिक प्रशासन को सेवी वर्गीय या स्टाफ प्रबंध या जनशक्ति प्रबंध के नाम से भी जाना जाता है। साधारण शब्दों में कार्मिक प्रशासन समग्र प्रबंध या प्रशासन का वह भाग होता है जो कार्यरत कर्मचारियों अर्थात कार्मिकों तथा संगठन के भीतर के संबंधों से जुड़ा होता है। कार्मिक प्रशासन ही संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यों को करता है। यदि यह कहा जाए कि किसी भी संगठन की सफलता उसके कार्मिक तंत्र की प्रभावशीलता पर ही निर्भर करती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पिछले अध्याय के अध्ययन से आप यह तो जान ही गए होंगे कि कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में कार्मिकों से संबंधित विभिन्न तत्व सम्मिलित होते हैं, जैसे- कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, अनुशासन, कार्य दशाएं आदि। अब इस इकाई के अंतर्गत हम कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों तथा कार्मिक प्रशासन के महत्व के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यो जैसे मानव शक्ति प्रबंधन, भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण, मनोबल, कर्मचारी कल्याण आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के महत्व को भली प्रकार से बिंदुवार जान पाएंगे।

## 2.2 कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य

कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में काम करने वाले लोगों अर्थात मानवीय तत्वों से संबंधित होता है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में कार्मिक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों को संगठन में ना केवल लाने, बल्कि उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से संबंधित कार्य

को संपादित करने के लिए भी प्रमुख रूप से उत्तरदाई होता है। कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर को बनाए रखना और कर्मचारियों की क्षमता, इच्छाओं तथा संतुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करना भी कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य ही होता है। संगठनात्मक विकास के लिए कार्मिक प्रशासन की प्रक्रिया का निरंतर चलते रहना आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन ही समग्र प्रशासन का वह महत्वपूर्ण भाग होता है जो कार्मिक मामलों से संबंधित होता है।

पिछले अध्याय में कार्मिक प्रशासन की प्रकृति और क्षेत्र को विस्तार से पढ़ने के बाद आप इसके महत्व बल्कि इसके विस्तृत कार्यों को भी आसानी से समझ सकते हैं। कार्मिक प्रशासन का विस्तृत क्षेत्र ही इसके विविध कार्यों की ओर संकेत देता है। किसी भी संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्मिक प्रशासन की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है। कार्मिक प्रशासन ही संगठन का वह भाग होता है जो कार्मिकों से संबंधित सभी कार्यों का संपादन करता है। कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों को समझने से पहले आइए इसके उद्देश्यों पर एक दृष्टि डालें ताकि कार्मिक प्रशासन के कार्यों को समझने में सुविधा हो। कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को निम्न बिंदुओं के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

1. किसी भी संगठन के कार्मिकों से संबंधित नीति एवं योजना का निर्माण कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।
2. कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का निर्धारण।
3. कार्मिकों के मनोबल तथा अभिप्रेरणा से संबंधित समस्त कार्य।
4. परिवर्तित परिवेश में कार्मिक नीतियों का पुनरीक्षण करना।
5. कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना।
6. संगठन में कार्यकुशलता को बढ़ाना।
7. संगठन में अनुशासन को बनाए रखने के प्रयास करना।
8. कार्मिकों के लिए सेवा की संतोषजनक सेवा शर्तों का निर्माण करना।
9. योग्य और कुशल कार्मिकों को संगठन की ओर आकर्षित करना।
10. गतिशील और परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य की क्षमता को विकसित करना।
11. संगठन की प्रतिष्ठा को बढ़ाने हेतु प्रयास करना।
12. कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण की व्यवस्था करना।
13. संगठन में अनुसंधान को बढ़ावा देना।
14. संगठन में कुशलता तथा विकास की वृद्धि हेतु प्रयास करना।

उपरोक्त बिंदुओं के द्वारा दर्शाए गए समस्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्मिक प्रशासन नियंत्रण प्रयत्नशील रहता है। कार्मिक प्रशासन के कार्य की सूची में इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्यों की एक लंबी सूची होती है जिनके आधार पर कार्मिक प्रशासन विविध कार्यों का संपादन करता है। इसी आधार पर, आइए अब कार्मिक प्रशासन के कार्यों को भी बिंदुओं के आधार पर समझे।

## 2.3 कार्मिक प्रशासन के कार्य

कार्मिक प्रशासन के उपरोक्त वर्णित सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु किए जाने वाले सभी प्रयास कार्मिक प्रशासन के कार्यों के अंतर्गत शामिल किए जा सकते हैं। कार्मिक प्रशासन द्वारा जितने प्रकार के कार्य किए जाते हैं वही उसका क्षेत्र भी बन जाता है। कार्मिक प्रशासन के कार्यों का निम्न बिंदुओं के आधार पर विस्तृत रूप से विवेचन किया जा सकता है-

1. **मानव शक्ति प्रबंधन-** औपचारिक तथा अनौपचारिक हर प्रकृति वाले संगठनों में मानव शक्ति की आवश्यकता अवश्यंभावी है। सभी प्रकार के संगठनों के द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जितने भी कार्य संपादित किए जाने होते हैं उनको करने के लिए हर संगठन में मानव शक्ति सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। मानव शक्ति प्रबंधन से संबंधित प्रक्रिया कर्मचारियों के चयन की प्रक्रिया से पहले ही संपन्न की जाती है। मानव शक्ति प्रबंधन की प्रक्रिया के अंतर्गत संगठन में आवश्यक कर्मचारियों की संख्या से लेकर उनकी नियुक्ति प्रशिक्षण तथा पदोन्नति आदि से संबंधित सभी बातों का पूर्वानुमान लगाया जाता है।

   मानव शक्ति प्रबंधन के अंतर्गत संगठन में उपलब्ध रिक्त पद, उन पदों से संबंधित कार्य, भर्ती हेतु आवश्यक योग्यताएं एवं विशेषज्ञता, कार्य की प्रकृति और कर्मचारियों की नियुक्ति से संबंधित सभी तथ्य सम्मिलित होते हैं।
2. **सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन-** व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत एवं कार्यपालिका अर्थात सरकार द्वारा प्रसारित किए जाने वाले सभी आदेशों को कार्य रूप प्रदान करने का दायित्व कार्मिक प्रशासन का ही होता है। संगठन में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा अपने दायित्व का सही रूप में निर्वाह किया जा सकें ऐसी परिस्थितियां कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही उपलब्ध कराई जाती हैं।
3. **सही स्थान पर सही व्यक्ति की नियुक्ति-** कार्मिक प्रशासन द्वारा इस बात का प्रबंध किया जाता है कि जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए उपयुक्त है उसे उसी कार्य हेतु नियुक्त किया जाए। उदाहरण के तौर पर एक डॉक्टर की आवश्यकता के स्थान पर इंजीनियर को नियुक्त किया नहीं किया जा सकता है। क्षेत्रीय कार्यालयों में उत्तम कार्य को करने में सक्षम हो उन्हें यदि मुख्य कार्यालय में लगा दिया जाए तो उनके कार्यों की गुणवत्ता इतनी अच्छी नहीं होगी। अतः यह कार्मिक प्रशासन का ही कार्य होता है कि वे अपने संगठन में सभी कर्मचारियों के लिए ऐसी नीतियों का निर्माण करें जिससे प्रत्येक कर्मचारी अपनी रूचि और योग्यता के अनुरूप उचित पद पर नियुक्त किया जा सके। ऐसा करने से न केवल संगठन को मानव शक्ति का संपूर्ण योगदान मिलेगा वरन् कर्मचारी को भी अपने कार्य से पूर्ण संतुष्टि प्राप्त होगी जो किसी भी प्रकृति के संगठन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
4. **योग्य तथा कुशल सेवीवर्ग की नियुक्ति-** कार्मिक प्रशासन द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न प्रशासनिक पदों पर सबसे योग्य कर्मचारी की ही नियुक्ति की जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्मिक प्रशासन के द्वारा संगठन में भर्ती हेतु वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है। नियुक्ति से पहले सभी प्रत्याशियों की योग्यता और क्षमताओं को क्वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा नापने का प्रयास किया जाता है। भर्ती में वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने का लाभ यह होता है कि संगठन में भी भी कोई अयोग्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हो पाता है।
5. **प्रशिक्षण की व्यवस्था-** प्रशासन में पदाधिकारियों को परिवर्तित समय के साथ नए दायित्वों का निर्वाह करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा ना केवल कर्मचारी की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है, बल्कि वह पदोन्नति के योग्य भी बन जाता है। प्रशिक्षण अप्रत्यक्ष रूप से लोक सेवाओं को आजीवन व्यवसाय बनाने में योगदान प्रदान करता है। इसी तथ्य के आधार पर कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में कुशल सेवीवर्ग की नियुक्ति के साथ-साथ इन नवनियुक्त तथा पूर्व में कार्यरत सभी कर्मचारियों के लिए प्रवेश पूर्व तथा प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का प्रबंध किया जाना भी कार्मिक प्रशासन के अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यों की श्रेणी में आता है।
6. **पदोन्नति-** किसी भी संगठन की सफलता का मूल सूत्र यही होता है उसमें कर्मचारियों को तरक्की के उचित अवसर प्रदान किए जाएं। प्रशिक्षण की भांति ही संगठनों में कार्मिकों की पदोन्नति के लिए भी

उचित सिद्धांतों का होना अत्यंत आवश्यक है। यह कार्मिक प्रशासन का ही दायित्व होता है कि वह संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए विभिन्न सिद्धांत निर्धारित करें। पदोन्नति की उचित व्यवस्था ही एकमात्र ऐसा साधन होती है जिससे कर्मचारियों में अपने कार्य के प्रति रुचि और संगठन के प्रति कर्तव्य निष्ठा बनी रहती है। वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की पदोन्नति के उचित अवसरों का प्रबंध करना कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है।

7. **कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण एवं वेतन व्यवस्था-** कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में सभी पदों के कार्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। ये कार्य व्यापक, व्यवस्थित एवं स्पष्ट होते हैं जिनके आधार पर ही कर्मचारियों के वेतन भी निर्धारित किए जाते हैं।कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण करके कार्मिक प्रशासन संगठन में अवांछित टकराव को भी रोकता है।
8. **कार्यों का मूल्यांकन-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वर्गीकरण के साथ-साथ कार्मिकों की योग्यता के मूल्यांकन का अति आवश्यक कार्य भी संपादित किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही संगठन में ऐसी व्यवस्था की जाती है जिससे प्रत्येक कार्मिक की योग्यता एवं प्रभावशीलता का सही एवं समय पर मूल्यांकन किया जा सके। ऐसी व्यवस्था को अपनाने से संगठन के योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों को पहचान कर उनकी व्यक्तिगत योग्यता तथा क्षमताओं का श्रेष्ठतम उपयोग किया जा सकता है और कार्मिकों को संगठन में बने रहने के लिए प्रेरित भी किया जाता है।
9. **संतोषजनक सेवा शर्तें-** किसी भी संगठन में प्रवर्तित संतोषजनक सेवा शर्तें संगठन में योग्य कार्मिकों कोआकर्षित करती है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा लोक सेवकों के लिए कार्य की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था भी की जाती है, ताकि वह संतोष का अनुभव करते हुए अपने पद के दायित्व को पूरा कर सकें। सेवा शर्तों के अंतर्गत- पर्याप्त वेतन, कार्य के उपयुक्त घंटे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं, आकस्मिक संकट के समय सहायता, पदोन्नति लाभ तथा सेवानिवृत्ति लाभों का समुचित प्रबंधन किया जाता है। इन प्रयासों के माध्यम से संगठन में दक्ष कर्मचारियों को आकर्षित भी किया जाता है और यह भी प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक कर्मचारी की योग्यता और क्षमता का संगठन को पूरा लाभ प्राप्त हो।
10. **अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन-** प्रशासन का उद्देश्य अच्छे कार्य के लिए कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना होता है। प्रोत्साहन कर्मचारियों को संगठन में ईमानदारी तथा पूरी क्षमता के साथ काम करने के लिए प्रेरित करता है। इस उद्देश्य से कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के कार्यों पर एक दृष्टि रखी जाती है, समय-समय पर उनके कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है और विशेष योग्य तथा कार्य कुशल कर्मचारियों को अतिरिक्त वेतन वृद्धि, पदोन्नति, विशेष सम्मान तथा कार्य कुशलता के प्रमाण पत्र आदि के रूप में पुरस्कृत किया जाता है। ऐसा करने से ना केवल अच्छा काम करने वाले कर्मचारियों को संतुष्टि की प्राप्ति होती है, बल्कि अन्य कर्मचारियों के लिए भी यह एक अभिप्रेरक के तौर पर कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन द्वारा यह कार्य सजगता से संपन्न किया जाता है।
11. **प्रशासन में अनुशासन की स्थापना-** प्रशासनिक संगठनों के कर्मचारियों में पर्याप्त अनुशासन का होना आवश्यक ही नहीं, बल्कि वांछनीय है। यदि संगठन में अनुशासन नहीं होगा तो कोई भी कर्मचारी अपने अपेक्षित कार्यों को संपन्न नहीं करेगा। ऐसा होने से संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल हो जाएगा। अतः कार्मिक प्रशासन द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि प्रत्येक कर्मचारी अनुशासित रूप में अपना दायित्व पूरा करें तथा दूसरों के कार्यों में भी ना करें। अनुशासन के द्वारा ही कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में व्यवस्था की जाती है कि संगठन का कोई भी कर्मचारी संगठन के लक्ष्यों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करें तथा अपने साथी कर्मचारियों के साथ आवश्यक मानव संबंधों को भी बनाए रखें। यदि कोई कर्मचारी इन अपेक्षाओं की अवहेलना करके संगठन के अनुशासन को छोड़ता है तो कार्मिक प्रशासन उसके विरुद्ध

अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है। यह अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रतिरोधात्मक और सुधारात्मक दोनों प्रकार की होती है।

12. **जन संतोष की उपलब्धि-** किसी भी संगठन की गतिविधियों के द्वारा जन संतोष की प्राप्ति बहुत महत्वपूर्ण होती है। कार्मिक प्रशासन जन संतोष की उपलब्धि के लिए उन साधनों तथा मार्गों को अपनाता है जो सरकार द्वारा निर्धारित किए गए हैं। कार्मिक प्रशासन का यह भी दायित्व होता है कि वह ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें जिसमें सभी सरकारी कर्मचारी जनहित के कार्यों में लगे रहे तथा अपने आचरण से जनता में असंतोष पैदा ना होने दें। कर्मचारियों को सदा इस बात का ध्यान रखना होता है कि केवल अच्छे व्यक्ति या कार्यकर्ता का होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि दूसरों को अच्छा लगना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में जन सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है, जबकि जनता प्रशासनिक कार्यों के प्रति संतोष का अनुभव करती हो।
13. **उत्तरदायित्व की भावना-** लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में प्रशासन जनता के सेवक की भूमिका निभाता है। अतः लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासन के द्वारा सदा ऐसे कार्यों का संपादन किया जाता है जिससे उसके उन कार्यों में जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना परिलक्षित हो। इस कार्य के लिए कार्मिक प्रशासन द्वारा ही समुचित व्यवस्था की जाती है। कार्मिकों की भर्ती के समय यह ध्यान रखा जाता है कि ऐसे ही व्यक्तियों का चयन किया जाए जो जनता की सेवा करना चाहते हैं। ऐसे कर्मचारी जो अनुत्तरदायी रूप में अपनी शक्तियों का उपयोग करता है, उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की भी व्यवस्था कार्मिक प्रशासन द्वारा की जाती है। कर्मचारी के आचरण संहिता में इन सभी बातों का उल्लेख किया जाता है, जो कर्मचारी को उत्तरदायित्व पूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सकें। देश की व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के द्वारा लोक सेवकों के कार्यों पर नियंत्रण रखा जाता है।
14. **गतिशील एवं परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य की क्षमता-** कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने के लिए उचित व्यवस्था करना अति आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाती है कि बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने में प्रशासनिक संगठन पूरी तरह से सक्षम रह सके तथा असामयिक ना बन जाए। प्रशासन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल कर ही अपनी गतिशीलता और वैधता बनाए रख सकता है।
15. **संगठन के सिद्धांतों का अनुशीलन-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा संगठन के आधारभूत सिद्धांतों जैसे कि पदसोपान, आदेश की एकता, नियंत्रण का क्षेत्र, संचार व्यवस्था, प्रत्यायोजन आदि का समुचित ध्यान रखा जाता है और इन सिद्धांतों के समुचित निर्वहन की दृष्टि से ही कार्मिक नीतियों को अपनाया जाता है।
16. **संतोषजनक संगठनात्मक संरचना की स्थापना-** कार्मिक प्रशासन के अन्य दायित्वों की भांति ही संतोषजनक संगठनात्मक संरचना की स्थापना करना भी उसका एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। संतोषजनक संगठनात्मक संरचना ना केवल उसमें काम करने वाले कार्मिकों बल्कि जिन लोगों को वह संगठन सेवाएं प्रदान कर रहा है, संतोष प्रदान करती है।
17. **कर्मचारियों में संगठन के मूल लक्ष्यों के प्रति रुचि-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा विभिन्न आकर्षक कार्मिक नीतियों और कार्य के वातावरण का निर्माण किया जाता है, जिसके द्वारा संगठन में काम करने वाले सभी कर्मचारियों की अपने संगठन के मूल लक्ष्यों की प्राप्ति में रुचि जागृत की जा सके। ऐसा करने से संगठन सफलता प्राप्त करता है।
18. **कर्मचारियों में उच्च मनोबल तथा अभिप्रेरणा का निर्माण करना-** किसी भी प्रशासनिक संगठन में उद्देश्यों की प्राप्ति तथा गतिशीलता लाने के लिए ना केवल एक समुचित संरचना का होना आवश्यक है,

बल्कि उस संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों का मनोबल सदा उच्च बनाए रखना भी आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन का यह भी उत्तरदायित्व होता है कि वह संगठन में काम करने वाले सभी कर्मचारियों को अभिप्रेरित रखें जिससे इस संगठन में पूरी कार्य कुशलता के साथ कार्य कर सकें।

19. **अभिलेख रखना-** कार्मिक प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्यों में से कर्मचारियों की सेवा के संबंध में विभिन्न प्रकार के अभिलेख रखना भी एक माना जाता है। कार्मिक प्रशासन का उत्तरदायित्व होता है कि वह कर्मचारियों की सेवा के संबंध में विभिन्न प्रकार के अभिलेख रखता है, जिससे उनका कार्यकाल एवं वेतन क्रम, अवकाश, सेवानिवृत्ति तथा अन्य विषयों संबंधी आंकड़े आवश्यक कार्यवाही के समय आसानी से उपलब्ध रहें।
20. **श्रम संबंध-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों के साथ सह-वार्ताएं करता है, परिवेदना प्रक्रिया में भाग लेता है, परिवेदना के कारणों का पता लगाता है तथा शांति पूर्वक कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान भी कराता है। यह कर्मचारी संघों तथा संगठनों से वार्ता करने, नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में सुझाव तथा सहयोग भी देता है।
21. **चिकित्सा संबंधी कार्य-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के लिए चिकित्सा सेवाओं की दृष्टि से स्वास्थ्य स्तरों का का निर्धारण, सफाई प्रबंधन, व्यवसाय चिकित्सा सेवा का प्रबंध आदि भी किया जाता है।
22. **सेवानिवृत्ति लाभ-** सेवा में नियुक्त सभी कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति के समय समुचित लाभ प्रदान करने के लिए कार्मिक प्रशासन के द्वारा उचित नीति का निर्माण किया जाता है। संगठन की तरफ योग्य एवं कुशल कर्मचारियों को आकर्षित करने हेतु नियुक्ति एवं सेवानिवृत्ति लाभ दोनों से संबंधित आकर्षक नीतियां बहुत महत्व रखती हैं।
23. **कार्मिक नीति का मूल्यांकन-** संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन कार्मिक प्रशासन के कार्य की सूची में शामिल होता है। इसके साथ ही कार्मिक प्रशासन के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह समय-समय पर अपनी कार्मिक नीति का भी मूल्यांकन करता रहे ताकि उसमें उत्पन्न दोष एवं कमियों को समय रहते दूर करके कर्मचारियों को संतुष्ट रख सके।
24. **सेवी वर्ग सेवाएं-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के लिए अल्पाहारग्रह तथा अन्य मनोरंजन की सुविधाएं भी उपलब्ध कराई जाती है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही सभी कर्मचारियों को उनकी निजी समस्याओं में भी परामर्श दिया जाता है। ऐसा करने से कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के द्वारा आप यह भली-भांति समझ गए होंगे कि कार्मिक प्रशासन के अपने कुछ उद्देश्य होते हैं और उन उद्देश्यों के अनुरूप तथा उनकी प्राप्ति हेतु ही कार्मिक प्रशासन कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन के कार्यों की उपरोक्त दी गई लंबी सूची के द्वारा आप को यह बताने का प्रयास किया गया है कि कार्मिक प्रशासन संगठन के कुशल संचालन हेतु सभी प्रकार की गतिविधियों के संचालन के लिए उत्तरदाई होता है। कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य होता है कि वह संगठन में कार्य की उचित दशाओं का निर्माण करें तथा कर्मचारियों का मनोबल भी उच्च बनाए रखें जिससे संगठन सफल हो सके।

## 2.4 कार्मिक प्रशासन का महत्व

आधुनिक युग लोक कल्याणकारी राज्य का युग है। लोक कल्याणकारी राज्य पर लोक कल्याण अर्थात जनकल्याण का उत्तरदायित्व होता है। यही कारण है कि आधुनिक समय में राज्यों का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। जैसा कि आप जानते हैं, राज्य द्वारा संकल्पित सभी कार्यों का संपादन कार्मिकों के द्वारा ही किया जाता है। अतः इन असीमित कार्यों के संपादन हेतु अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिकों की संख्या में भी निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

कार्मिकों के विस्तृत समूह को पूर्ण रूप से नियंत्रित रखने तथा उनसे आवश्यकता अनुसार कार्य करवाने हेतु कार्मिक प्रशासन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। कार्मिकों की संख्या अधिक है और वह बहुत महत्वपूर्ण भी है। इस बात को बताते हुए हरमन फाइनर ने कहा, "लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है। सेवीवर्ग प्रशासन कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, समन्वय तथा प्रत्यायोजन आदि व्यवस्थाओं का नियमन करता है तथा कर्मचारियों से अधिकतम एवं कुशलतम कार्य संपन्न कराने हेतु प्रयत्नशील रहता है। सेवीवर्ग प्रशासन संगठन के मानवीय तत्व को भी यथोचित महत्व देता है।"

कार्मिक प्रशासन के महत्व को समझने के लिए यही बात काफी है कि संगठन में कार्मिक स्थाई घटक होता है। कार्मिकों के बिना संगठन नहीं बन सकते हैं। यंत्र नए मंगवा सकते हैं, नई तकनीक अपनाई जा सकती हैं पर लोकतांत्रिक व्यवस्था में सारे कार्मिकों को हटाकर नए कार्मिक नहीं लगाए जा सकते हैं। कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तकनीकी विशेषज्ञों को अतिरिक्त तौर पर बुलाया जा सकता है, परंतु सामान्य तौर पर इस काम को किया जाना बहुत मुश्किल है। निरंतर कार्मिकों को हटाकर नए कार्मिकों को नियुक्त करना यथार्थ से बहुत परे नजर आता है। अतः यह समझ लेना और जान लेना अब आसान हो जाता है कि यदि कार्मिक संगठन में इतना महत्व रखते हैं तो कार्मिक प्रशासन का महत्व भी इसके समानांतर ही होता है।

आपने अब तक के अपने अध्ययन में जाना कि किस प्रकार कार्मिक प्रशासन की प्रकृति होती है, उसका क्षेत्र होता है, कुछ उद्देश्य होते हैं जिन की प्राप्ति के लिए ही कार्मिक प्रशासन के कार्य भी होते हैं। इस पूरे अध्ययन के बाद आपके लिए यह समझना ज्यादा मुश्किल नहीं होगा कि कार्मिक प्रशासन का महत्व भी उसके द्वारा संपादित कार्यों पर ही आधारित होता है। कार्मिक प्रशासन के महत्व को अग्रलिखित बिंदुओं के आधार पर और आसानी से समझा जा सकता है-

1. **योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन-** राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप में जनता के संपूर्ण कल्याण का उत्तरदायित्व प्रशासन पर ही होता है। प्रशासन के द्वारा जन कल्याण हेतु विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है तथा विभिन्न प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों का भी निर्माण किया जाता है। इन सभी प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों को कार्य रूप में परिणित करने का उत्तरदायित्व कार्मिकों पर होता है और इसमें कार्मिक प्रशासन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे-जैसे सरकार के द्वारा जनकल्याण के लिए नीतियों का निर्माण किया जाता है अप्रत्यक्ष रूप से देश की नौकरशाही पर नए दायित्व आ जाते हैं और परिवर्तित और नवीन दायित्व के अनुसार ही लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, कार्य की शर्तें एवं अन्य सेवा शर्तों में भी आवश्यक परिवर्तन किया जाता है। इन सभी कार्यों को करने का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से कार्मिक प्रशासन का ही होता है।
2. **जनहित की भावना का विकास-** कार्मिक प्रशासन सदा लोक कल्याण हेतु प्रयत्नशील रहता है। इस कार्य के लिए वह सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का ही पालन करता है। कार्मिक प्रशासन का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह कार्मिकों के लिए एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें जिससे सभी कर्मचारी जनहित के कार्यों में पूर्ण रूप से रुचि लेने लगे तथा अधिकतम मात्रा में जन संतोष उत्पन्न करने का प्रयास करें। कर्मचारियों में कार्मिक प्रशासन को यह भावना भी उत्पन्न करनी पड़ती है कि वह इस बात का ध्यान रखें कि केवल कुशलता पूर्वक कार्य करना ही उनकी सफलता का मापदंड नहीं है, बल्कि उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनके प्रयासों से कितना सार्वजनिक कल्याण होता है तथा कितना जन संतोष उत्पन्न होता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो ऐसी भावना और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में प्रशासन जनता की इच्छा पर निर्भर करता है। प्रशासन को जनता का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है और यह समर्थन वे तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब वे प्रशासनिक कार्यों से

जनता को पूर्ण संतुष्टि प्रदान करें। कार्मिक प्रशासन सार्वजनिक कल्याण हेतु बनाई गई योजनाओं को क्रियान्वित कर के जन संतोष उत्पन्न करता है।

3. **कार्य कुशलता में वृद्धि-** कार्मिक प्रशासन का महत्व इस तथ्य में भी समाहित होता है कि वह कर्मचारियों की कार्य क्षमता में वृद्धि करने का भी निरंतर प्रयास करता रहता है। सक्षम कर्मचारियों के अभाव में संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। इसके लिए कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों को लोक सेवा में प्रवेश से पहले तथा प्रवेश के पश्चात भी प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा अपनी नीतियों में ऐसे तत्वों को समाहित करने का प्रयास करता है जिसके कारण प्रशासन अपने कर्मचारियों को संतुष्ट रख सके। ऐसा करने के लिए कार्मिक प्रशासन के द्वारा अपने कार्मिकों को पर्याप्त वेतन, कार्य के समुचित घंटे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं, सेवानिवृत्ति लाभ आदि सुविधाएं उपलब्ध कराने का प्रबंध किया जाता है। यही सब वह व्यवस्थाएं हैं, जिनके द्वारा किसी भी संगठन में कार्यरत कर्मचारी संतुष्ट रहता है और कर्मचारी की संतुष्टि ही उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि का एक बहुत महत्वपूर्ण कारक होता है।
4. **उत्तरदायी प्रशासन-** उत्तरदायी प्रशासन का निर्माण करना कार्मिक प्रशासन की महत्ता को प्रदर्शित करने वाला एक और तत्व होता है। लोकतांत्रिक प्रशासन उत्तरदायी होता है कि वह अपने कार्यों का संपादन कुछ इस प्रकार से करता है, कि उन कार्यों में प्रशासन की जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अभिव्यक्त हो सके। इसके लिए प्रशासन के द्वारा समुचित व्यवस्था की जाती है। प्रशासन के द्वारा ऐसा प्रबंध किया जाता है कि यदि कोई अधिकारी कभी भी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है अथवा अनुत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करता है तो कार्मिक प्रशासन उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करता है। संगठन में कर्मचारी के अपेक्षित व्यवहार के बारे में आचार संहिता में उल्लेख किया जाता है जो कर्मचारी को उत्तरदायित्व पूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सकें।
5. **मनोबल का निर्माण-** संगठन में कर्मचारी की उत्पादकता तभी बनी रह सकती है या बढ़ सकती है जब कर्मचारी में कार्य करने की इच्छा बनी रहे। कर्मचारियों में कार्य करने की इच्छा बनाए रखने के लिए उनका मनोबल बनाए रखना आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करने के लिए निरंतर प्रयास किए जाते रहते हैं।
6. **परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य-** देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन निरंतर बने रहते हैं और यह परिवर्तन प्रशासन के समक्ष नवीन उत्तरदायित्व एवं चुनौतियां उत्पन्न कर देते हैं। कार्मिक प्रशासन का महत्व इस बात में भी निहित है कि वह परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। कार्मिक प्रशासन परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति सजग रहकर इस प्रकार की व्यवस्था करता है कि प्रशासनिक संगठन परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम रह सके। कार्मिक प्रशासन गतिशील एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य स्थापित करने की अद्भुत क्षमता रखता है।
7. **समन्वय-** कार्मिक प्रशासन संगठन के विभिन्न सिद्धांतों का समुचित ध्यान रखता है तथा इन सिद्धांतों के निर्वहन की दृष्टि से वह विभिन्न नीतियों का निर्माण करता है। विभिन्न नीतियों की क्रियाओं में समन्वय उत्पन्न करने का प्रयास कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही किया जाता है। समन्वय का होना इसलिए अत्यधिक आवश्यक होता है कि मानवीय अथवा भौतिक साधनों का दुरुपयोग ना हो सके तथा कार्यों के दोहराव को भी रोका जा सके।
8. **नियंत्रण-** संगठन द्वारा अपने वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह आवश्यक होता है कि उसके कर्मचारी वर्ग उचित रीति से अपने कार्यों का संपादन करते रहे और ऐसा कर्मचारियों पर नियंत्रण स्थापित किए बिना

संभव नहीं हो सकता है। कर्मचारियों पर नियंत्रण तथा उनकी क्रियाओं में समन्वय उत्पन्न करने की दृष्टि से कार्मिक प्रशासन का विशेष महत्व होता है।

## 2.5 निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से आप यह बात स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे कि किसी भी संगठन में कार्मिक प्रशासन उसका कितना महत्वपूर्ण भाग होता है। कार्मिक प्रशासन के अपने कुछ उद्देश्य निर्धारित होते हैं जिन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में ही कार्मिक प्रशासन के द्वारा विभिन्न कार्यों का संपादन किया जाता है। कार्मिक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले यह कार्य कार्मिक प्रशासन का महत्व भी इंगित करते हैं।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. कार्मिक प्रशासन के कोई दो उद्देश्य बताइए।
2. कार्मिक प्रशासन के महत्व को इंगित करने वाले दो बिंदु बताइए।
3. उत्तरदायी प्रशासन से आप क्या समझते हैं?
4. कार्मिक प्रशासन के कोई चार कार्य बताइए

## 2.6 सारांश

कार्मिक प्रशासन संगठन में कार्मिकों से संबंधित सभी प्रकार की नीतियों के निर्माण, उनके क्रियान्वयन तथा कार्मिकों पर निरीक्षण और नियंत्रण का कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन वर्तमान संदर्भ में संगठनों का जीवन प्राण होता है, क्योंकि परिस्थितिकी निरंतर परिवर्तित होती रहती है ऐसे में कार्मिकों का ना केवल मनोबल बनाए रखना आवश्यक होता है बल्कि उनके लिए समुचित प्रभावी नीतियों का निर्माण भी उतना ही आवश्यक होता है जो कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही संपादित किया जाता है। बदलते समय में कार्मिकों के द्वारा कार्मिक प्रशासन से अच्छी कार्मिक नीतियों की अपेक्षा की जाती है साथ ही कार्मिक प्रशासन का भी यह प्रमुख उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह अपने कार्यों का निष्पादन कुशलतापूर्वक करें।

## 2.7 शब्दावली

मनोबल- व्यक्तियों के समूह की संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की निरंतर क्षमता।

प्रतिफल- कर्मचारियों को उनके कार्य के बदले में दिए जाने वाले वेतन के एक निश्चित क्रमबद्ध तरीका।

कार्य मूल्यांकन- कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्य की विधियों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन कर कार्य विवरण को विकसित करना।

## 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का निर्धारण, कार्मिकों के मनोबल तथा अभिप्रेरणा से संबंधित समस्त कार्य, **2.** मनोबल का निर्माण, परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य, **3.** कार्मिक प्रशासन द्वारा जब अपने कार्यों का संपादन कुछ इस प्रकार से किया जाए कि, उन कार्यों में प्रशासन की जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अभिव्यक्त हो सके, **4.** मानव शक्ति प्रबंधन,श्रम संबंध, प्रशासन में अनुशासन की स्थापना,कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण एवं वेतन व्यवस्था

## 2.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची


1. सिन्हा, बी. एम. 1986, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कांसेप्टस एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
2. गोयल, एस. एल.1984, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999, लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र 2008, कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।


## 2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


3. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।


## 2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को बताइए।
2. कार्मिक प्रशासन के कार्य पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. कार्मिक प्रशासन के महत्व पर प्रकाश डालिए।

# इकाई- 3 प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उनकी भूमिका

## इकाई की संरचना


3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 लोक सेवा का अर्थ परिभाषाएं
3.3 नौकरशाही एवं लोक सेवाएं
3.4 विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं
3.5 आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं
3.6 लोक सेवा की नवीन प्रवृतियां
3.7 लोक सेवा तथा संवैधानिक संरक्षण
3.8 लोक सेवाओं की भूमिका
3.9 निष्कर्ष
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न


## 3.0 प्रस्तावना

लोकसेवा राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। इसे असैनिक सेवा, सरकारी सेवा, सिविल सेवा, सार्वजनिक सेवा जैसे कई नामों से जाना जाता है। सरकार का कार्य केवल राज्य- सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मंडलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपतियों तथा वरीय अधिकारियों, दूसरे शब्दों में मंत्रीगण द्वारा अकेले ही पूरा नहीं किया जा सकता है। इन लोगों से यह आशा भी नहीं की जाती है कि वह कर एकत्र करें, लेखा-परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें; हिसाब-किताब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात ही दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा किए जाते हैं जिन्हें स्थाई लोक सेवक कहा जाता है। स्त्री-पुरुषों का यह विशाल समूह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक कानून का पालन करवाता है और इन्हीं के द्वारा आम जनता सरकार के संपर्क में आती है। आम जनता की दृष्टि में लोक सेवक का महत्व भले ही कम हो लेकिन मंत्रालयों के लिए काम करने वालों की यह जमात सरकार के उन उद्देश्यों को जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए कम आवश्यक नहीं है। राज्य के उत्तरदायित्व एवं कार्य को पूरा करने के लिए जिन स्थाई कर्मचारियों की सहायता ली जाती है, उन्हें 'लोक सेवक' कहा जाता है। उनके द्वारा जो कार्य संपादित किए जाते हैं, वे लोक सेवा के कार्य कहे जाते हैं। पिफनर के अनुसार, "सेवी वर्ग को प्रशासन की आधारशिला कहा जाता है।" लोक सेवाएं राष्ट्र के प्रशासनिक और सामाजिक जीवन को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। राष्ट्र के बहुमुखी विकास हेतु जो निर्णय लिए जाते हैं, योजनाएं बनाई जाती है, उन्हें कार्यान्वित करने का मुख्य उत्तरदायित्व लोक सेवा पर ही होता है।

आधुनिक राज्य एफ. एम. मार्क्स के शब्दों में, "प्रशासकीय राज्य" बन गया है। प्रशासकीय राज्य में व्यक्ति की निर्भरता प्रशासन पर इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके बिना व्यक्ति अपने आम दिनचर्या की पूर्ति नहीं कर

सकता है। प्रशासन की जिम्मेदारियां भी काफी बढ़ जाती हैं। जिस अनुपात में प्रशासन की जिम्मेदारियां बढ़ी हैं उसी अनुपात में लोक सेवा का महत्व भी महत्व भी बढ़ा है। सच्चाई तो यह है कि किसी भी देश का शासन या प्रशासन अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में तब तक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता जब तक लोक सेवाओं के कर्मचारी सरकार की नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कृत संकल्प ना हो। लोक सेवाएं जनता के कल्याण के लिए ही समर्पित होती हैं। आज के आधुनिक राज्य का प्रमुख उद्देश्य लोक-कल्याण ही है, यह लोक-इच्छा पर आधारित होता है और लोक सेवा के सहयोग से पूरा किया जाता है।

प्रारंभ में जो सरकारें थी वह अहस्तक्षेप की नीति में ज्यादा विश्वास रखती थी। उनका कार्य समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखना तथा अपने राज्य की रक्षा करने तक ही सीमित था। फलतः उस समय असैनिक सेवाओं के कार्यक्षेत्र भी सीमित थे। जन कल्याण के कार्य नाम मात्र को ही संपन्न किए जाते थे, परंतु आज प्रायः विश्व के हर देश में जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने की बात सरकार सोचती है। अतः नागरिक सुविधाओं को पूरे देश में संचालित करने के लिए प्रशासन अपने कार्यालयों और लोक सेवकों का हर क्षेत्र में एक जलसा दिखाता है ताकि सभी नागरिक उसकी पहुंच में आ सके। आज लोक सेवा की सफलता पर राज्य के नागरिकों का सुख और प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है। लोक सेवा के अभाव में ना तो सरकार अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकती है और ना ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास पूरा कर सकता है। लोक सेवाएं देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था एवं शांति प्रदान करती हैं डॉक्टर हरमन फाइनर ने लोक सेवाओं को प्रशासन पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है।

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक सेवा की परिभाषाओं के साथ लोक सेवा का अर्थ समझ जाएंगे।
- लोक सेवा एवं नौकरशाही में अंतर को भी समझ पाएंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं में अंतर को भी जान पाएंगे।
- आधुनिक लोक सेवाओं की विशेषताओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- लोक सेवा की नवीन प्रवृतियां के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- भारत में लोक सेवाओं को दिए जाने वाले संवैधानिक संरक्षण के बारे में भी जान जाएंगे।
- लोक सेवाओं की भूमिका को विस्तार से जान पाएंगे।

## 3.2 लोक सेवा का अर्थ और परिभाषा

प्रायः प्रत्येक देश में मोटे तौर पर दो प्रकार की सेवाएं पाई जाती है- प्रथम, सैनिक सेवा और द्वितीय, असैनिक सेवा। सैनिक सेवा का तात्पर्य ऐसी सेवाओं से होता है जो देश की सेवा और सुरक्षा व्यवस्था से संबंधित होती है। दूसरी तरफ, असैनिक सेवा का संबंध व्यक्तियों के उन समूहों से है जो लोक सेवा करते हैं, सरकार द्वारा निर्देशित जनकल्याण के कार्यक्रमों को पूरा करते हैं। एक अन्य बात इससे संबंधित यह भी है कि सरकार की कार्यपालिका शाखा भी मुख्यतः दो भागों में बंटी होती है- राजनीतिक कार्यपालिका तथा स्थाई कार्यपालिका। राजनीतिक कार्यपालिका के अंतर्गत वे लोग आते हैं जिनका संबंध योजनाओं के निर्माण, नीतियों के निर्धारण तथा निर्णय लेने से हैं। यह अस्थाई होते हैं तथा इनकी सेवा की अवधि राजनीतिक कारणों पर निर्भर करती है। दूसरी तरफ, अराजनीतिक एवं स्थाई कार्यपालिका है जो राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा निर्मित योजनाओं तथा निर्धारित

नीतियों को पूरा करने में सहयोग प्रदान करती है। यह स्थाई होते हैं तथा इनकी निश्चित सेवा- अवधि होती है। वस्तुतः ये ही लोक सेवा के कर्मचारी अर्थात लोक सेवक हैं। सरकार अपना कार्य मंत्रियों तथा विभाग के राजनीतिक आदेशों के माध्यम से ही पूरा नहीं कर सकती बल्कि उन कार्यों को लागू करने तथा विस्तृत रूप से जनता तक पहुंचाने के लिए कुछ ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो उत्तरदायित्व की भावना से काम करें। इन उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए जिन कर्मचारियों और अधिकारियों की बहाली की जाती है, उन्हें ही लोक सेवक कहा जाता है। लोक सेवाओं की महत्ता को बताते हुए एल. डी. व्हाइट ने कहा है कि "एक अच्छा लोक प्रशासन बहुत से तत्वों के संयोजन से बनता है, जैसे- नेतृत्व, संगठन, वित्त, आदर्श विधियां और प्रक्रियाएं किंतु किसी भी दूसरे तत्व से बड़ा तत्व है मानव शक्ति।"

'लोक सेवा' अर्थात सिविल सर्विस शब्द की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी में व्यापारिक तथा प्रशासनिक कार्य करने वाले कार्मिकों के लिए हुई। आधुनिक लोक सेवाओं का उद्भव भी पश्चिमी यूरोप में ही हुआ जबकि प्राचीन काल में लोक सेवाओं का जन्म ईस्वी सन् 6 में चीन में हुआ।

विभिन्न विचारकों ने लोक सेवाओं के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए जो कुछ इस प्रकार से हैं-

फाइनर के अनुसार, " लोक सेवा अधिकारियों का एक ऐसा पेशेवर निकाय है जो स्थाई, वेतन भोगी, कार्यकुशल या दक्ष होता है।"

एल. डी. व्हाइट के शब्दों में, " लोक सेवाएं प्रशासनिक संगठन का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है।"

भारतीय दंड संहिता की धारा- 21 के 12वें विवरण के अनुसार, "सरकारी सेवारत या वेतन पाने वाला अथवा सरकारी कार्य के लिए शुल्क या कमीशन पाने वाला व्यक्ति 'लोक सेवक' की श्रेणी में आता है।"

भारत की लोक सेवा के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में कहा था, मुख्यमंत्री और मंत्री भी लोक सेवक की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि वह सरकारी वेतन प्राप्त करते हैं। सैनिक, न्यायिक तथा औद्योगिक सेवाओं के सेवीवर्ग लोक सेवक में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

ब्रिटेन में 'लोक सेवा' का आशय उन कर्मचारियों से हैं जो "राजनीतिक या न्यायिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त ताज( महाराजा/महारानी) के सेवक जो असैनिक रूप से सेवायोजित हो और जिनका पारिश्रमिक पूर्णतया तथा प्रत्यक्षतः उस धनराशि में से दिया जाता है जो संसद द्वारा इस हेतु स्वीकृत की गई हो।"

अमेरिकन विश्व कोष में दी गई परिभाषा के अनुसार, "लोक सेवाएं उन संगठित वेतन भोगी सेवी वर्ग के निकाय को कहते हैं जो सरकार के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। यह सेवाएं तथा इनका नामकरण विभिन्न देशों की परंपराओं के अनुसार हो सकता है। यद्यपि आधुनिक राज्य में अधिकांश सेवाएं लोक सेवाएं ही हैं तथापि 'चुने हुए जन-जनप्रतिनिधि तथा रक्षा सेवी वर्ग' लोक सेवा से बाहर माने जाते हैं।"

न्यू वेबेस्टर बीसवीं सदी विश्व कोष के अनुसार लोक सेवाओं से आश्य निम्नलिखित सेवाओं या कार्मिकों से है-

- रक्षा तथा न्यायिक कार्यो के अतिरिक्त वे सभी कार्मिक जो सरकारी प्रशासन में नियुक्त हैं;
- ऐसी सरकारी सेवा जिसमें कार्मिक का कार्यकाल सुरक्षित है तथा प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से प्रवेश पाया है; और
- सरकारी विनियमों के अधीन गठित सेवा लोक सेवा है।

वस्तुतः लोक सेवा या लोक सेवक की अभी तक स्पष्ट तथा सर्वमान्य परिभाषा विकसित नहीं हो सकी है, क्योंकि प्रत्येक देश की कार्मिक सेवा तथा पदों का वर्गीकरण स्थानीय संस्कारों एवं पर्यावरण से प्रभावित है। भारत में मंत्री लोक सेवक तो माने जा सकते हैं किंतु वे किसी 'लोक सेवा' के स्थाई सदस्य नहीं कहला सकते हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि लोक सेवा से तात्पर्य उन सरकारी सेवाओं से हैं, जिसके पदाधिकारियों को वेतन सरकारी

खजाने से मिलता है तथा जिन पर सरकार नियंत्रण रखती है लेकिन इनमें सैनिक सेवा तथा न्यायिक सेवा के अधिकारी शामिल नहीं है, क्योंकि इनकी पद स्थिति विशिष्टता प्राप्त है। लोक प्रशासन से संबंधित साहित्य में 'लोक सेवा' के वर्णन तथा वर्गीकरण में प्रायः प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को ही समाहित किया जाता है जो संकुचित दृष्टिकोण है। आधुनिक कल्याणकारी राज्य के उद्भव से पूर्व प्रचलित रही राजशाही व्यवस्थाएं मुख्यतः 'सैनिक' प्रकृति की थी जिनमें राजा के अधिकांश कार्मिक या सेवक सेना दल के सदस्य होते थे। यद्यपि बहुत से राजाओं ने कल्याणकारी गतिविधियों पर ध्यान दिया फिर भी राज्य की सुरक्षा तथा विस्तार उनकी प्राथमिक गतिविधि होती थी।

## 3.3 नौकरशाही एवं लोक सेवाएं

सामान्यतः लोक सेवाओं और नौकरशाही को समानार्थक माना जाता है, लेकिन यह सही मत नहीं है। इन दोनों में मूल उत्तरदायित्व एवं संबंध में कोई अंतर ना होते हुए भी दोनों शब्दों के उच्चारण मात्र में अंतर दिखाई देता है। वस्तुतः नौकरशाही और लोक सेवा में समानता का भाव वेबर के आदर्श प्रतिमान के बाद उत्पन्न हुआ। अपने एक प्रतिमान में वेबर ने नौकरशाही की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया था जो लोक सेवाओं में भी देखने को मिलती है और इसी कारण इन दोनों को समान माना जाने लगा। वास्तव में दोनों में अंतर है। एक प्रकार से नौकरशाही लोक सेवा में व्याप्त बुराई का नाम है। लोकसेवा व्यापक एवं सकारात्मक पक्ष को उजागर करती है, वही नौकरशाही संकीर्णता को दर्शाती है। लोक सेवाओं का कार्य देश की परिस्थितियों के अनुसार प्रभावित होता रहता है। लोक सेवाओं को वर्तमान में राज्य तथा संविधान के माध्यम से गठित कर विशिष्ट दायित्वों के अनुरूप ढाला जाता है। यह लोक सेवाएं राजनीतिक सत्ता की नीतियों एवं कार्यक्रमों को न केवल निष्पादित करती है बल्कि राजनीतिक सत्ता को आवश्यक सूचना तथा परामर्श भी उपलब्ध कराती हैं। नौकरशाही इनसे एकदम भिन्न अवधारणा है।

लोक सेवा एवं नौकरशाही को और अच्छे से समझने के लिए आइए इन दोनों के बीच अंतर को इस तालिका के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं-

| लोक सेवा | नौकरशाही |
|---|---|
| 1. लोक सेवाओं की अवधारणा मानव सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गई थी। | 1. इनका जन्म 18वीं सदी से प्रारंभ होता है। |
| 2. लोक सेवाएं, असैनिक सेवाएं हैं। | 2. यह सैनिक एवं और सैनिक दोनों ही सेवा में विद्यमान है। |
| 3. इन का तात्पर्य आम जनता के लिए सुविधाएं एवं सेवाएं प्रदान करने वाले सरकारी तंत्र के कार्मिकों से है। | 3. यह कर्मचारियों की कार्यशैली एवं व्यवहार का नाम है। |
| 4. इन का गठन संविधान एवं राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। | 4. विधिवत गठित नहीं बल्कि लोक सेवाओं में परिलक्षित होती है। |
| 5. यह लोक प्रशासन का विस्तृत एवं बहुआयामी पक्ष हैं। | 5.नौकरशाही इन लोक सेवाओं में व्याप्त एक कार्य शैली एवं मानसिकता है। |

| | |
|---|---|
| 6. यह सकारात्मक कार्य कुशलता का प्रतीक है। | 6. नकारात्मक तथा अकार्यकुशलता का प्रतीक है। |
| 7. जन सेवक तथा व्यापकता को दर्शाती हैं। | 7. संकीर्णता का परिचायक है। |
| 8.लोकसेवा पद के लिए प्रतियोगिता द्वारा भर्ती होती है और वेतनमान होता है। | 8. नौकरशाही पद नहीं है अतः भर्ती नहीं होती और ना ही परीक्षा होत। |
| 9. लोक सेवाएं मानव शरीर की संरचना की भांति है। | 9. नौकरशाही मानव शरीर की कार्यप्रणाली की भांति कहीं जा सकती हैं। |

## 3.4 विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं

अब तक के अध्ययन के द्वारा आप लोक सेवा का अभिप्राय स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे। आप यह भी समझ गए होंगे कि किस प्रकार लोकसेवा और नौकरशाही में भी अंतर होता है। भारत के संदर्भ में विशेष रूप से लोक सेवाओं को समझने से पूर्व विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं को जान लेना चाहिए। इन्हें जान लेना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जो तत्व विभिन्न देशों में लोक सेवा की विशेषताओं में परिवर्तन लेकर आते हैं या उनका निर्धारण करते हैं या प्रभावित करते हैं वही तत्व लोक सेवाओं की भूमिका में भी उसी प्रकार का परिवर्तन लेकर आते हैं या प्रभावित करते हैं।

विकसित देशों में लोक सेवा की प्रवृत्ति और प्रकृति विकासशील देशों से बिल्कुल अलग होती है। यद्यपि आज विभिन्न प्रकार के सूचना एवं प्रसार के साधनों का विकास हो जाने से यह अंतर काफी कम हो गया है, फिर भी आर्थिक एवं तकनीकी स्तरों का अंतर होने के कारण लोक सेवा की परंपराओं के बीच अंतर होना स्वाभाविक सा है। विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं को नीचे दी जा रही तालिका के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

| विकासशील देशों में लोक सेवाएं | विकसित देशों में लोक सेवा |
|---|---|
| 1. इन देशों में लोक सेवाएं अधिकांशतः15 वीं सदी के पश्चात के उपनिवेशवाद का परिणाम है। | 1. इन देशों में लोक सेवाएं मुख्यतः संबंधित देश की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं । |
| 2.इन देशों का समाज रूढ़िवादी अशिक्षित तथा कृषि को का होने के कारण यहां लोक सेवाओं पर जाति, भाषा एवं परंपरा का प्रभाव होता है। | 2. इन देशों में इस प्रकार का प्रभाव ना के बराबर होता है। |
| 3. लोक सेवक कर्तव्य हीनता तथा अहम की भावना रखते हैं। | 3. लोक सेवकों में उत्तरदायित्व की भावना पाई जाती है। |
| 4. लोक सेवाओं का वर्गीकरण बहुत उलझा हुआ होता है। अनेक वेतनमान तथा कार्मिकों में वर्ग भेद पाया जाता है। | 4. इन देशों में लोक सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा सरल होता है जिससे वेतनमान ओं की संख्या भी कम होती है। |
| 5. इन देशों की लोक सेवाओं में सामान्यज्ञ | 5. इन देशों में विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व दिया |

| | |
|---|---|
| अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है। | जाता है। |
| 6. कार्य निष्पादन- मूल्यांकन या तो होता ही नहीं है अथवा केवल औपचारिकता की पूर्ति भर होता है। | 6. कार्य निष्पादन- मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है। |
| 7. लोक सेवाओं के वेतन भत्ते निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होते हैं। | 7. निजी क्षेत्र में लोक सेवाओं से अधिक वेतन भत्ते दिए जाते हैं। |
| 8. पदोन्नति का आधार अधिकांशतः वरिष्ठता को ही माना जाता है। | 8. पदोन्नति सामान्य तौर पर योग्यता एवं वरिष्ठता दोनों पर आधारित होती है। |
| 9. देश की बहुत कम प्रतिशत जनसंख्या को ही लोक सेवाओं से रोजगार प्राप्त होता है। | 9. देश की जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत लोक सेवाओं में कार्यरत होता है। |
| 10. उच्च वेतन तथा पदोन्नति लोक सेवाओं में अभिप्रेरणा के मुख्य स्रोत होते हैं। | 10. लोक सेवकों को अनेक प्रकार की अभिप्रेरणा है तथा वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध होते हैं। |
| 11. इन देशों में कार्मिक प्रशासन में अनुसंधान परिवर्तन तथा नवाचार को महत्व नहीं दिया जाता है। | 11. अनुसंधान तथा नवाचार बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। |

## 3.5 आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं

विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवा की विभिन्न विशेषताओं को पढ़ने के बाद आप यह तो समझ ही गए होंगे कि दोनों प्रकृति के देशों की व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन उन देशों की लोक सेवाओं की विशेषताओं तथा स्वरूप को भी प्रभावित करते हैं। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रचार प्रसार ने विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकृति के देशों की लोक सेवाओं पर बहुत प्रभाव डाला है। आधुनिक लोक सेवा की विशेषताओं के संबंध में ग्लैडन ने कहा है कि "लोक सेवा से यह अपेक्षाएं हैं कि यह बिना पक्षपात के चुनी जाएगी, प्रशासनिक दृष्टि से कार्य कुशल होगी, राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होगी तथा समाज सेवा की भावना से ओतप्रोत होगी।" लोकसेवा आज के आधुनिक युग में कुशल, प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ बन गई है। प्रशासन के हर क्षेत्र में विशेषीकरण बढ़ गया है। अतः आज के लोक प्रशासन में पहले के लोक सेवकों की अपेक्षा ज्यादा योग्य, कर्मठ और शिक्षित व्यक्ति प्रवेश कर रहे हैं। आधुनिक लोक सेवा की प्रमुख विशेषताओं को निम्न बिंदुओं के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

1. **प्रशिक्षित एवं कुशल कार्यकर्ता-** आधुनिक लोक सेवा योग्य, प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होती है जो अनेक उत्तरदायित्व को निर्धारित सीमा के भीतर ही बेहतर ढंग से पूरा करता है। आधुनिक लोक सेवा की प्रवृत्ति व्यवसायिक है। इसमें कार्यरत लोग उसी तरह से अपने अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं, जिस प्रकार से एक व्यवसायिक संगठन में लोग रहते हैं। आज प्रशासन भी ठीक उसी तरह कई व्यवसायों में बंटा है, जैसे अलग-अलग प्रकार के व्यवसाय बटे होते हैं। अब लोक सेवाओं में नियुक्ति का आधार पहले जैसा सामान्य नहीं रहा बल्कि बदल गया है। आज प्रशासन में कार्मिकों का चयन कठिन योग्यता परीक्षा और जांच के आधार पर किया जाता है जिसके कारण प्रशासन को योग्य, प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारी प्राप्त होने लगे हैं।

2. **वेतन भोगी कार्यकर्ता-** लोक सेवा में योग्यता के आधार पर सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का चुनाव होने के बाद उन्हें उनकी योग्यता और पद के अनुसार निर्धारित वेतन दिया जाता है तथा उनकी सेवा के अनुसार उन्हें अन्य सुविधाएं और साधन भी उपलब्ध कराए जाते हैं। अतः यह भी लोक सेवाओं की एक विशेषता है कि यह अवैतनिक कार्यकर्ताओं का निकाय नहीं है।
3. **स्थाई कार्यकाल-** राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्य अस्थाई होते हैं, परंतु लोक सेवा के कर्मचारी स्थाई प्रकृति के होते हैं। अर्थात लोक सेवा में अपनी प्रविष्टि के बाद सभी लोक सेवक निर्धारित समय और उम्र तक अपने पद पर कार्य करते रहते हैं। राजनीतिक सत्ता के बदलने पर भी इनके कार्यकाल पर कोई असर नहीं होता है, यही कारण है कि लोक सेवा को लोग जीवनयापन और जीवन वृति के रूप में अपनाते हैं।
4. **तटस्थ एवं निष्पक्ष-** लोक सेवकों की अन्य विशेषताओं की तरह उनकी तटस्थ एवं निष्पक्ष प्रवृत्ति भी उनकी एक विशेषता मानी जाती है। लोक सेवक राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होते हैं। तटस्थता से अभिप्राय यह है कि किसी भी राजनीतिक दल के सत्ता में आने का या उनके सत्ता से जाने का लोक सेवकों की निष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लोक सेवक सत्ता में आए प्रत्येक राजनीतिक दल के निर्णय को राज्य का आदेश मानकर पूरा करते हैं। प्रशासन के नियम और कानूनों को लागू करने में लोक सेवक निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं और किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करते हैं।
5. **पद सोपान का सिद्धांत-** लोक सेवा का संपूर्ण संगठन पदसोपान एक व्यवस्था के आधार पर स्थापित होता है। यह संगठन पिरामिड की भांति होता है जिसमें प्रत्येक अधिनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में कार्य करता है तथा अपने कार्यो के लिए वह सदैव अपने उच्च अधिकारी से सत्ता प्राप्त करता है तथा उसी के प्रति उत्तरदाई भी होता है। इसका मूल उद्देश्य लोक सेवा के विभिन्न सोपानों में अनुशासन, उत्तरदायित्व एवं कुशलता बनाए रखना है।
6. **अनामता का सिद्धांत-** लोकसभा के सदस्यों का कार्य प्रचारात्मक तथा अपना नाम कमाने का ही होता है जबकि लोकसेवक ही वे व्यक्ति होते हैं जो पर्दे के पीछे रहकर अपना नाम सामने लाए बिना ही अपने उत्तरदायित्व को पूरा करते हैं। नाम कमाने और परदे के आगे रहने का अधिकार केवल राजनीतिक कार्यपालिका के मंत्रियों और अन्य अध्यक्षों के पास ही होता है।
7. **औपचारिक दृष्टिकोण-** लोक सेवा के सदस्य औपचारिक दृष्टिकोण से नियमों और कानूनों के अनुसार कार्य करते हैं। इनमें मानव संबंधों, भावनाओं और विचारधाराओं का स्थान नहीं होता है। साथ ही यह अनौपचारिकता से भी दूर रहकर कार्य करते हैं।
8. **राज्य व्यवस्था का अनिवार्य अंग-** प्रत्येक प्रकार की शासन व्यवस्था के संचालन करने के लिए लोक सेवा ही एकमात्र साधन होता है। लोक सेवकों की अनिवार्यता को समाप्त नहीं किया जा सकता है। लोक सेवा के बिना राज्य अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

इस प्रकार आधुनिक लोक सेवा अनेक विशेषताओं को लिए हुए होती है जो इसकी आवश्यकता एवं महत्व को भी इंगित करती है। लोक सेवाओं की इन विशेषताओं को जानने के बाद आइए अब हम लोक सेवाओं की आधुनिक व नवीन प्रवृत्तियों पर भी एक नजर डालते हैं और यह समझने का प्रयास करते हैं कि बदलते परिवेश में लोक सेवाओं की प्रवृत्तियों में किस प्रकार के बदलाव आ रहे हैं।

## 3.6 लोक सेवा की नवीन प्रवृतियां

आज के इस विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। बढ़ते हुए संचार साधनों एवं आधुनिक आविष्कारों ने लोक सेवा के समक्ष अनेक नई समस्याओं को भी जन्म दिया है। लोकसेवा एक गत्यात्मक संस्था है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल लेना लोक सेवा की मुख्य विशेषता मानी जाती है। भारत के संदर्भ में, आधुनिक समय में लोक सेवाओं में पाई जाने वाली निम्नलिखित आधुनिक प्रवृतियां हैं-

1. लोक सेवकों की संख्या में तेजी से वृद्धि।
2. लोक सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों तथा प्रविधिज्ञों की नियुक्ति के कारण बढ़ती हुई विभिन्नता।
3. लोक सेवकों की शक्तियों में निरंतर वृद्धि हो रही है।
4. लोक सेवाओं में गुणों की आवश्यकता पड़ रही है।
5. नकारात्मकता से सकारात्मक कार्य की ओर लोक सेवा के दायित्वों में झुकाव है।
6. लोक सेवा की तटस्थता की परंपरागत अवधारणा में परिवर्तन हो रहा है।
7. लोक सेवा के लिए नैतिक तथा व्यवसायिक मापदंडों पर अधिक बल दिया जा रहा है।
8. मानव संसाधन विकास की ओर झुकाव बढ़ रहा है।
9. लोक सेवा की विकास प्रशासन में भूमिका बढ़ रही है।
10. संरचना और कार्यों में लोकतांत्रिक तत्व।
11. पर्यावरणीय अनुकूलता।
12. सदस्यों के बीच आंतरिक संबंध एवं पारस्परिक निर्भरता।
13. गिरती हुई बदनाम छवि।

लोक सेवा के कार्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। दिन-प्रतिदिन उन पर नई जिम्मेदारियां डाली जा रही है। यही कारण है कि, भारत, अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और सोवियत संघ में लोक सेवकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। लोक सेवा में आज विशेषज्ञता का प्रचलन बढ़ गया है तथा तकनीकी कर्मचारियों की संख्या पहले की अपेक्षा ज्यादा होती जा रही है। हर छोटे-छोटे कार्यो के लिए भी विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है और उनका अलग-अलग विभाग कारों के आधार पर गठित किया जाता है। अतः लोकसेवा की नई प्रवृत्ति में विभिन्नता विशेषज्ञता दोनों ही पाई जाती हैं। लोक सेवकों पर बढ़ती हुई जिम्मेदारियों और उत्तरदायित्व के कारण ही लोक सेवकों की शक्तियों में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। जब तक लोक सेवा के कार्य में वृद्धि होती रहेगी लोक सेवकों की शक्तियों में प्रचार होता रहेगा। लोक प्रशासन का स्वरूप आज सकारात्मक कार्यों की तरफ पहले से कई गुना ज्यादा बढ़ गया है। लोकसेवा को जनहित में जनकल्याण की भावना से कार्य करना पड़ता है, अर्थात जनता की सहमति प्राप्त करना ही लोक सेवा की सकारात्मक प्रवृत्ति माना जाता है। लोक सेवा की सदस्यता की परंपरागत अवधारणा में परिवर्तन हुआ है। आज लोकसेवक राजनीतिक रूप से ज्यादा जागरूक होते हैं। यह राजनीतिक कार्यपालिका को अपने निर्णयों से प्रभावित भी करने लगे हैं। अंत में यही कहा जा सकता है कि आज लोक सेवा की नई प्रवृत्ति में नैतिक एवं व्यवसायिक मापदंड पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। लोक सेवकों का मनोबल बना रहे, इसके लिए उनके जीवन से जुड़े हुए होते, मानसिक और भावनात्मक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है। अनौपचारिक संबंधों तथा राजनीतिक कार्यपालिका के व्यवहारों के द्वारा भी नैतिकता और मनोबल को बढ़ावा मिलता है। अपने कार्यों के प्रति लोकसेवक व्यवसायिक मापदंड अपना कर पहले से कहीं ज्यादा कुशलतापूर्वक एवं कर्तव्य निष्ठा से लोक सेवा में अपना योगदान दे रहे हैं।

## 3.7 लोक सेवा तथा संवैधानिक संरक्षण

लोक सेवक सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों और निर्णय को निष्पक्ष होकर लागू करने का प्रयास करते हैं। देशों का विकास और उनकी सफलता इन लोक सेवकों के कुशल, प्रभाव शील कार्यकरण पर ही निर्भर करती है। लोक सेवक तो सरकार की सफलता और देश के विकास को सुनिश्चित करते हैं परंतु लोक सेवकों का किसी भी प्रकार से उत्पीड़न ना हो इस बात का ध्यान रखना भी देश की सरकारों का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। सरकार लोक सेवकों के साथ कोई पक्षपात पूर्ण व्यवहार ना करें, इसके लिए विश्व के सभी देशों के लोक सेवकों को संवैधानिक संरक्षण की आवश्यकता होती है। लोकतांत्रिक समाज कानून के शासन पर आधारित होता है। भारत भी एक लोकतांत्रिक समाज है। अतः यहां पर लोक सेवकों को ''संवैधानिक संरक्षण' प्रदान किया जाता है। आइए भारत में लोक सेवकों को प्रदान किए जाने वाले संवैधानिक संरक्षण के बारे में विस्तार से जान लेते हैं-

1. अनुच्छेद- 309 के अंतर्गत केंद्र एवं राज्य के लोक सेवकों की भर्ती एवं नियुक्ति की सेवा शर्तें संसद/राज्य विधानसभा के अधिनियम द्वारा नियंत्रित की जाएगी।
2. अनुच्छेद- 310 के अनुसार लोक सेवक राष्ट्रपति, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद पर रह सकेगा।
3. अनुच्छेद- 311 के अनुसार कानूनी और वैध सेवा मुक्ति, अपदस्थता या पदोन्नति के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं- सेवामुक्ति, अपदस्थ करना या पदावनति आदेश सक्षम सत्ता द्वारा दिए जाएं और प्रभावित व्यक्तियों को कार्यवाही के संबंध में स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान करना।
4. अनुच्छेद- 360 के अंतर्गत वित्तीय आपात स्थिति में केंद्र शासन राज्य के समस्त या वर्ग विशेष के लोक सेवकों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में कटौती के निर्देश दे सकता है।
5. मौलिक अधिकारों के अंतर्गत नागरिकों को समानता के अधिकार के अंतर्गत रोजगार के मामले में सबको अवसर की समानता प्रदान करता है।
6. संविधान के अनुच्छेद 308 से 323 के अंतर्गत निम्न संघीय एवं राज्यों की सेवाओं का वर्णन किया गया है-
   - केंद्र और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान।
   - अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना का प्रावधान।
   - सेवा की सुरक्षा लोक सेवाओं को प्रदान की गई है।
   - लोक सेवकों के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना(1976)

इस प्रकार भारत में लोक सेवकों को किसी भी प्रकार के उत्पीड़न और पक्षपातपूर्ण व्यवहार से सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारतीय संविधान में विभिन्न उपबंधो द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है।

## 3.8 लोक सेवाओं की भूमिका

उपरोक्त संपूर्ण वर्णन के द्वारा आप इस बात को भलीभांति जानते होंगे कि राज्य के विकास की विभिन्न इकाइयां कार्यरत हैं उनमें लोकसेवा एक महत्वपूर्ण परिसंपत्ति है। इसे शासन की चतुर्थ शाखा भी माना जाता है। शासन की 3 शाखाएं विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। इस शाखाओं के प्रयोजन तो स्पष्ट है। परंतु एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर लोक सेवा का क्या प्रयोजन है? सामान्य रूप से लोकसेवा तीनों शाखाओं से बनी हुई है। प्रत्यक्ष रुप से लोकसेवा सरकार के नियंत्रण में कार्य करती है। लोक सेवा का प्रमुख कार्य सरकार के दैनिक कार्यों को संपन्न करना तथा कानूनों को लागू करना है। विधायिका की परिसीमन के संदर्भ में लोक सेवा के निर्णायक भूमिका समझी जा सकती है। जो प्रतिनिधि चुनकर विधायिका में आते हैं उनके पास सामाजिक और आर्थिक जीवन के समस्त पहलुओं की ना तो जानकारी होती है और ना समझने का समय ही। साथ में क्रियान्वित

करने के तरीकों की भी जानकारी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में लोकसेवा अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। लोकसेवा को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। लोक सेवा नीतियों, निर्णय और कार्यक्रमों को बनाने में सहायता प्रदान करती है, नीति को व्यवहारिक रूप प्रदान करती है और जनता की बढ़ती हुई मांगों को संभालती है। वह विधि निर्माण की पहल नहीं करती है परंतु कानून को बनाने में विशेषज्ञ सलाह और आवश्यक आंकड़े उपलब्ध कराती है, जिसके बिना कानून बनाना संभव नहीं है। नौकरशाही नीति संघर्ष में सदैव विजय नहीं होती है, परंतु उसमें उसकी हमेशा सहभागिता उल्लेखनीय बात है।

लोक सेवा की इन सभी विशेषताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के प्रशासन में लोक सेवा का एक विशेष महत्व है। लोक सेवा को आज अनेक महत्वपूर्ण कार्यो का संपादन करना पड़ता है। वर्तमान विश्व की किसी भी शासन व्यवस्था में लोक सेवाओं के बिना शासन की नीतियों और कार्यक्रमों की क्रियान्वयन की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। जैसा कि आपने विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषता को पढ़कर जाना की,विकसित देशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्रियाओं में आधुनिकता आ गई है और उन्हीं क्रियाओं के संदर्भ में वहां का लोक प्रशासन भी प्रभावित हो चुका है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के परंपरागत गढ़ धराशाई होने लगे तथा एशिया, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और मध्य पूर्व में नए स्वतंत्र अर्थात विकासशील देशों का उदय होने लगा। यह विकासशील देश जिनमें भारत भी शामिल है अपनी रूढ़िवादी परंपराओं, शिक्षा, धार्मिक कट्टरता, जाति तथा वर्ग में भेद, संसाधनों की भिन्नता तथा कमजोर आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित है। यहां का प्रशासन तंत्र मुख्य रूप से उपनिवेश कालीन संस्कृति से प्रभावित है जिसमें कठोर नौकरशाही के अवगुण तथा विशेषज्ञता का अभाव है। परंतु इन सब विसंगतियों के होने के बावजूद इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दोनों ही प्रकार के देशों में लोकसेवा प्रशासन की आधारशिला है। राज्य के प्रत्येक नए कार्य और प्रत्येक नई योजना से लोक सेवा पर एक नई जिम्मेदारी आ पड़ती है। लोक सेवा के कार्यों को संपन्न करने के लिए ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ तथा कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उन्हें ना सिर्फ जनता के कल्याण से संबंधित कार्यों को करना पड़ता है बल्कि राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देने का कार्य संपादित करना पड़ता है। लोकसेवा को अनेक तरह के और अराजनीतिक, प्रशासनिक तथा कल्याण से संबंधित प्रमुख कार्य संपादित करने पड़ते हैं। हालांकि लोक सेवा द्वारा इतने असंख्य कार्य संपन्न करने पड़ते हैं कि उन्हें सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता है, परंतु फिर भी इन देशों की परिवर्तित परिस्थितियों तथा नव आकांक्षाओं में लोक सेवाओं की बढ़ती भूमिका को निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा रूप से समझा जा सकता है-

1. **राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देना-** राजनीतिक कार्यपालिका को उपलब्ध परिस्थितियों में उचित परामर्श देना लोक सेवा का प्रथम कर्तव्य माना जाता है। लोक सेवक प्रशासन के कार्यों में कुशल तथा विशेषज्ञ होते हैं। अतः शासन की नीतियों और कार्यक्रमों के निरूपण में मंत्री को सूचना एवं परामर्श उपलब्ध करवाने का दायित्व लोक सेवक अर्थात प्रशासनिक अधिकारियों का ही होता है। राजनीतिक गतिविधियों में कार्यरत मंत्रियों के पास ना तो इतना समय होता है कि वे प्रशासनिक कार्यों में गंभीरतापूर्वक रूचि ले सके और ना ही वे इतने कुशल होते हैं कि प्रशासन की प्रत्येक गतिविधियों को सूक्ष्मता से समझ सके। अतः लोक सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्य का पालन निष्पक्ष भावना से इमानदारी पूर्वक करते हुए राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात मंत्रियों को अच्छी से अच्छी सलाह देंगे। इस संबंध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री चैंबरलेन का कथन है कि "संभवतः लोक सेवक मंत्रिमंडल के सदस्यों के बिना कार्य कर सकते हैं किंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मंत्रीमंडल के सदस्य बिना लोक सेवकों के कार्य नहीं कर सकते हैं।" सर जोसिया स्टाम्प ने भी इस संदर्भ में अपना मत देते हुए कहा कि "मैं इस बात के बारे में स्पष्ट हूं कि, कर्मचारियों को नए समाज का स्रोत होना चाहिए तथा प्रत्येक

अवस्था में उन्हें सुझाव तथा परामर्श देना चाहिए।" वस्तुतः एक कुशल मंत्री हमेशा अपने अधिकारियों की सलाह पर ही काम करता है और उनके द्वारा प्रस्तुत कागजातों पर हस्ताक्षर कर देता है।

2. **सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करना-** राजनीतिक कार्यपालिका या व्यवस्थापिका लोक सेवकों के सहयोग और परामर्श से राष्ट्र के लिए योजनाओं और नीतियों का निर्माण करती है। लोक सेवक का कार्य इन नीतियों और योजनाओं के निर्माण में ना केवल सहायता प्रदान करना होता हैं, बल्कि उन नीतियों की क्रियाविधि भी लोक सेवकों का भी उत्तर दायित्व होता है। लोक सेवक द्वारा प्रदत विभिन्न प्रकार के आंकड़े और सूचनाएं, प्रस्तावित कार्य का प्रारूप तैयार करने तथा योजना मद में लगने वाले अनुमानित उपकरणों की जानकारी विभागीय मंत्री को देते हैं। इस जानकारी के आधार पर ही जब योजनाएं और कार्यक्रम बनकर तैयार हो जाते हैं तो सरकार द्वारा निर्धारित उन कार्यक्रमों, योजनाओं और नीतियों का क्रियान्वयन लोक सेवा के सदस्यों को करना पड़ता है।
3. **जनता की सेवा करना-** लोक सेवा का प्रमुख उद्देश्य आम जनता की सेवा करना है। आज के आधुनिक प्रशासन में सरकार का प्रयास यही रहता है कि आम नागरिकों को अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करके उनके व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास भी किया जाए। इसके लिए लोकसेवा को स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का प्रबंध, शिक्षा तथा रोजगार का प्रबंध, सड़क निर्माण, भवन निर्माण, स्टेडियम निर्माण आदि से संबंधित भूमिकाओं का भी निर्वाह करना पड़ता है। नागरिकों के जीवन यापन से संबंधित आवश्यक वस्तुओं को भी उपलब्ध कराना पड़ता है। इन सब कार्यों को पूरा करने के लिए योग्य, कौशल एवं कर्मठ कर्मचारियों का होना अत्यधिक आवश्यक होता है। वस्तुतः लोक सेवक के कंधों पर ही प्रत्यक्ष रूप से लोक कल्याण संबंधी योजनाओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व जाता है।
4. **प्रत्यायोजित विधि निर्माण-** व्यवस्थापिका का मुख्य कार्यविधि का निर्माण होता है। कई बार कार्य के बोझ तले दबे होने के कारण विधायिका अनेक विषयों में विधि का केवल ढांचा ही तैयार कर पाती है। उन विधियों को सुख में तथा व्यापक रूपरेखा बनाने राजनीतिक कार्यपालिका ओ सहायता उपलब्ध कराने की भूमिका भी लोक सेवकों के द्वारा ही निभाई जाती है। इस व्यवस्था को प्रदत्त व्यवस्थापन कहा जाता है। इसके अंतर्गत समस्त नियम और नियमों का निर्माण प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा ही किया जाता है।
5. **बदलते परिवेश के साथ सामंजस्य बिठाना-** आधुनिक युग में लोक सेवाओं की भूमिका भीतर तथा बाहर प्रौद्योगिकी, विज्ञान एवं औद्योगिकरण के बढ़ते हुए प्रभाव ने लोक सेवकों की भूमिकाओं में एक नया आयाम जोड़ दिया है। आधुनिक प्रकार की वैज्ञानिक प्रगति ने लोक सेवकों के समक्ष अनेक नई नई चुनौतियों को खड़ा कर दिया है। आज इस बदलते परिवेश में सामाजिक समस्याओं का स्वरूप बदल गया है, जिनके समाधान के लिए लोक सेवकों को विशेष दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। साथ ही लोक सेवा के क्षेत्र में भी कंप्यूटर तथा आधुनिक तकनीकों की आवश्यकता पड़ने लगी है जिसके कारण लोक सेवा में भी विशेषज्ञता का प्रसार हो रहा है। इन नई चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रशासन को आधुनिक तकनीकी का प्रशिक्षण तथा कंप्यूटर का ज्ञान अपने सेवी वर्ग को कराना पड़ता है। आज लोक सेवा को पर्यावरण तथा प्रदूषण जैसी समस्याओं के समाधान मैं भी अपनी भूमिका का निर्वाहन करना पड़ रहा है जो पहले इतना अधिक नहीं हुआ करती थी।
6. **सामाजिक न्याय और समता की स्थापना-** विकासशील देशों की सामाजिक संरचना अत्यधिक जटिल, भेदभावपूर्ण तथा विविध संस्कृतियों से युक्त होती है। अतः इन देशों की सामाजिक संरचना में सामाजिक न्याय तथा समानता की प्राप्ति करना और लोगों को शोषण से मुक्ति दिलवाना एक महत्वपूर्ण प्रशासकीय कार्य माना जाता है। यह संविधान अपने समस्त नागरिकों को समानता तथा न्याय का मूल

अधिकार प्रदान करता है। नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से पिछड़े, असहाय, गरीब, महिला, वृद्ध, विकलांग तथा अल्पसंख्यक नागरिकों की सुरक्षा विकास और कल्याण की जिम्मेदारी भी सरकार को सौंपी गई है।

7. **सामाजिक-आर्थिक विकास को गति प्रदान करना-** काशी देशों की अर्थव्यवस्था विकसित देशों की तुलना में पिछड़ी हुई तथा विसंगतियों से परिपूर्ण होती है। अर्थव्यवस्था में सुधार या गति लाने हेतु स्वतंत्रता के समय भारत में विकसित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया था जो अब निजीकरण की ओर अग्रसर है किंतु लोक उद्यमों की भूमिका अभी भी महत्वपूर्ण बनी हुई है। पूर्व के अनुभव यही सिद्ध करते हैं कि समाजवादी तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं आर्थिक विकास को सार्थक गति प्रदान करती रही है। वस्तुतः आर्थिक विकास तथा सामाजिक विकास दोनों प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है। एक के बिना दूसरे की प्रगति कठिन है। लोक सेवाएं इन दोनों क्षेत्रों में ही सुधार और विकास के लिए प्रतिबद्ध और प्रयासरत है।
8. **लोक कल्याणकारी राज्य की लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक-** आधुनिक युग में सभी प्रकार की सरकारों का एकमात्र कर्तव्य लोक कल्याण ही होता है। विकासशील देशों में लोक सेवाओं की भूमिका इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि नव स्वतंत्र देश विकास की दौड़ में विकसित देशों से बहुत पीछे हैं तथा यहां पर लोक कल्याण की मूलभूत सेवाएं संपादित करने का संपूर्ण उत्तरदायित्व शासन का होता है। चिकित्सा, स्वास्थ्य, आवास, भोजन, पेयजल, शिक्षा तथा रोजगार जैसी न्यूनतम आवश्यकताएं को सामाजिक सेवाओं के रूप में प्रशासन द्वारा प्रदान किया जाता है।
9. **राष्ट्रीय एकता में सहायक-** भारत तथा भारत जैसे ही विकासशील देशों में क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा सांप्रदायिकता की सामाजिक समस्याएं विद्यमान है। इन समस्याओं की तीव्रता को कम करने में लोक सेवकों की दोहरी भूमिका होती है। एक और दो लोक सेवाएं तटस्थता तथा समानता के आधार पर काम करती हैं वहीं दूसरी ओर इन सेवाओं की प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय स्तर का है। अखिल भारतीय सेवाओं का अधिकारी एक राज्य का अनुभव दूसरे राज्य के अधिकारियों में बांटता है अथवा केंद्रीय सेवाओं का अधिकारी समस्त भारत की संस्कृति एवं तदनुकूल परिस्थितियों से अवगत होता है। लोक सेवाओं की यह प्रकृति लोक सेवकों में संकीर्णता त्याग कर व्यापक दृष्टिकोण अपनाने में सहायता प्रदान करती है। लोक सेवाओं में सभी जाति, वर्गो, भाषाओं, क्षेत्रों तथा संप्रदायों के कार्मिक कार्य करते हैं जो राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं।
10. **आजीविका का माध्यम-** सरकारी कार्यो की पूर्ति के निमित्त विशाल संख्या में विशिष्ट योग्यता धारी लोक सेवकों की आवश्यकता होती है। लोक कल्याणकारी राज्य के उत्तरदायित्व भी चहुँमुखी होते हैं। अतः लोक सेवाओं के माध्यम से जहां एक और सरकार जन कल्याण के कार्य संपादित करवाती है वहीं दूसरी ओर इन लोक सेवक सेवाओं में भारी संख्या में युवक और युवतियों को रोजगार भी दे सकती है। विकासशील देशों में सरकारी नौकरियों के प्रति विशेष रुझान पाया जाता है क्योंकि इन देशों में अधिकांश कार्य सरकारों द्वारा ही संपादित किए जाते हैं। अतः सरकार एक बड़ी नियोक्ता के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं।
11. **लोकतंत्र एवं सभ्यता की संरक्षक-** वर्तमान राज्य लोक सेवाओं पर अत्यधिक निर्भर है इसी कारण इसे प्रशासकीय राज्य के रूप में भी जाना जाता है। राजनीतिक स्तर पर जनसाधारण की सहभागिता सुनिश्चित करने, सामाजिक चेतना में अभिवृत्ति करने, विकास की गति को तेज ही प्रदान करने तथा आधुनिकता का परिवेश तैयार करने में लोक सेवकों की निर्णायक भूमिका है। अतः विकासशील देशों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना संक्रमण काल से गुजरती है जहां पुराने और नए विचारों

तथा सभ्यताओं में द्वंद होता है। इस संक्रमण काल का कुशलतापूर्वक सामना करने तथा परिवर्तनों को मनोवांछित दिशा प्रदान करना लोक सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

## 3.9 निष्कर्ष

इस प्रकार आज लोक सेवा समाज की प्रगति और विकास का एक अविभाज्य आधार बन गई है। विकसित समाज की अपेक्षा विकासशील समाज की व्यवस्था में भिन्नता अधिक होती है। इन भिन्नताओं का मुख्य कारण जनसंख्या की बहुलता, विभिन्न संस्कृतियों, जिससे उस देश की राजनीतिक संस्कृति प्रतिबिंबित होती है, साथ ही प्रत्येक समाज और देश के ऐतिहासिक अनुभव भी होते हैं। विशेषताओं के आधार पर ही विकास ही समाज में लोक सेवकों को अपनी भूमिका अदा करनी होती है। दूसरे विश्व युद्ध के उपरांत एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के देश विकासशील देशों की श्रेणी में आ जाने के कारण इस संक्रमणकारी समय में लोक सेवकों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है। इन देशों में जहां नौकरशाही से जुड़े संगठन अल्पविकसित अवस्था में थे, वे अब निरंतर विकास की ओर अग्रसर है। सारांश अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कल्याणकारी शासन व्यवस्था में लोक सेवाएं एक महत्वपूर्ण निकाय हैं जो संपूर्ण विकास तंत्र का मुख्य आधार भी है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. एल. डी. व्हाइट ने अच्छे लोक प्रशासन के लिए किन तत्वों के संयोजन को आवश्यक बताया?
2. लोक सेवाओं का जन्म कब और कहां हुआ था?
3. विकसित देशों में लोक सेवाओं की कोई चार विशेषताएं बताइए।
4. आधुनिक लोक सेवा की कोई दो विशेषताएं बताइए।
5. लोक सेवक किसे कहा जाता है?

## 3.10 सारांश

लोकसेवा राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। आज लोक सेवा की सफलता पर राज्य के नागरिकों का सुख और प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है। लोक सेवा के अभाव में ना तो सरकार अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकती है और ना ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास पूरा कर सकता है। लोक सेवाएं देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था एवं शांति प्रदान करती हैं। डॉक्टर हरमन फाइनर ने लोक सेवाओं को प्रशासन पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है। लोक सेवाएं राजनीतिक सत्ता की नीतियों एवं कार्यक्रमों को न केवल निष्पादित करती हैं, बल्कि राजनीतिक सत्ता को आवश्यक सूचना तथा परामर्श भी उपलब्ध कराती हैं नौकरशाही इनसे एकदम भिन्न अवधारणा है। लोकसेवा विकास प्रक्रिया का आंतरिक अंग है और इस दिशा में उसकी भूमिका अहम होती है। अब अधिक से अधिक देश, विशेषकर विकासशील देश, और संयुक्त राष्ट्र संघ, लोक सेवा को, राष्ट्र निर्माण और सामाजिक आर्थिक विकास में एक माध्यम के रूप में एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। आधुनिक समाजों में लोक सेवाएं राष्ट्र निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। लोक सेवाओं की निष्पादन क्षमता पर ही सामाजिक आर्थिक विकास की सफलता और असफलता निर्भर करती है।

## 3.11 शब्दावली

तटस्थ- परस्पर विरोधी पक्षों से अलग रहने वाला, आजीविका- रोज़गार, विसंगति- समकालीन जीवन की वह स्थिति जहां प्रत्येक मूल्य या धारणा का उल्टा रूप दिखाई पड़ता है, प्रत्यायोजन- किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को विशिष्ट सत्ता एवं अधिकार प्रदान करना, सामंजस्य- अनुकूलता, उपयुक्तता

## 3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** नेतृत्व, संगठन, वित्त, आदर्श विधियां एवं प्रक्रिया, मानव शक्ति। **2.** ईसवी सन् 6 में चीन में हुआ था। **3.** उत्तरदायित्व की भावना, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा से संबंधित, विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व, कार्य निष्पादन मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है। **4.** प्रशिक्षित एवं कुशल कार्यकर्ता, वेतन भोगी कार्यकर्ता, तटस्थ एवं निष्पक्ष, पद सोपान का सिद्धांत। **5.** राज्य के उत्तरदायित्व एवं कार्य को पूरा करने के लिए जिन स्थाई कर्मचारियों की सहायता ली जाती है, उन्हें "लोक सेवक" कहा जाता है।

## 3.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची


1. सिन्हा, वी. एम. 1986. पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कंसेप्ट एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
2. गोयल, एस. एल, 1984.पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999. लोक सेवीवर्गीय प्रशासन;रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र , 2008. कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006. लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, प्रभुदत्त, 2011. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. पाण्डेय,आशुतोष, 2009. कार्मिक प्रशासन; विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।


## 3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014. भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016. भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।


## 3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा की आधुनिक प्रवृत्तियों पर एक निबंध लिखिए।
2. आधुनिक लोक सेवा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विकासशील देशों में लोक सेवाओं की भूमिका पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. भारतीय संविधान में लोक सेवाओं के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

# इकाई- 4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं

**इकाई की संरचना**

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षण
4.3 भारत में कार्मिक प्रशासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान
4.4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं
4.5 निष्कर्ष
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और इस तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की एक विशाल संख्या की आवश्यकता पड़ती है। किसी संगठन में इन्हीं कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा शर्तों आदि का अध्ययन कार्मिक प्रशासन के अंतर्गत किया जाता है। हम अब तक पढ़ चुके हैं कि कार्मिक प्रशासन का सामान्य अर्थ है लोक सेवकों की भर्ती, सेवा शर्तों आदि से संबंधित समस्याओं और उनके निराकरण का विज्ञान। लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन का संबंध संगठन के मानवीय तत्वों से होता है। कार्मिक- प्रशासन एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन और परिवर्तन किया जा सके। हरमन फाइनर के अनुसार ‘‘कार्मिक प्रशासन अधिकारियों की एक ऐसी पेशेवर इकाई है जो स्थाई वेतन भोगी और कार्य कुशल होती है। कल्याणकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि और प्रशासन की सफलता एक कुशल कार्मिक प्रशासन पर निर्भर करती है, यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में प्रशासनिक प्रक्रिया और प्रशासन के संचालन में आम लोगों का पूरा ध्यान रखना पड़ता है वरना सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। निष्ठ और कुशल कार्मिक- प्रशासन की कमजोरियों और समस्याओं को दूर करने में सक्षम होते हैं, साथ ही प्रशासन के उद्देश्यों को पूरा करना आसान बना देते हैं। अतः लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आधुनिक समय में राज्य संबंधी दर्शन आ हस्तक्षेप नीति से अलग होकर सामाजिक कल्याण की नीति पर आधारित हो गया है और विकास के कार्यो के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कार्यो को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी कार्मिक प्रशासन ने अपने कंधों पर ले लिया है।

## 4.1 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षणों को जान जाएंगे;
- भारतीय संविधान में कार्मिक प्रशासन से संबंधित प्रावधानों के बारे में जान जाएंगे;

- भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को विस्तार से समझ पाएंगे।

## 4.2 आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षण

सेवीवर्ग प्रशासन के लक्षण के संबंध में कोई सामान्य करण नियम नहीं बनाए जा सकते हैं। यदि एक सेवीवर्ग प्रशासन के लक्षण किसी देश विशेष में सफल तथा प्रभावशाली सिद्ध होते हैं तो आवश्यक नहीं है कि अन्य देशों में भी यह उतने ही प्रभावशाली प्रमाणित होंगे। प्रत्येक देश की परिस्थितियां, वातावरण, समस्याएं तथा अपेक्षाएं होती हैं। इन को ध्यान में रखकर ही सेवीवर्ग प्रशासन के आदर्श लक्षण निर्धारित किए जाने चाहिए। लोक प्रशासन के विद्वानों ने आदर्श अथवा स्वस्थ सेवीवर्ग प्रशासन के आवश्यक लक्षणों के बारे में चिंतन करने के बाद मुख्यतः निम्नलिखित को महत्वपूर्ण माना है-

1. संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्यों की दृष्टि से उपयोगी एवं सार्थक प्रशासन होना आवश्यक है।
2. प्रशासन सदैव गत्यात्मक होना चाहिए ताकि समय, परिवर्तित परिस्थितियों एवं नई चुनौतियों के साथ स्वयं को ढाल सके। ऐसा करने से सेवीवर्ग के सभी सदस्य उत्साह के साथ काम करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।
3. इसमें कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की सापेक्षिक योग्यता एवं क्षमता होनी चाहिए जो लूट प्रणाली से प्रभावित ना हो।
4. इसमें आजीवन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है, जिसमें कर्मचारियों को भविष्य के प्रति आशाएं रहती हैं अतः पदोन्नति के पर्याप्त पर्याप्त अवसर होने चाहिए।
5. सेवीवर्ग में स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था की जानी चाहिए। सभी कर्मचारियों को उनके कर्तव्य तथा दायित्व स्पष्ट बता दिए जाने चाहिए तथा उच्च अधिकारी एवं अधीनस्थ अधिकारियों के साथ संबंध स्पष्ट कर देना चाहिए।
6. प्रशासन कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखने का प्रयास करता है। यह राजनीतिक तटस्थता इसलिए वांछनीय है क्योंकि राजनीतिक दल सत्ता में आते और जाते रहते हैं किंतु लोक सेवकों को इन परिवर्तनों से प्रभावित रहकर तटस्थ भाव से अपना कार्य करते रहना चाहिए।
7. प्रशासन में कर्मचारी अनाम रहकर कार्य करते हैं। उनके द्वारा संपन्न की जाने वाली सेवाओं में कर्ता का भाव नहीं रहता वरन सेवक का भाव रहता है। कर्ता के रूप में नाम राजनीतिज्ञ का होता है।
8. प्रशासन कर्मचारियों में ऐसे मूल्य स्थापित करता है ताकि वे जीवित व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार कर सकें तथा किसी के भी साथ भेदभाव पूर्ण नीति ना अपनाए।
9. प्रशासन ने किसी भी व्यक्ति के साथ जाति, जन्म स्थान, लिंग, धर्म और प्रजाति का भेदभाव किए बिना ही उसे अवसर की समानता प्रदान की जानी चाहिए। इससे सरकारी सेवाओं का आधार व्यापक होगा और इसकी विश्व सनीयता में भी वृद्धि होगी।
10. आदर्श सेवीवर्ग प्रशासन का निर्धारण करते समय इस तथ्य पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सरकारी सेवाओं पर समाज के उच्च वर्गों अभिजात वर्गों का ही प्रभुत्व नहीं रहे। समाज के जनसाधारण का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। अगर सरकारी सेवाओं में समाज के सभी वर्गों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया तो इससे ना केवल इसका सामाजिक आधार विस्तृत होगा बल्कि इससे समाज में अनुचित असंतोष भी उत्पन्न नहीं होगा।
11. सेवीवर्ग प्रशासन का संबंध सामान्य रूप में तीन वर्गों- जनता, सरकार तथा कार्मिकों से है। अतः इस बारे में प्रशासनिक संरचना निर्धारित करते समय इस तथ्य पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए कि इनमें

किसी प्रकार का असंतुलन उत्पन्न ना हो। इन तीनों में उचित और सही संतुलन स्थापित करके ही एक आदर्श प्रशासन को लागू किया जा सकता है।

## 4.3 भारत में कार्मिक प्रशासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

जैसा कि आप जानते हैं कि भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहां सभी कार्य नियमानुसार किए जाते हैं। इसी प्रकार भारतीय लोक प्रशासन व्यवस्था भी संविधान के उपबंधो के अनुसार ही संचालित होती है क्योंकि संविधान ही किसी देश के शासन की मूल आत्मा है। यद्यपि कार्मिक प्रशासन की दिन प्रतिदिन की गतिविधियों को संचालित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम, प्रक्रियाएं आदि विधिवत रूप से गठित की जाती हैं परंतु फिर भी कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने वाले कुछ संवैधानिक प्रावधान भी हैं। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं पर चर्चा करने से पहले आइए हम कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने या निर्देशित करने वाले मुख्य संवैधानिक प्रावधानों की विस्तार में चर्चा करें-

1. अनुच्छेद- 53, भारतीय संविधान का अनुच्छेद- 53 यह प्रावधान करता है कि भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही या राष्ट्रपति के नाम से ही सम्पादित की जाती है। इसी प्रकार अनुच्छेद- 166 यह प्रावधान करता है राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल के द्वारा अथवा उसके अधीन अधिकारियों के द्वारा ही संपादित होंगी।
2. अनुच्छेद- 14, अनुच्छेद- 14 के अनुसार यह प्रावधान किया जाता है कि, भारत राज्य क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।
3. अनुच्छेद- 15(1), यह अनुच्छेद केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी भी आधार पर नागरिकों के विरुद्ध कोई विभेद करने से राज्य को निश्चित करता है।
4. अनुच्छेद- 16, यह उपबंधित करता है कि, राज्य के अधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।
    - राज्य को पूर्ण अधिकार देता है कि वह लोक सेवाओं के लिए आवश्यक अर्हताए एवं मानदंडों को निर्धारित कर सकता है। राज्य द्वारा निर्धारित अर्हताओं में मानसिक योग्यता के अतिरिक्त शारीरिक योग्यता पुष्टि, अनुशासन, बौद्धिक स्तर और जनहित आदि भी सम्मिलित है। इसी प्रकार तकनीकी अर्हताए भी निर्धारित की जा सकती है।
    - यह भी प्रावधान करता है कि राज्य, लोक सेवाओं में विभिन्न श्रेणियों की सृष्टि कर सकता है।
    - इस अनुच्छेद के अधीन राज्य, अनिवार्य सेवानिवृत्ति भी कर सकता है। अतः से न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।
    - अनुच्छेद- 16(1) के अनुसार, राज्य केवल प्रारंभिक नियुक्तियों के मामले में ही नहीं बल्कि पदोन्नति, पद मुक्ति, वेतन, अवकाश, ग्रेच्युटी, पेंशन और अधिवार्षिकी भत्ता इत्यादि पर भी नियम निर्धारित कर सकता है।
    - अनुच्छेद- 16(2) के अनुसार, ‘ वंशक्रम’ तथा ‘निवास स्थान’ के आधार पर लोक सेवा में विभेद नहीं किया जा सकता है।
    - अनुच्छेद-16(3), अनुच्छेद-16(2) का अपवाद है कि “ सरकार कुछ सेवाओं को केवल राज्य के निवासियों के लिए आरक्षित कर सकती है ,बशर्ते कि इसके लिए उचित कारण हो तथा व्यवस्थापिका द्वारा अधिनियम पारित किया जाए।”

- अनुच्छेद- 16(4) राज्य को यह शक्ति देता है कि वह पिछड़ी जातियों के लिए, जिनको उसकी राय में लोक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है है, लोक पदों को आरक्षित कर सकता है। इसके लिए 2 शर्तें हैं- वर्ग पिछड़ा हो अर्थात सामाजिक आर्थिक दृष्टि से तथा उससे राज्य के अधीन पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका हो। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि केवल दूसरी शर्त एकमात्र कसौटी नहीं हो सकती।

5. अनुच्छेद- 19 (1) 'क' के अंतर्गत हड़ताल कोई मूल अधिकार नहीं है अतः किसी भी व्यक्ति को हड़ताल करने से रोका जा सकता है क्योंकि प्रदर्शन जब हड़ताल का रूप धारण कर लेता है तो वह विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र नहीं रह जाता है ।
6. अनुच्छेद- 19(1) 'ग' भारत के समस्त नागरिकों को संस्थान या संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है किंतु इस अनुच्छेद का खंड 4 राज्य को इस अधिकार पर लोक व्यवस्था या नैतिकता के हित में 'युक्ति युक्त प्रतिबंध' लगाने की शक्ति भी प्रदान करता है क्योंकि संघ बनाने के अधिकार में हड़ताल करने का अधिकार सम्मिलित नहीं है।
7. अनुच्छेद- 23 (2) के अंतर्गत राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अनिवार्य सेवाएं लागू करने की शक्ति प्राप्त है और राज्य ऐसे कार्यों को करने के लिए किसी भी व्यक्ति को बाध्य कर सकता है। लेकिन शर्त यह है कि इस प्रकार की सार्वजनिक अनिवार्य सेवाओं को लागू करने में राज्य धर्म, वंश, जाति या वर्ग आदि के आधार पर विभेद ना करें।
8. अनुच्छेद- 38 एवं 39 के अनुसार न्याय का सामान वितरण अपेक्षित है। आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए 'समान कार्य के लिए समान वेतन' एक नीति-निर्देशक तत्व है, मूल अधिकार नहीं है किंतु निश्चय ही यह एक संवैधानिक लक्ष्य है और यदि राज्य इस मामले में विभेद करता है तो न्यायालय इसका पालन कराने के लिए- अनुच्छेद- 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है।
9. अनुच्छेद- 265, यह उपबंध करता है की विधि के प्राधिकार के कोई 'कर' अधिरोपित या संग्रहित नहीं किया जाएगा।
10. अनुच्छेद- 309, यह उपबंध करता है कि संसद तथा राज्य विधानमंडल संविधान के उपबंधो के अधीन रहते हुए संज्ञा राज्य के कार्यों से संबद्ध लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा-शर्तों का विनियमन करेंगे।
11. अनुच्छेद -310, यह उपबंध करता है कि प्रत्येक व्यक्ति दूध संघ की प्रतिरक्षा सेवा या असैनिक सेवा या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन प्रतिरक्षा से संबंधित किसी पद को अथवा किसी और सैनिक पद को धारण करता है, राष्ट्रपति के 'प्रसादपर्यंत' पद धारण करता है। इसी तरह राज्य सेवाओं के सदस्य गण राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं किंतु इस नियम के अपवाद भी हैं। प्रसाद का सिद्धांत मूल अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकता तथा अनुच्छेद-311 में विहित प्रक्रिया का पालन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह नियम उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय, नियंत्रक एवं महालेखा, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य एवं मुख्य चुनाव आयुक्त पर लागू नहीं होता है, क्योंकि यह पद राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पर निर्भर नहीं करते हैं।
12. अनुच्छेद- 311 के अंतर्गत लोक सेवकों को उनके पद से मनमाने ढंग से पदच्युत किए जाने के विरुद्ध अग्र लिखित संवैधानिक संरक्षण प्रदान किए गए हैं-

    - कोई भी लोकसेवक अपनी नियुक्ति करता से नीचे के किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा। अनुच्छेद-311(1)

- कोई भी व्यक्ति तब तक पदच्युत या पद से हटाया या पंक्तिच्युत नहीं किया जाएगाजब तक कि उसे अपने विरुद्ध दोष आरोपों से अवगत ना करा दिया गया हो और उसके संबंध में सुनवाई का युक्ति युक्त अवसर ना दे दिया गया हो। अनुच्छेद-311(2) यह उपबंध सैनिक सेवाओं पर लागू नहीं होते हैं।

**13.** अनुच्छेद- 312, संसद को विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन करने की शक्ति प्रदान करता है। यदि राज्य सभा राष्ट्रहित में आवश्यक समझे तो सदन दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से संकल्प पारित कर ऐसी सेवाओं का सृजन कर सकती है।

**14.** अनुच्छेद- 312 (क), संविधान के 28 वें संशोधन अधिनियम, 1972 द्वारा जोड़ा गया है तथा अनुच्छेद-314 हटाया गया है जिसके अंतर्गत भारतीय सिविल सेवा(I.C.S.) में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तें, पारिश्रमिक, अवकाश तथा पेंशन इत्यादि के बारे में विशेषाधिकार देय थे। यह अनुच्छेद संसद को उक्त सेवा में कार्यरत सदस्यों के विशेष अधिकारों को समाप्त करने की शक्ति प्रदान करता है, किंतु इसका प्रभाव उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों एवं मुख्य चुनाव आयुक्त पर लागू नहीं है।

**15.** अनुच्छेद- 315, संघ के लिए एक लोक सेवा आयोग तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग या दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग गठित करने का प्रावधान करता है।

**16.** अनुच्छेद- 323 (क), यह उपबंधित करता है कि संसद विधि द्वारा संघ या किसी राज्य या भारत राज्य के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व नियंत्रण में किसी निगम के कार्यों से संबंध लोक सेवाओं और पदों के लिए तथा उनकी सेवा शर्तों से संबंधित विवादों और परिवादों के न्याय- निर्णयन या विचारण के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उपबंध करेगी। दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक अधिकरण(Tribunal) की स्थापना की जा सकती है।

**17.** अनुच्छेद- 343 में यह प्रावधान है कि, संघ की राजभाषा (0fficial Language) हिंदी और लिपि देवनागरी होगी किंतु संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा साथ ही राष्ट्रपति इस दिशा में अन्य आवश्यक प्रावधान भी कर सकेंगे।

उपरोक्त वर्णित संवैधानिक प्रावधान कार्मिक प्रशासन एवं लोक सेवाओं को प्रभावित करते हैं। परंतु साथ ही यह भी प्रावधान है कि परिवर्तित परिस्थितियों या नई आवश्यकताओं के अनुसार यदि चाहे तो व्यवस्थापिका भी इन प्रावधानों में परिवर्तन कर सकती है।

इस प्रकार आप यह भली-भांति समझ गए होंगे कि भारतीय संविधान में कार्मिक प्रशासन से संबंधित प्रावधान किए गए हैं। यह सभी प्रावधान भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं तथा एक आधार प्रदान करते हैं।

## 4.4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं

भारत में कार्मिक प्रशासन तथा लोक सेवाओं का जो स्वरूप वर्तमान में उपस्थित है, वह ब्रिटिश शासन की देन ही माना जाता है। वर्तमान में भारत सहित सभी लोक कल्याणकारी राज्यों में कार्मिक प्रशासन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता जा रहा है। कार्मिक प्रशासन की सफलता ही जन कल्याण की वृद्धि का आधार स्तंभ है। सेवीवर्ग उन व्यक्तियों का एक समूह है जो प्रशासन की विस्तृत क्रियाओं को अपनी क्षमता, योग्यता एवं स्थिति के अनुसार संपन्न करते हैं। अतः प्रशासन तंत्र को संचालित करने वाले इन व्यक्तियों अर्थात कार्मिकों की यदि उपेक्षा की जाएगी तो समस्त प्रशासकीय व्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। कार्मिक प्रशासन ही वह केंद्र बिंदु है जिसके चारों ओर प्रशासन की विभिन्न समस्याएं छाई रहती हैं। प्रशासन की सफलता हेतु यह अत्यधिक

आवश्यक होता है कि प्रशासन में मानवीय पहलू और मानवीय संबंधों एवं व्यवहारों पर समुचित ध्यान एवं महत्व दिया जाए। मानवीय व्यवहार के द्वारा ही सेबी वर्ग की कार्य कुशलता में वृद्धि भी की जा सकती है तथा अयोग्य कर्मचारियों को भी कार्य करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। वर्तमान संदर्भ में लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासनिक कार्यों का विस्तार दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। फलस्वरूप राज्य के बढ़ते हुए कार्यों को संपन्न करने हेतु एक बड़ी मात्रा में कर्मचारियों की आवश्यकता महसूस की जाती है। वर्तमान लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रहती है तथा प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति से भी वर्ग रूपी बृहद मानव समूह के द्वारा ही की जाती है।

कर भी प्रशासन की इतनी बड़ी संख्या तथा इस वर्ग का इतना महत्व है कि हरमन फाइनर ने कहा कि "लोक प्रशासन में सभी वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।" कार्मिक प्रशासन में सभी वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा वर्गीकरण आदि सभी बातों का समावेश होता है। कार्मिक प्रशासन में वे सारी प्रक्रियाएं शामिल होती है जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन किया जाता है। इसके अतिरिक्त से विवाद के संबंध में एक उपयुक्त नीति को अपनाया जाना या निर्धारण किया जाना भी अत्यधिक आवश्यक होता है। यूं तो प्रत्येक संगठन के लिए एक अच्छी सेवीवर्ग नीति का होना आवश्यक होता है परंतु सरकारी संगठनों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव अपेक्षाकृत कुछ अधिक होता है। सेवीवर्ग से संबंधित उपयुक्त नीति को अपनाकर एक देश के प्रशासन को सार्थक, कार्य कुशल, उपयोगी, प्रभावशील, मितव्ययी और उत्तरदाई बनाया जा सकता है। परंतु इस संदर्भ में यह भी जान लेना आवश्यक है किसी भी वर्ग के संबंध में कोई एक ऐसी नीति निर्धारित नहीं की जा सकती है जो प्रत्येक देश में समान रूप से लागू की जा सके। प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ, वातावरण, समस्याएं, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियां भिन्न भिन्न होती हैं। इन सभी तरह की विविधताओं का ध्यान रखकर ही सेवी वर्ग नीति का निर्धारण किया जा सकता है। सेवीवर्ग या कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं में कार्मिकों से संबंधित उन सभी क्रियाओं को शामिल किया जा सकता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रशासन की कार्यकुशलता एवं उपयोगिता को प्रभावित करती हैं। लोक कार्मिक प्रशासन की कुछ ऐसी विशेषताएं भी होती हैं जो निजी प्रशासन से भिन्न होती हैं। सरकार अपने कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए लोक कार्मिक तंत्र पर निर्भर करती है। भारत में कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं को हम विस्तृत रूप में निम्न बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैं-

1. **ब्रिटिश काल का प्रभाव-** भारत में संपूर्ण अधिकारी तंत्र ब्रिटिश शासन से विरासत के रूप में प्राप्त किया गया है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत पर शासन करते समय अपने व्यापारिक हितों को पूरा करने के लिए एक सेवा संरचना का विकास किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के बाद 1858 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रशासन की बागडोर प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों में ले ली थी। ऐसा करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का प्रमुख उद्देश्य भारत के संसाधनों का उपयोग स्वयं के हित में करना था। इस कार्य को संपन्न करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपनी प्रशासनिक नियंत्रण को बहुत कठोर रखा। देश में आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण तथा विकास के लिए किसी भी प्रकार की गतिविधि का संचालन करने पर न्यूनतम ध्यान दिया। ब्रिटिश भारतीय लोक सेवा केवल अंग्रेजों के लिए खुली थी। इसमें भारतीयों का प्रवेश केवल प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुआ। अंग्रेज अधिकारी शासक होने के अहम तथा श्रेष्ठ गोरी नस्ल की उच्चता की भावना से पीड़ित थे। ऐसी नौकरशाही पूर्णत: सत्तावादी,एकीकृत, असंगठित, अन उत्तरदाई, स्वेच्छाचारी तथा अप्रजातांत्रिक थी तथा इसका लक्ष्य देश का आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, जनहित की उपलब्धि तथा जन सुविधाएं जुटाना नहीं था। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नौकरशाही को परिवर्तित परिवेश में नया दृष्टिकोण अपनाकर अपनी कार्यशैली का निर्धारण करना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह आज भी अतीत की विरासत से ग्रस्त है।

2. **लोक कल्याणकारी स्वरूप-** स्वतंत्रता के पश्चात 1950 में जब हमारा अपना संविधान लागू हुआ तो उसके द्वारा हमारे देश के प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार एवं परिवर्तन लाने के लिए संविधान में प्रावधान किए गए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन को एक विकास तथा जन कल्याण उन्मुख प्रशासन में बदलना पड़ा। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने के परिणाम स्वरूप अब देश में सेवीवर्ग प्रशासन के द्वारा लोक कल्याण से संबंधित सभी कार्यों का संपादन करना पड़ता है। कार्मिक प्रशासन का लोक कल्याणकारी स्वरूप वर्तमान में भारतीय लोक कार्मिक प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता मानी जा सकती है।
3. **लोकतांत्रिक स्वरूप-** सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात एक कुशल कार्मिक तंत्र की स्थापना करने में बहुत सारी बाधाएं विद्यमान थी। परंतु 1950 में जब भारत का अपना संविधान लागू हुआ तो अतीत के अधिनायक वादी कार्मिक प्रशासन का स्थान कार्मिक प्रशासन के एक लोकतांत्रिक स्वरूप ने ले लिया। आज लोक कार्मिक प्रशासन बिना किसी भेदभाव के समाज के सभी वर्गों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। समाज के सभी वर्गों को समान रूप से सभी योजनाओं का लाभ मिले यही लोक कार्मिक प्रशासन का प्रथम प्रयास रहता है।
4. **सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति-** भारत में लोक कार्मिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सरकार के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। सरकार के द्वारा जब लक्ष्यों का निर्धारण कर लिया जाता है तो उसके पश्चात लोक कार्मिक तंत्र का यह उद्देश्य होता है कि वह सरकार द्वारा निर्धारित सभी लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों का कुशल क्रियान्वयन करें।
5. **प्रशासन का संवैधानिक आधार-** भारतीय लोक प्रशासन व्यवस्था संविधान के उपबन्धों के अनुसार ही संचालित होती है। यद्यपि कार्मिक प्रशासन की दैनिक गतिविधियों को संचालित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम, विनियमन तथा प्रक्रिया निर्धारित की जाती है परंतु फिर भी कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने वाले या निर्देशित करने वाले विभिन्न संवैधानिक प्रावधान भी किए गए हैं। भारत में लोक कार्मिक प्रशासन को इन्हीं संवैधानिक प्रावधानों के दायरे में रहते हुए ही अपनी गतिविधियों का संचालन करना पड़ता है।
6. **विकासोन्मुख-** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन विकास से संबंधित सभी प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। कार्मिक लोक प्रशासन का यह दायित्व होता है कि वह सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करें। यह तो आप सब को ज्ञात ही है कि कार्मिक लोक प्रशासन की उचित नीतियों के बिना किसी भी देश का विकास के तत्व को प्राप्त कर पाना लगभग असंभव सा ही होता है।
7. **योग्यता पर आधारित भर्ती-** कार्मिक प्रशासन की आधारभूत विशेषता भर्ती ही होती है। भर्ती से ही प्रशासनिक सेवाओं में पदों के रिक्त होने पर सामान्य नागरिकों द्वारा उनको भरे जाने के लिए आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं। प्रत्येक पद के लिए एक निश्चित योग्यता पहले से ही निर्धारित कर दी जाती है तथा उसकी योग्यता की जांच हेतु प्रतियोगिता परीक्षाओं का आयोजन करवाया जाता है। इन प्रतियोगिता परीक्षाओं में जो भी प्रत्याशी सफल होते हैं उनको अंकों के आधार पर योग्यता सूची मैं शामिल किया जाता है और उसके बाद बहुत से पदों के लिए साक्षात्कार का भी प्रावधान होता है। साक्षात्कार के बाद सफल प्रत्याशियों को कुछ और औपचारिकताओं के बाद सेवी वर्ग में शामिल कर लिया जाता है। कार्मिक लोक प्रशासन कि यह महत्वपूर्ण विशेषता भी होती है और दायित्व भी होता है कि वह प्रशासन में भर्ती हेतु उचित व्यवस्था करें।

8. **अवसर की समानता-** प्रशासन में प्रवेश हेतु अवसर की समानता प्रदान करना भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण विशेषता है।
   भारतीय संविधान की धारा- 15(1) के अनुसार राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। इसकी धारा- 16(1) में यह उल्लेख किया गया है कि राज्य के अधीन नौकरी और पदों के बारे में सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे। भारतीय लोक सेवाओं में प्रवेश अवसर की समानता हेतु संवैधानिक, संस्थागत, व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक सभी दृष्टियों से विभिन्न उपाय किए गए हैं। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के द्वारा सभी लोगों को प्रशासन में अवसर प्रदान करने हेतु उचित नीति का निर्माण किया जाता है।
9. **लोक सेवाओं का व्यापक आकार-** भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं राज्य के दायित्व में वृद्धि के बाद लोक सेवकों की संख्या काफी बढ़ी है। केंद्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर लोक सेवकों की संख्या में कमी नहीं आई है बल्कि इसमें दिनोंदिन बढ़ोतरी होती जा रही है। भारत में लोक सेवाओं के इस बड़े हुए आकार के लिए कई कारण उत्तरदाई हैं। जैसे- स्वतंत्रता के बाद देश में बहुत सारे नए मंत्रालय की स्थापना हुई तथा प्रायः सभी मंत्रालयों ने अपने व्यापक कार्यों एवं दायित्वों के निर्वाह के लिए अधिक लोक सेवकों की नियुक्ति की है। साथ ही साथ लोक सेवकों के कार्यों का समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है तथा कार्य के न्यूनतम मापदंड तय नहीं किए जा सके अतः लोक सेवकों की संख्या अनियंत्रित एवं असंगठित रुप से बढ़ती ही जा रही है। सरकारी नौकरी में सेवा की सुरक्षा और निश्चितता का होना तथा समाज में सरकारी नौकरी का बड़ा सम्मान होना भी भारत में लोक सेवाओं के व्यापक आकार लेने का प्रमुख उत्तरदाई कारण माना जाता है।
10. **आरक्षण की व्यवस्था-** भारतीय कार्मिक लोक प्रशासन लोक सेवाओं में आरक्षण का भी प्रावधान करता है। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के द्वारा सभी प्रकार के सरकारी संगठनों में कार्मिकों की भर्ती एवं पदोन्नति की प्रक्रिया में विशेष वर्गों के लिए आरक्षण का भी प्रावधान किया गया है।
11. **जनाकांक्षाओं का प्रतीक-** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की ओर जनता का विशेष आकर्षण है। जनता अपनी सभी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु लोक कार्मिक प्रशासन की ओर ही देखती है। अतः भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से ही एक विशेषता यह भी है कि यहां कार्मिक लोक प्रशासन जनाकांक्षाओं का प्रतीक होता है। सेवीवर्ग का यह एक प्रमुख दायित्व होता है कि वह जनता की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने सभी कार्यों का संपादन करें। कार्मिकों का सदैव यही प्रयास रहता है कि जनता की समस्त आवश्यकता और प्रशासन से उनकी आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यों का सकारात्मक रूप से संपादन करते हुए सरकार के समस्त लक्ष्यों को प्राप्त करें। ऐसा करने से ना केवल सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति साधारण एवं सरल तरीके से हो सकती है वरन जनता द्वारा प्रशासन से की गई सभी अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाती है।
12. **भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता की समस्या-** भारतीय कार्मिक लोक प्रशासन भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता से ग्रसित है। भारतीय लोक सेवा के अधिकांश सदस्य धनी बनने की अभिलाषा से अपनी सत्ता एवं पद का निजी हित के लिए दुरुपयोग करने लगते हैं। उनकी सारी नीतियां और नीतियां संपन्न वर्ग के हितों की रक्षा का काम करती हैं। यह इनकी महत्वाकांक्षाएं इन्हें कार्यकुशलता की ओर प्रेरित करने की अपेक्षा उन्नति के भ्रष्ट तरीके अपनाने को प्रेरित करती है प्रेरित करती है। यह धन दौलत एवं प्रतिष्ठा तथा शक्ति की दौड़ में शामिल हो जाते हैं। इनका पूरा दृष्टिकोण ही बदल जाता है। ये स्वयं को जनसेवक मानने की अपेक्षा जनता को अपना सेवक मानने लगते हैं।

13. **सामान्यज्ञों का वर्चस्व-** भारतीय लोक सेवा में सामान्य के प्रशासकों का वर्चस्व है। अखिल भारतीय तथा राज्यों के लोक सेवा, दोनों पर ही यह बात समान रूप से लागू होती है। विशेषज्ञों को सामान यज्ञ के नेतृत्व और नियंत्रण में रहकर कार्य करना होता है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से विशेषज्ञ प्रशासकों का भी महत्व बढ़ता जा रहा है, फिर भी भारतीय लोक सेवाओं से सामान्यज्ञ प्रशासकों के वर्चस्व को तोड़ने में काफी समय लगेगा।
14. **विधि के शासन पर आधारित-** भारतीय लोक सेवाएं विधि के शासन पर आधारित हैं। इसके द्वारा सारे कार्य विधि या कानून के अनुरूप ही संपादित किए जाते हैं। कोई भी अधिकारी या कर्मचारी ना तो विधि के शासन से ऊपर है और ना ही अपनी कार्य पद्धति में विधि के शासन की अवहेलना कर सकता है।
15. **सकारात्मक प्रवृत्ति-** भारतीय लोक सेवाओं की नकारात्मक प्रवृत्ति पर बहुत कुछ कहा जाता है, लेकिन इसका मतलब यह बिल्कुल भी नहीं है कि भारतीय लोक सेवाओं की कोई सकारात्मक प्रकृति नहीं है। भारतीय लोक सेवाओ में योग्यता, कुशलता, संविधान के प्रति प्रतिबद्धता, राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लिए गए निर्णय को क्रियान्वित करने की क्षमता, विधि के शासन का अनुशीलन, अनुशासन तथा परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने की क्षमता जैसे गुण भी विद्यमान है। यह सब गुण ही लोक सेवाओं की क्षमता है।
16. **सेवाकाल की सुरक्षा-** भारतीय संविधान की धारा- 309 केंद्रीय संस्था राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को उनके क्षेत्र में लोक सेवाओं की नियुक्ति तथा सेवा शर्तों के नियमन का अधिकार देती है। धारा- 310 में उल्लेख है कि लोक सेवा के कर्मचारी केंद्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपालों के प्रसादपर्यंत ही अपने पद पर कार्य करेंगे। इस प्रावधान का यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल स्वेच्छा पूर्वक कभी भी किसी अधिकारी को उसके पद से हटा देंगे। संविधान में लोक सेवकों की सेवा सुरक्षा के लिए भी उपयुक्त व्यवस्था की गई है। धारा- 311 के अनुसार लोक सेवा के किसी भी सदस्य को उसके नियुक्त करने वाले अधिकारी द्वारा नहीं हटाया जा सकता। किसी भी कर्मचारी को हटाने अथवा पदावनत करने से पूर्व उसे अपने पक्ष में सफाई देने का पूरा अवसर दिया जाएगा।
17. **राजनीतिक हस्तक्षेप-** भारत में कार्मिक प्रशासन राजनीति के शिकंजे से ग्रस्त है। मंत्रियों और सांसदों तथा विधायकों द्वारा से भी वर्ग की भर्ती, पदोन्नति, अनुशासन, स्थानांतरण आदि पर अनुचित दबाव डाला जाता है। इस बात का कर्मचारियों की कार्यकुशलता पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। यही नहीं राजनीतिक स्वार्थ के लिए प्रशासनिक नियमों में भी बदलाव कर दिए जाते हैं। राजनीतिक हस्तक्षेप और पक्षपात संगठन के कुछ सदस्यों को लापरवाह बना देता है।
18. **समुचित कार्मिक नीति का अभाव-** मैक्स वेबर के अनुसार एक आदर्श सेवी वर्ग नीति वह होती है, जिसमें सभी कर्मचारियों के कर्तव्य निर्धारित कर उन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए उन्हें पर्याप्त सत्ता सौंपी जाए तथा कार्य की एक उचित पद्धति एवं व्यवस्था भी निर्धारित की जाए। उपयुक्त सेवी वर्ग प्रशासन की नीति प्रत्येक शासन व्यवस्था की एक वांछनीय विशेषता होती है। निजी संगठनों की अपेक्षा सरकारी संगठनों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव अधिक होता है। इसकी सहायता से ही एक देश के प्रशासन को सार्थक, उपयोगी, कार्य कुशल, प्रभावशाली, मितव्ययी तथा उत्तरदाई बनाया जा सकता है।

भारतीय नौकरशाही के विरुद्ध की गई सारी बुराइयों और नकारात्मक सोच की वास्तविक जड़ें सेवीवर्ग प्रशासन की दोषपूर्ण नीति होती है। अधिकारियों का असहायपूर्ण दृष्टिकोण, कार्य संपन्नता में अनावश्यक देरी, भ्रष्टाचार, आवश्यक वस्तुओं की अनुपलब्धि, जनसाधारण को सेवाएं प्रदान करने वाले अभिकरणों द्वारा अवहेलना, भाई-भतीजावाद और पक्षपात का प्रभाव, जनता की शिकायतें सुनने और उनका निवारण करने की पर्याप्त व्यवस्था आदि का दोष किसी ना किसी रूप में सेवीवर्ग प्रशासन की समुचित कार्मिक नीति के अभाव की परिचायक हैं।

## 4.5 निष्कर्ष

लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आदर्श कार्मिक प्रशासन में स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था होनी चाहिए, योग्यता के आधार पर भर्ती होनी चाहिए, व्यक्ति के साथ जाति,जन्म स्थान, लिंग, धर्म,और प्रजाति के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव ना करते हुए अवसर की समानता प्रदान करनी चाहिए। भारत में संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं तथा एक आधार भी प्रदान करते हैं। भारतीय लोक कार्मिक प्रशासन पर ब्रिटिश काल का प्रभाव, प्रशासन का लोक कल्याणकारी तथा लोकतांत्रिक स्वरूप, प्रशासन का संवैधानिक आधार, योग्यता पर आधारित भर्ती, अवसर की समानता, विकासोन्मुख प्रशासन, आरक्षण की व्यवस्था लोक सेवाओं का व्यापक आकार, भ्रष्टाचार की समस्या आदि प्रमुख विशेषताएं पाई जाती हैं।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. आदर्श कार्मिक प्रशासन के कोई दो लक्षण बताइए।
2. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की कोई दो विशेषताएं बताइए।
3. संविधान का अनुच्छेद- 166 क्या प्रावधान करता है?
4. विकासोन्मुख प्रशासन की अवधारणा क्या है?
5. भारतीय संविधान की कौन सी धारा में अवसर की समानता के बारे में बताया गया है?

## 4.6 सारांश

इस अध्याय में भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को विस्तार से जानने के बाद यह कहा जा सकता है की देवी वर्ग प्रशासन के लक्षण के संदर्भ में कोई सामान्य नियम नहीं बनाए जा सकते हैं। कोई भी प्रशासनिक तंत्र तब तक भली-भांति काम नहीं कर सकता है जब तक कि उसमें काम करने वाले व्यक्ति स्वयं कुशल और इमानदार ना हो। इसके साथ-साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि सेवा में प्रवेश करने वाले कार्मिकों की भर्ती का तरीका उपयुक्त होना चाहिए एवं पदोन्नति तथा प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था के साथ-साथ उन्हें अन्य लाभ भी प्रदान किए जाने चाहिए। लोक कार्मिक तंत्र के कुछ विशेष लक्षण ही इन्हें निजी संगठनों में मौजूद कार्मिक व्यवस्था से प्रथक करते हैं। विकास तथा जन कल्याण के बढ़ते हुए कार्यों से लोग कार्मिक तंत्र के समक्ष कई नवीन चुनौतियां सामने आ रही हैं। वर्तमान व्यवस्था को हमने ब्रिटिश शासन से विरासत में प्राप्त किया है। ब्रिटिश काल से प्राप्त कई विशेषताओं एवं कार्यों का अब कोई महत्व नहीं रह गया है, अतः उन को बदलने की आवश्यकता है। जनता की बढ़ती हुई आकांक्षाओं तथा कर्मचारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन तथा विकासात्मक गतिविधियों पर अधिक जोर होने के कारण प्रशासनिक तंत्र में व्यापक फेरबदल की आवश्यकता है।

## 4.7 शब्दावली

अकर्मण्यता- निकम्मापन, आलस्य, सामान्यज्ञ- व्यापक सामान्य ज्ञान वाला व्यक्ति, विकासोन्मुख- किसी विशेष दिशा या स्थिति की ओर जाता हुआ, परिवाद- शिकायत, पारिश्रमिक- वह धन जो किसी को किसी परिश्रम को करने के बाद पारितोषिक के रूप में दिया जाता है

## 4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की शैक्षिक योग्यता, स्पष्ट की व्यवस्था। **2.** लोक कल्याणकारी स्वरूप, अवसर की समानता। **3.** राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल के द्वारा उसके अधीन

अधिकारियों के द्वारा ही संपादित होगी। **4.** कार्मिक लोक प्रशासन सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करें। **5.** भारतीय संविधान की धारा- 15(1), 16(1)

## 4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची


1. सिन्हा, वी. एम. 1986. पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन :कंसेप्ट एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
2. गोयल, एस. एल.1984.पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999. लोक सेवीवर्गीय प्रशासन;रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र, 2008.कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006. लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, प्रभुदत्त, 2011. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. पाण्डेय,आशुतोष, 2009 . कार्मिक प्रशासन; विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।


## 4.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. श्रीवास्तव, एल. पी. 1987. पब्लिक परसोनेल सिस्टम इन इंडिया; अनमोल: नई दिल्ली।
2. माहेश्वरी, एस.आर. एंड ए. अवस्थी, 1987. पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल: आगरा।


## 4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आदर्श सेवीवर्ग प्रशासन की लक्षणों की विवेचना कीजिए।
2. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के संदर्भ में किए गए संवैधानिक प्रावधानों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

# इकाई- 5 आधुनिक नौकरशाही के संदर्भ में लोक सेवा

**इकाई की संरचना**

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 लोक सेवा का अर्थ एवं उद्देश्य
5.3 आधुनिक लोक सेवा के विकास का इतिहास
5.4 आधुनिक लोक सेवा के अभिलक्षण
5.5 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताऐं
5.6 लोक सेवा का अर्थ तथा नौकरशाही से अन्तर
5.7 लोक सेवा और नौकरशाही में सम्बन्ध
5.8 आधुनिक नौकरशाही के ऐतिहासिक निर्धारक तत्व
5.9 लोक सेवा की प्रकृति और परिस्थिति
5.10 आधुनिक नौकरशाही की विशेषता
5.11 लोक सेवा के संदर्भ में नौकरशाही- भारतीय परिप्रेक्ष्य
5.12 नौकरशाही बनाम लोकसेवा के सकारात्मक पहलू
5.13 सारांश
5.14 शब्दावली
5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.18 निबन्धात्मक प्रश्न

## 5.0 प्रस्तावना

लोक सेवा वास्तव में लोक प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने स्वस्थ रूप में लोक सेवा एक पवित्र सेवा है, लेकिन अपने विकृत रूप में यह एक मानसिकता बन जाती है, जिसका लक्ष्य सेवा कम प्रभाव, नियंत्रण और प्रताड़ना अधिक होता है। लोक सेवा के इस विकृत रूप को 'नौकरशाही' कहा जाता है, जो आधुनिक जटिल समाज में अपरिहार्य बन गयी है। इसकी इसी परिहार्यता ने इस तार्किक और प्रासंगिक बनाये रखा है।

जैसे-जैसे समाज आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की ओर बढ़ता जाता है, लोक सेवा की भूमिका भी बढ़ती है और इसी के साथ एक लोक सेवक एक नौकरशाह का रूप धारण कर लेता है। राजनीतिक चिन्तकों ने नौकरशाही के चरित्र और नौकरशाह की मानसिकता पर बहुत कुछ लिखा है।

विकासशील देशों में लोक सेवा बनाम नौकरशाही की समन्वय और द्वन्द्व की प्रक्रिया बड़ी स्पष्ट होती है, जिसका सरलता से वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। इसी अध्ययन के आधार पर विकसित देशों में उनके अतीत से वर्तमान तक लोक सेवा और नौकरशाही के अन्तः सम्बन्धों के विकास की प्रक्रिया को समझना सरल हुआ है।

## 5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आधुनिक नौकरशाही की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- लोक सेवा के अर्थ और महत्व को समझ सकेंगे।
- नौकरशाही और ओर लोक सेवा के सम्बन्धों को जान पायेंगे।
- नौकरशाही और लोक सेवा के अन्तर को समझ सकेंगे।
- नौकरशाही की मानसिकता किस प्रकार लोक सेवा के मार्ग में बाधायें डालती है, यह जान पायेंगे।

## 5.2 लोक सेवा का अर्थ एवं उद्देश्य

लोक-सेवा वास्तव में प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने शुद्ध एवं पवित्र रूप में यह एक पवित्र सेवा है, लेकिन विकृत रूप में यह एक मानसिकता बन जाती है, जिसका लक्ष्य सेवा कम स्वयंसेवा अधिक होता है, जो यह नियंत्रण, प्रभाव और प्रताड़ना का प्रयोग करके प्राप्त करती है। लोक-सेवा के इस विकृत रूप को नौकरशाही कहा जाता है।

किसी भी प्रकार के प्रशासन के तीन अंग होते हैं- (1) संस्थागत प्रशासनिक ढांचा, जो विभिन्न सोपानों और अभिकरणों पर आधारित होता है, (2) इन अभिकरणों में कार्यरत व्यक्ति, जिनको सेवी-वर्ग का नाम दिया जाता है; तथा (3) नीतियाँ, नियम तथा विनियम, जिनको राजनीतिक प्रशासन तैय और तैयार करता है और जिनके तहत सेवी-वर्ग सरकारी प्रशासन तंत्र का संचालन करता है। प्रशासन के यह तीनों अंग मिलकर लोक सेवा को मूर्त रूप देते हैं। इस तरह लोक सेवा वास्तव में प्रशासन की आत्मा बन जाती है, जिसके अभाव में नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता असम्भव हो जाती है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि शासन की सफलता प्रशासन पर निर्भर करती है और प्रशासन की सफलता कुशल लोक सेवा पर निर्भर करती है। कुशल लोक सेवा के लिये, योग्य, प्रशिक्षित अनुभवी और साहसी सेवी-वर्ग का सर्वाधिक महत्व होता है। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट इसी प्रकार के सेवी वर्ग को ''मानव शक्ति'' मानते हैं। यह मानव शक्ति स्थायी, वेतन भोगी, जीवन के अन्त तक पूरी तरह सुरक्षित और पेशेवर होती है, जिसमें नियमों, विनियमों तथा कानूनों की बारीकियों को समझने और उनको लागू करने की क्षमता होती है।

## 5.3 आधुनिक लोक सेवा के विकास का इतिहास

लोक सेवा की अवधारणा अथवा संस्था का इतिहास प्राचीन भारत राजनीतिक व्यवस्था से लेकर मुगल-शासन तथा ब्रिटिश शासन के इतिहास के पन्नों तक खोजा जा सकता है। लेकिन मुगल कालीन भारत प्रशासन में किसी भी प्रकार की अखिल भारतीय सेवाओं का गठन नहीं किया गया था। जो लोक सेवाएं गठित की गयीं थीं, उनका सम्बन्ध राजस्व, समाज-कल्याण तथा शान्ति व्यवस्था से था।

अंग्रेज शासन काल दो कालों में विभक्त है- ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल, जिसमें लूट-प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा ने योग्यता आधारित प्रशासकीय सेवाओं के विकास में बाधा पहुँचाई। लेकिन जिस तरह वारेन हेस्टिंग्ज तथा लार्ड कार्नवोलिस जैसे गवर्नर जनरलों ने भू-राजस्व की वसूली तथा कानून और व्यवस्था के क्षेत्रों में लोक सेवाओं की आधारशिला रखी वे स्वयं में लोक सेवा के इतिहास में मील का पत्थर है। ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण में लार्ड क्लाइव, लार्ड वेलेजली तथा लार्ड मैकाले ने लोक सेवाओं को एक नया आयाम दिया। न्याय प्रशासन एकीकृत किया गया और यहाँ भारतीय लोक सेवाओं की स्थापना की गयी; चयन व प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया; असैनिक सेवकों को प्रतिज्ञाबद्ध नागरिक सेवा का नाम दिया गया; कर्मचारियों पर अनुशासित रखने के लिये कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये लेकिन उसी के साथ अनेक रियायतें भी दी गयीं; खुली प्रतियोगिता पद्धति लागू की गयी। इस

काल के अन्त में 1854 सर्वाधिक महत्वपूण है। लार्ड मैकाले ने इसी वर्ष आई0सी0एस0 के लिये जो सिफारिशें की वे आज भी भारतीय लोक सेवाओं के लिए सार्थक बनी हुई हैं।

सन् 1858 में कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और ब्रिटिश क्राउन की सरकार अस्तित्व में आ गई। यहाँ से शब्द 'सरकार' का सफर आरंभ हुआ। अभी तक कम्पनी का प्रशासन कम्पनी के उच्च अधिकारियों के प्रति जबावदेह था लेकिन क्राउन की सरकार ब्रिटिश संसद और कुछ सीमा तक प्रजा के प्रति जवाबदेह बन गयीं। यहाँ लोक सेवाओं का तीव्र गति से विकास होने लगा। सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर दी गयी, जिन्हें भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा तथा अधीनस्थ सेवा का नाम दिया गया; भारतीय नागरिक सेवाओं की भर्ती के लिये इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित की गयीं लेकिन अन्य दो प्रकार की सेवाओं की भर्ती प्रान्तीय स्तर पर की जाने लगी। इस तरह लोक सेवाओं के भरतीयकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गयी।

धीरे-धीरे अनेक सुधारों के साथ तथा अनेक समितियों के माध्यम से 1912 से लेकर 1935 तक भारतीय लोक सेवाओं का विकास होता गया। 1935 के भारत शासन अधिनियम ने लोक सेवाओं को एक नई दिशा दी। लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी; चिकित्सा सेवा के अतिरिक्त सभी सेवाओं को भारत मन्त्री के अधिकार क्षेत्र से निकाल दिया गया।

भारत की स्वतंत्रता के साथ लोक सेवा का तीसरी चरण आरंभ होता है। अब यहाँ लोक सेवाओं का विकास नई परिस्थितियों, नई चुनौतियों तथा नई आवश्यकताओं के अनुरूप होना था। नतीजा यह निकला कि परम्परागत लोक सेवाओं की संरचना, मानवशक्ति की योग्यता, प्रशिक्षण तथा सेवा शर्तों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाने लगे। भारतीय सिविल सेवा (ICS) का स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) ने लिया तथा भारतीय विदेश सेवा (IFS) तथा भारतीय वन सेवा की स्थापना की गयी।

## 5.4 आधुनिक लोक सेवा के अभिलक्षण

स्वतंत्रता के पश्चात् यह तथ्य स्वीकार किया जाने लगा कि देश का चहुमुखि विकास पूरी तरह प्रशासनिक लोक सेवा पर निर्भर है। लोक-सेवा का वैज्ञानिक अध्ययन तथा वैज्ञानिक प्रबन्धन प्रशासन की सफलता की कुंजी है। अतः जिन बातों ने लोक सेवा को नया रूप तथा नई दिशा दी उनका सम्बन्ध मानव शक्ति से था। मानव शक्ति अर्थात सेवी-वर्ग को केन्द्रीय बिन्दु मानकर प्रशासनिक चिन्तकों ने जो कदम उठाये उन्हीं से लोक सेवा के विशिष्ट अभिलक्षण सामने आने लगे। सारांश में यह अभिलक्षण इस प्रकार हैं-

1. सेवी-वर्ग का कुशल, प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ होना;
2. प्रशासन के हर क्षेत्र में विशिष्टिकरण बढ़ जाना;
3. पक्षपात रहित सेवी-वर्ग का चयन, प्रशासनिक दृष्टि से कुशल, राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ जो अपने आचरण
4. से संवेदनशील लोक सेवा जो समाज के प्रति समर्पित हो।
5. वैतनिक कार्यकर्ताओं का निकाय; लोक सेवकों का स्थायी पेशेवर होना;
6. राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ तथा निष्पक्ष होना;
7. संगठनात्मक दृष्टि से लोक सेवा का पद-सोपानीय स्वरूप तथा सेवी वर्ग का दृष्टिकोण औपचारिक होना।
8. किसी भी शासन व्यवस्था में सेवी वर्ग का अनिवार्य अंग होना चाहे यह शासन व्यवस्था किसी भी विचारधारा से जुड़ी हो अथवा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित हो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लोक सेवा की विशेषताएं आधुनिक समाज के तकाजों के अनुरूप हैं।

## 5.5 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताऐं

सर्वप्रथम हमें नौकरशाही को समझना होगा। नौकरशाही ब्यूरॉक्रेसी (Bureaucracy) की पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है अधिकारी वर्ग या अधिकारी तंत्र। जब इस अधिकारी वर्ग का रवैया शाहों जैसा होता है तब इसे नौकरशाही का नाम दिया जाता है, जिसका साधारण अर्थ यह है कि यह अधिकारी कहने को तो ''नौकर'' या सेवक हैं लेकिन इनका आरचण शाहों जैसा है, क्योंकि इन अधिकारियों का रवैया लोकतांत्रिक समाज के अनुकूल नहीं होता है, इसलिये नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन गया है।

नौकरशाही के विचार अथवा सिद्धान्त का सब से महान प्रवक्ता मैक्स वेबर है। उसके अनुसार ब्यूरा (ठनतमंन) अथवा लोक कार्यालय किसी न किसी रूप में विश्व की संगठित सरकारों का अनुशब्द रहे हैं। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने ने किया, लेकिन मैक्स वेबर वह पहला जर्मन चिन्तक है, जिसने वैज्ञानिक आधार पर नौकरशाही या 'ब्योरॉकरसी' का विधिवत अध्ययन करके नौकरशाही का प्रतिमान (Model) तैयार किया और इसके विशिष्ट लक्षण समझाए। वेबर ने इस प्रतिमान को विधिक-तार्किक (Legal-rational) नौकरशाही का नाम दिया है। इस प्रतिमान की निम्न विशेषताएँ हैं-

1. शायकीय कार्य में निरन्तरता बनी रहती है।
2. एक प्रशासनिक अभिरकण निश्चित तय शुदा नियमों के अनुसार काम करता है। इस सम्बन्ध में तीन नियमों का पालन किया जाता है। पहला, अधिकारी की कार्य सम्पन्न करते समय निर्वैयक्तीकरण की हैसियत रखता है; दूसरे, अधिकारी उसको सौंपी गयी जिम्मेदारी के अनुसार सत्ता दी जाती है; तीसरे, उसको काम पूरा करने के लिए जो साधन (धन इत्यादि) दिये जाते हैं। उनका प्रयोग वह कानूनी दायरे में रहकर ही कर सकता है।
3. प्रत्येक अधिकारी सत्ता की सोपनियता का अंग होता है;
4. अधिकारी मन मर्जी से मुहैय्या कराये गये संसाधनों का प्रयोग नहीं कर सकते। वे संसाधनों के प्रयोग के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होते हैं।
5. कार्यालयों में भर्ती पदाधारियों द्वारा निजी सम्पत्ति के रूप में नहीं की जा सकती।
6. केवल लिखित दस्तावेजों के आधार पर प्रशासन चलता है।

वेबर ने लोक सेवा या नौकरशाही के अभिलक्षणों के आधार पर एक अधिकारी की विशेषताएं भी तय की हैं, जो इस प्रकार हैं-

- एक अधिकारी किसी अन्य व्यक्ति का व्यक्तिगत तौर पर सेवक नहीं होता है;
- वह उस सत्ता का प्रयोग करता है, जो उसको निर्वैयक्तिक नियमों की ओर से प्रदत्त होते हैं;
- उसकी वफादारी का मापदण्ड उसका पूरी निष्ठा के साथ कर्तव्य को अन्जाम देना है;
- उसकी प्रशासनिक योग्यता के अनुसार उसको नियुक्ति दी जाती है;
- प्रशासनिक कार्य उसका पूर्ण-कालिक पेशा होता है, तथा
- काम के बदले उसे निरन्तर वेतन दिया जाता है तथा उसको विश्वास होता है कि उसे पूरी सेवा काल में पदोन्नति के अवसर प्राप्त होंगे।

उक्त विलक्षणों के कारण वेबर ने नौकरशाही को वर्तमान परिस्थितियों में अपरिहार्य माना। उसके अनुसार विधिक-तार्किक नौकरशाही तकनीकी दृष्टि से किसी भी दूसरी प्रशासनिक व्यवस्था से उच्चतर है। लोगों का इस से मुक्ति पाना कठिन है। इसलिए यह स्थायी और अनिवार्य है।

सारांश में नौकरशाही के वेबेरियन प्रतिमान में नौकरशाही के मुख्य तत्व हैं: निर्वैयक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता, पदसोपनियता, नीति और जन ध्येय, लिखित दस्तावेज, तथा यक्ति का शासन। आधुनिक नौकरशाही का वर्तमान में यही रूप सार्वभौमिक है।

## 5.6 लोक सेवा का अर्थ तथा नौकरशाही से अन्तर

नौकरशाही को समझने के बादे अब यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न किया जा सकता है कि लोक सेवा (Civil Services) तथा नौकरशाही में अन्तर क्या है तथा इन दोनों संस्थाओं के पारस्परिक रिश्ते क्या हैं? इन सवालों का उत्तर देने से पहले हमें लोक सेवा को सारांश में समझना होगा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, लोक सेवा कल्याण-राज्य का अन्तिम लक्ष्य है। भारतीय कल्याण राज्य की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं। यह एक विकासशील देश है, जिसका आर्थिक विकास वास्तविक मंजिल है। स्वतंत्रता के बाद लागू किये गये संविधान ने इसके विकास की वास्तविक दिशायें स्पष्ट रूप से तय की हैं। क्योंकि यह एक बहुलवादी संस्कृति का देश है, इसलिए प्रत्येक वर्ग और सम्प्रदाय का ध्यान रखा गया है, जिसका सार इस प्रकार है-

- एक जनतंत्रीय, संसदात्मक गणराज्य की स्थापना;
- समाजवादी ढंग के समाज की रचना;
- धर्मनिरपेक्षता पर आधारित राज्य;
- मानव अधिकारों के आधार पर व्यक्ति को मूल-अधिकारों की सुरक्षा;
- स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना;
- स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व के सार्वभौमिक विचारों को सार्थक करना;
- देश के पिछड़ों, कमजोर तबकों, महिलाओं और बच्चों को आगे बढ़ाना;
- छुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराई का उन्मूलन करना; तथा
- अल्पसंख्यकों की संस्कृति को सुरक्षित रखने की गारन्टी देना।

उक्त सभी तत्व भारतीय संविधान का सार है, जिनको 'राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों' के माध्यम से सुरक्षा की गारन्टी दी गयी है।

लोक सेवा का एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य सवास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में साधारण बीमारियों से लेकर आकास्मिक महामारियों की स्थिति से निपटने के लिये लोक सेवा को पूरी तरह तैयार रहना पड़ता है। ऐसी आकस्मिक चुनौतियों का भार पूरी तरह मुस्तैद लोक सेवकों की तत्परता, सूझ-बूझ और निर्णय-निर्माण की योग्यता और उनके क्रियान्वयन पर निर्भर करता है। इनमें स्वास्थ्य कर्मियों से लेकर प्रशासनिक मशीनरी तक सबकी अहम भूमिका होती है।

यही स्थिति आकस्मिक प्राकृतिक आपदा की है। कुछ ऐसी आपदाऐं हैं, जिनका अनुमान पहले से लगाया जा सकता है लेकिन जो आपदा अचानक आती है, लोक सेवा को उससे निपटने के लिये भी हर समय तैयार रहना पड़ता है। इस संकट से निपटने के लिए प्रत्येक देश में आपदा-प्रबन्धन विभाग होते हैं। यदि लोक सेवक हर समय परिस्थितियों का सामना करने के लिये तत्पर और सजग रहते हैं, तो जन-साधारण की सुरक्षा की जा सकती है और जान-माल की कम से कम क्षति होती है। कुशल लोक सेवा की यही परीक्षा है और उसकी तत्परता की यही कसौटी है।

जहाँ तक शिक्षा का क्षेत्र है, सब कुछ-आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास अच्छी शिक्षा पर निर्भर रकता है। प्राईमरी शिक्षा से लेकर उच्च्च शिक्षा तक सब कुछ सक्रिय लोक सेवा पर निर्भर करता है।

बड़े दुख की बात है कि भारत में सब से अधिक अनदेखी स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र की जाती रही है। शिक्षा मानव संसाधनों का आधार है और यह मानव संसाधन स्वस्थ हों, यह स्वस्थ समाज के लिये अनिवार्य शर्त है।
लोक सेवा का एक अन्य गहरा सम्बन्ध जन-कल्याण योजनाओं से है। इसका एक बड़ा पहलू रोजगार के अवसर पैदा करना है। कृषि प्रधान विकासशील देशों में जो बड़ी समस्या है वह बेरोजगारी की है। लोक सेवा के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

## 5.7 लोक सेवा और नौकरशाही के सम्बन्ध

वास्तव मं लोक सेवा और नौकरशाही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संस्था एक ही है, संगठनात्मक संरचना भी एक ही है, मानव शक्ति में भी कोई अन्तर नहीं है। सैद्धान्तिक पहलू भी समान हैं, कार्य-विधि भी लगभग एक ही है, लेकिन यदि दोनों में कोई अन्तर है तो मनोवैज्ञानिक हैं। दोनों में सोच और व्यवहार का अन्तर है। लोक सेवक अपने पेशे (Career) के आरम्भिक दौर में अत्यंत उत्साही, कर्मठ, गतिशील और निष्ठावान नजर आता है। वह समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये कदम उठाता है। संवैधानिक तकाजों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्धता दिखाता है। वह प्रगतिशील, उदार, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी नजरियों का परिचय देता है। यहाँ उसका दृष्टिकोण पूरी तरह सामाजिक हित से ओत-प्रोत होता है। वह परहित की बात करता है, जो लोक सेवा का ध्येय है। जब तक उसकी यह सोच बनी रहती है, वह लोक सेवा के तकाजों को पूरा कराने का प्रयास करता है।
लेकिन धीरे-धीरे उसकी मानसिकता बदलने लगती है। वह अपने वरिष्ठों की लीक पर चलने लगता है। अब एक लोक सेवक जो कुछ करता है, उसका सम्बन्ध आत्म-हित अधिक और परहित कम हो जाता है। जो परिवर्तन उसके आचरण में उभरते हैं, वे हैं- दम्भी होना, सामाजिक अलगाववाद की भावना, कठोर, निष्ठुर और उदासीन आचरण, संवेदनहीनता, आत्म-प्रगति और पदोन्नति के बारे में सक्रिय रहना, सरकारी संसाधनों का दुरूपयोग, अकर्मठता और निष्क्रियता, राजनीतिक तटस्थता और निष्पक्षता का ह्रास तथा तत्कालीन राजनीतिक विचारधारा में रंग जाना तथा पूंजीपतियों और दबंगों के प्रभाव में आकर उनके हितों का साधन बन जाना।
उक्त सब बातें नौकरशाही की विशेषताएं बन जाती हैं और इस तरह लोक सेवा का स्वरूप दूषित, विकृत और भ्रष्ट हो जाता है।

## 5.8 आधुनिक नौकरशाही के ऐतिहासिक निर्धारक तत्व

नौकरशाही के बारे में ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, वह आधुनिक नौकरशाही के स्वरूप और चरित्र को दर्शाता है, लेकिन उसका स्वरूप उसको विरासत में मिला है। भारत को लोकसेवा की विरासत इंग्लैण्ड से मिली है जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और क्राउन का शासन आरम्भ हुआ। ब्रिटेन में आधुनिक लोक सेवा का प्रारम्भ 1853 से हुआ जब चार्ल्स ट्रेवेलियन तथा सर स्टेफर्ड द्वारा विभागीय जांचों के आधार पर मुख्य सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों में योग्य कर्मचारियों की भर्ती के लिये उपयुक्त परीक्षा की व्यवस्था, लोक सेवकों के प्रशिक्षण के द्वारा उनकी योग्यता को बढ़ाना, इस योग्यता को उनकी पदोन्नति का आधार बनाना; योग्यता प्राप्त सेवी वर्ग को विशेष पद पाने का अवसर देना; सेवा में एकता के तत्वों को लाया जाना, समाज आधारों पर नियुक्तियाँ करना; तथा दूसरे विभागों में पदोन्नति के अवसर प्रदान करन।
ट्रेवील्यन-नार्थकोट के प्रस्तावों के आधार पर 1855 में एक आदेश द्वारा तीन सदस्यीय लोक सेवा आयोग की नियुक्ति की गयी। नियुक्तियों में अभी भी राजनीतिक दखल बना रहा। इसलिए लोक सेवकों का राजनीति तौर पर तटस्थ एवं निष्पक्ष बना रहना कठिन था। लेकिन 1870 के सपरिषद आदेश द्वारा जब कुछ विभागों तथा पदों पर प्रतियोगी परीक्षाऐं बाध्य कर दी गई, और खुली प्रतियोगिताओं का रास्ता साफ कर दिया गया तब लोक सेवाओं में आमूल परविर्तन आने लगा। इसी काल में लोक सेवा परीक्षाओं की दृष्टि से लोक सेवाओं को दो भागों में

विभाजित किया गया-प्रथम वर्ग में उच्चतर तथा श्रेष्ठतर कर्मी। यह वर्ग सेवा की बौद्धिक मांग को पूरा करता था, जबकि दूसरा वर्ग दिन-प्रतिदिन के नियमित कार्यों का संचालित करता था।

ब्रिटेन में 1920 से लेकर 1939 तक के काल को लोक सेवाओं की दृष्टि से पुनर्गठन काल कहा जाता है। प्रथम विश्व युद्ध में लोक सेवाओं के दायित्वों में पंचायत काफी बढ़ौत्तरी हुई। उनको परिवर्तित प्रशासनिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता बनी रही।

लोक सेवा के विकास में राष्ट्रीय व्हिटले समिति का बड़ा योगदान है। यह पुनर्गठन समिति के नाम से जानी जाती है। पुनर्गठन समिति द्वारा प्रस्ताविक संरचना इस मान्यता पर आधारित थी कि लोक सेवा के प्रशासनिक तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं, तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं- नीति रचना सम्बन्धी कार्य तथा विशुद्ध रूप से यांत्रिक प्रकृति के कार्य।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद लोक सेवा की संरचना में कुछ और परिवर्तन किये गये। 1946 में सामान्य व्यावयासिक वर्गों की श्रंखलायें आरंभ की गयीं। तकनीकी सेवाओं को सामान्य संरचना प्रदान की गई। सामान्य वर्गों की स्थापना की गई। राल्फ एशेटन समिति (1943) के प्रतिवेदन के अनुसार प्रशिक्षण क लिए, नियोजित कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये; संगठन एवं प्रविधि कार्य का विकास हुआ; वेतन तथा सेवा की शर्तों की पुनरीक्षा के लिये स्वतंत्र निकायों की स्थापना की गई।

अन्त में फुल्टन कमेटी ने तीन प्रमुख सुझाव दिये- लोक सेवा विभाग की स्थापना; लोक सेवा महाविद्यालयों की स्थापना; एकीकृत ग्रेडितंग संरचना। फुल्टन कमेटी के सभी सुझावों को धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया गया।

लोक सेवा के उक्त सभी निर्धारक तत्वों ने लोक सेवा की प्रकृति को तय किया है।

## 5.9 लोक सेवा की प्रकृति और परिस्थिति

अब लोक सेवा की जो प्रकृति उभर कर सामने आती है, उसे आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जो इस प्रकार से है -

1. लोक सेवा विकास का परिणाम हैः विशेषकर इंग्लैण्ड में लोक सेवा को उसके इतिहास के झरोके से देखा जाना चाहिये। यहाँ उसका धीरे-धीरे विकास हुआ है, जो 1854 से ट्रेवील्यन-नार्थकोट रिपोर्ट के परिणामस्वरूप आंरभ हुआ और आगे तक चलता रहता है।
2. स्टाउंट ने ब्रिटिश लोक सेवा को पाँच वर्गों में विभाजित किया है- प्रशासनिक वर्ग, अधिशासी वर्ग, लिपिक वर्ग, लिपिक सहायक और टंकण वर्ग। यह सभी लोक सेवा के तौर पर प्रशासनिक एवं लिपिकीय कार्य सम्पन्न करते हैं। विभागीय और व्यासायिक वर्ग भी होते हैं। इस वर्ग में विशेष यांत्रिक योग्यता वाले अधिकारी आते हैं। व्यावसायिक वर्ग में बैरिस्टर, डॉक्टर, शिल्पी, इंजीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि। इनकी सेवा शर्तें वैसी हो होती हैं, जैसी प्रशासनिक अधिकारियों की होती है। लेकिन इन पदों पर नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नहीं होती हे।
3. लोक सेवी ब्रिटिश ताज के सेवक होते हैं, इसलिये वे मंत्रियों के समान हैं। यह सभी राजा के नाम से अपन कार्य सम्पन्न करते हैं, लेकिन सही व गलत कार्यो के लिये स्वयं जिम्मेदार होते हैं।
4. न्यायालय के नियंत्रण क्षेत्र से बाहर रहते हैं और इस तरह न्यायपालिकायें लोक सेवकों से सम्बन्ध नहीं रखती। इन लोक सेवकों से सम्बन्धित जो भी विवाद सामने उन्हें विभागीय आधार पर विवेक के माध्यम से सुलझाया जाता है।
5. प्रशासनिक आदेशों द्वारा नियमनों की व्यवस्था है। 1855 में लोक सेवाओं का पुनर्गठन सपरिषद आदेश के आधार पर किया गया था। उसके बाद समय-समय पर प्रशासनिक आदेश प्रसारित होते रहे हैं। प्रशासनिक आदेशों द्वारा नागरिक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। लोक सेवाओं की भर्ती,

स्तरीकरण, वेतन, पदोन्नति, काम के घण्टे, सेवा निवृत्ति की आयु आदि का नियमन सेवा आयोग करता है, जिसके पीदे मंत्री का निर्णय सर्वोपरि होता है।

6. लोक सेवा में सेवा सुरक्षा की गारंटी दी गई है। विभागों के आन्तरिक कारण नागरिक सेवकों को कुछ अधिकार देते हैं। वे विभाग द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरूद्ध कार्यवाही का अधिकार रखते हैं। उनको अपना नजरिया रखने का पूरा अधिकार है। अतः वह तभी दण्डित हो सकते हैं जब सुरक्षा अथवा आत्म रक्षा सारे माध्यम असफल हो जाते हैं।
7. इंग्लैण्ड में लोक सेवक राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह तटस्थ होते हैं। वह किसी राजनीतिक दल के प्रति वफादार नहीं होते हैं। वह पूरी निष्ठा के साथ पदासीन सरकार की सेवा करते हैं। 1954 में निर्मित संहिता के अनुसार वह देश की राजनीति में भाग नहीं ले सकते।
8. लोक सेवा की अनुकूल शर्तें तय की गई हैं ताकि लोक सेवकों को उज्ज्वल भविष्य का अवसर प्राप्त होता रहे और नये प्रवेशार्थी लोक सेवा के प्रति आकर्षित होते रहे। यह शर्तें उनको भविष्य के प्रति आश्वस्त रखती हैं। उन्हें पदोन्नति के अवसरों की आशा बनी रहती है। इसके अतिरिक्त उनको अच्छा वेतन और अन्य सुख-सुविधायें देकर उनको भविष्य की चिन्ताओं से मुक्त रखा जाता है।
9. अन्य विशिष्ट लक्षणों में ब्रिटेन की लोक सेवा में लोक-कल्याणकारी राज्य की प्रवृत्ति के कारण प्रशासनिक वृद्धि के साथ-साथ लोक सेवकों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होना, नवीन विभागों और मंत्रालयों की स्थापना। दूसरे, लोक सेवा का अभिजनवादी स्वरूप होना। सारांश यह है कि ब्रिटिश लोक सेवा एक सम्मानीय सेवा है, जिसको पाकर अधिकारियों को गर्व होता है।

## 5.10 आधुनिक नौकरशाही की विशेषता

अब प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक नौकरशाही क्या है? सच तो यह है कि नौकरशाही को दुर्भाग्यवश घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि आज संसार के प्रत्येक देश में आज सरकारी विभाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थाएं मानी जाती हैं। सरकारी विभाग न केवल किसी देश की बौद्धिक मानव शक्ति को रोजगार में समायोजित करते हैं, बल्कि आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लेकर लोगों का जीवन सुलभ और सुरक्षित रखते हैं। इस तथ्य की साधारण अवहेलना की गई है।

यद्यपि मैक्स वेबर ने ब्योरोज पर महत्वपूर्ण ध्यान देकर विधिक-तार्किक मॉडल के माध्यम से नौकरशाही की तर्कसंगतता को स्वीकार करने का प्रयास किया, लेकिन वेबर का प्रभाव निर्णय-निर्माण सिद्धान्त पर नहीं पड़ा।

आधुनिक विकसित और विकासशील देशों में नौकरशाही का वास्तविक स्वरूप, उसकी कार्यशैली और उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है इस प्रकार साइमल, ट्रमैन, बुचानन, तुलोक, राइकर और साइमन ने बहुत कुछ लिखा है, लेकिन सर्वाधिक प्रभावशाली नजरिया ऐन्थॉनी डाउन्स ने रखा है। यहाँ हम उसके विश्लेषण को संक्षेप में रखेंगे-

1. ऐन्थानी डाउन्स इस परिकल्पना के साथ नौकरशाही के सम्बन्ध में अपना नजरिया रखता है कि नौकरशाह अन्य लोगों की तरह आत्म हितों से प्रेरित होते हैं। यही दृष्टिकोण अर्थशास्त्री एडम स्मिथ का भी था। डाउन्स सर्वप्रथम संगठन की बात करता है, जिनका आकार बड़ा है और जिसके सदस्य निवैयक्तिक पारस्परिक सम्बन्ध रखते हैं। उनकी सेवा पूर्णकालिक होती है। वे अपने पेश के लिए समर्पित होते हैं, पदोन्नति के लिये वे अपने वरिष्ठों पर निर्भर रहते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि नौकरशाह इस तरह अपने आचरण को ढालते हैं, जिनसे उनके वरिष्ठ प्रभावित हों।
2. नौकरशाह केवल ब्योरोज के लिए काम नहीं करते, वे किसी भी बड़े संगठन में काम कर सकते हैं। उनकी मुख्य भूमिका ही उनको पदोन्नति का अवसर प्रदान करती है। उनका योगदान खुले बाजार में आंका नहीं जा सकता।

3. इस तरह यह स्वीकार करके कि नौकरशाह एक बदनाम शब्द है डाउन्स ''नौकरशाह'' को ''अधिकारी'' (official) कहना पसन्द करता है।
4. डाउस की परिकल्पल का सार यह है कि अधिकारियों के सामने जो निश्चित लक्ष्य होते हें वे हैं- शक्ति; आय; प्रतिष्ठा; सुरक्षा; सुविधा; वफादारी (एक विचारधारा, एक संस्था, या राष्ट्र के प्रति); अपने काम में गर्व; तथा अन्त में जनहित सेवा की इच्छा।

हितों की पूर्ति की दृष्टि से अधिकारियों को दो भागों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

- विशुद्ध आत्म-हितीय अधिकारी जो केवल अपने हितों के लिये काम करते हैं, न कि ब्योरोज या समाज के लिए;
- मिश्रित उद्देशीय अधिकारी, जिनका उद्देश्य अपने हितों की पूर्ति के अतिरिक्त, सामाजिक मूल्यों के प्रति भी वफादारी होती है।

डाउन्स एक और तथ्य की ओर भी इशारा करता है। वह यह है कि ब्योरोज स्वयं अथवा स्वतः जन्म नहीं लेते। स्वयं अधिकारी अपने हितों की पूर्ति के लिए उनके निर्माण तथा विस्तार की सिफारिश करते हैं, ताकि उनको पदोन्नति के अवसर निरन्तर मिलते रहें तथा नये अधिकारियों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती रहे।

## 5.11 लोक सेवा के संदर्भ में नौकरशाही-भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय नौकरशाही ब्रिटेन की देन है। नौकरशाही पर चिन्तन तथा इसका विश्लेषण भी योरोप में हुआ है। ब्रिटेन की नौकरशाही कुलीन घरानों पर आधारित थी। नौकरशाह प्रायः आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्व विद्यालयों के पढ़े हुये होते थे। ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों में भी नौकरशाही की परम्परा डाली। अधिकांशतः अंग्रेज नौकरशाह उपनिवेशों में प्रशासनिक सेवा के लिये भेजे गये, जो स्वयं को स्वर्ग-जन्मे (heaven born) मानते थे।

इन कुलीन प्रशासकों के लिये वास्तव में उपनिवेश स्वर्ग थे। वे अपनी पूरी कुलीनीय मानसिकता के साथ उपनिवेशों में आते थे। उपनिवेश के लोगों को अत्यंत हीन दृष्टि से देखते थे। दासों जैसा उनके साथ बर्ताव करते थे। उपनिवेशों की सम्पदा को लूटकर अपने देश चले जाते थे और वहाँ आलीशान भवन बनाकर, लार्ड या सर की पद्वी पाकर ऐश की जिन्दगी गुजारते थे।

स्वतंत्रता तक भारत की भी यही कहानी थी। भारत में प्रवेश करने वाले आई0सी0एस0 अधिकारी भारतीयों को कुत्तों से अधिक कुछ नहीं समझते थे। वे स्वयं को स्वामी और भारतीयों को दास समझते थे। वे साधारण भारतीय समाज से हटकर सिविल लाइंस में रहते थे। सिविल लाइंस का अर्थ था सभ्य लोगों के रहने की जगह, जहाँ असभ्य भारतीयों को घुसने का भी अधिकार नहीं था। यह अंग्रेज अधिकारी बड़े-बड़े बंगलों में रहते थे, जिनके परिवार के बाहर लिखा होता था-''भारतीय कुत्तों का प्रवेश वर्जित है।'' यही स्थिति उनके कतबों की थी।

भारत के पर्वतों में तो स्थिति और दयनीय थी। कुमाऊँ में बेगार की प्रथा थी, जिनका अर्थ था यात्रा के लिये कुमाउंनी मजदूरी का टट्टू, खच्चर या घोड़े की तरह प्रयोग करना। साहब और मेम साहिबा एक मजदेर के कन्धों पर चढ़ जाते थे और उनको किसी प्रकार की दया नहीं आती थी। 1 जनवरी 1917 को बेगार व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कानून बना जब इसके विरूद्ध कुमायूं मे आवाज उठी।

संक्षेप में नौकरशाही की अंग्रेजी मानसिकता ने भारत में सामाजिक अलगाववाद को बढ़ावा दिया जिसका नतीजा 1857 का विद्रोह था। सर सय्यद अहमद खाँ ने अपनी पुस्तक 'असबाबे बगावत-ए-हिन्द' में इस सामाजिक विषमता को ही विद्रोह का कारण बताया।

लेकिन धीरे-धीरे भारत मे लोक सेवा की स्थिति बदलने लगी। सुधारों की श्रृंखला आरंभ हुई। 1917 में प्रस्तुत प्रतिवेदन में लार्ड इस्लिंग्टन की अध्यक्षता में नियुक्त आयोग की सिफारिशों में एक चौथाई पद भारतीयों के लिए सुरक्षित रखने की बात कही गई। इसी बीच उच्च पदों पर भारतीयकरण की मांग की जाने लगी। उच्च पदों पर

भारतीय नियुक्त होने लगे लेकिन उनकी प्रवृत्ति भी वही रही जो अंग्रेज अधिकारियों की थी। उनका व्यवहार अपने यताहत भारतीयों के साथ वैसा ही था जैसा अंग्रेज अधिकारियों का था। अन्तर केवल यह था, जहाँ अंग्रेज अधिकारी कुलीन वर्ग के थे, वहाँ भारतीय अधिकारी सामन्ती परिवारों से थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, नये परिवार संविधान के तहत संधीय आयोग की स्थापना की गई। भारतीय सिविल सेवा ( के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा ने स्थान ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त भारतयी विदेश सेवा का गठन किया गया। पुनः सुधारों की श्रृंखला आरंभ हुई, जो ए0डी0 गोरवाला और एपल्पी (1953 से 1956 तक) की सिफारिशों का नतीजा थीं। अब भारत में तीन अखिल भारतीय सेवायें आरंभ हुई-अखिल भारतीय सेवायें, केन्द्रीय सेवायें तथा राज्य सेवाऐं।

1952 तक भारत में सामन्ती व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अतः अब लोक सेवाओं में जो प्रत्याशी चयनित होकर आने लगे वे अधिकांशतः मध्यमवर्गीय थे। मध्य वर्ग की अपनी संस्कृति और अपनी मानसिकता होती है, जिस से भारतीय लोक सेवा प्रभावित होने लगी। अतः इसी लोक सेवा ने जब नौकरशाही का रूप धारण कियार, तो स्थिति और भयावह हो गयी। वे सारी बुराईयाँ जिन से भारतीय समाज ग्रस्त है, नौकरशाही में व्यक्त होने लगी- जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, संवेदनविहीनता, अलगाववाद, राजनीति तटस्थता के स्थान पर राजनीतिक वफादारी, उदासीनता और अकर्मठता। संक्षेप में भारतीय लोक सेवकों ने वह स्थिति प्राप्त कर ली है, जिसकी ओर ऐन्थानी डाउन्स ने इशारा किया अर्थात आय और शक्ति की प्राप्ति, प्रतिष्ठा की चिन्ता, स्वयं को सुरक्षित रखने की भावना, सुविधाओं की ओर झुकाव। इस तरह समाज सेवा या राष्ट्र सेवा गौड़ हो जाती है।

## 5.12 नौकरशाही बनाम लोकसेवा के सकारात्मक पहलू

भारतीय नौकरशाही का नकारात्मक पहलू तस्वीर का एक रूख है। वह निराशाजनक आवश्यक है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आधुनिक नौकरशाही एक अनुपयोगी संस्था बन गई। आधुनिक नौकरशाही लोकसेवा के रूप में विकास के लिये अपरिहार्य है। इसके अभाव में राज्य या समाज लड़खड़ाकर गिर जायेगा। आज लोक प्रशासन विकास प्रशासन बन गया है। विकास प्रशासन की अवधारणा की उत्पत्ति और विकास प्रजातांत्रिक राजनीति, आर्थिक विकास का दबाव, व्यस्क मताधिकार, सार्वभौम शिक्षा, कल्याणकारी कार्यक्रम और ग्रामीण विकास से सम्बन्धित समाज का अधुनिकीकरण, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति का नजरिया, प्रशासन की विषम और जटिल प्रकृति एवं राजनीतिक संगठन, संवैधानिक तकाजे, शहरी एवं ग्रामीण जन-परिस्थितियों से निपटने के लिये प्रभावशाली प्रबन्धन तथा प्रपंच की राजनीति के वातावरण में प्रशासनिक-राजनीतिक द्विविभक्तिकरण-यह वे सारी चुनौतियाँ हैं, जिनका नौकरशाही को साझा करना पड़ता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि लोक सेवा किसी न किसी हद तक इने चुनौतियों का सामना करने में सफल रही है।

आज प्रशासन विकास से जुड़ा हुआ है। विकास समाज के गतिशील परिवर्तन और एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर अग्रसर होने का दूसरी नाम है। विकास का अर्थ केवल आर्थिक विकास से नहीं है। विकास प्रशासन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों को कार्यान्वित करने की विधि से है। दूसरे, यदि प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि होती  है तो यह भी विकास है। विकास प्रशासन को नियोजित परिवर्तन माना जा सकता है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन का सम्बन्ध योजना, नीति, कार्याक्रम तथा परियोजन (Project) से है। विकास प्रशासन का रूप बहुआयामी है। इसका कार्यक्षेत्र विशाल है। इसमें शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, सिंचाई, परिवहन, सामाजिक न्याय सब कुछ आता है। यह किसी भी राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास से जुड़ा हुआ है। संक्षेप में नौकरशाही या लोक सेवा विकास प्रशासन का माध्यम है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. सेवी वर्ग को किस विचारक ने ''मानव शक्ति'' कहा?
   क. विलियम राइकर ने ख. डेविड ईस्टन ने
   ग. एल0डी0 व्हाइट ने घ. मैसलो ने
2. विधिक-तार्किक नौकरशाही का विचार किसने प्रतिपादित किया?
   क. फ्रेड रिग्स ने ख. मैक्स वेबर ने
   ग. हबर्ट साइमन ने घ. कार्ल मार्क्स ने
3. इंग्लैण्ड के पहला लोक सेवा आयोग किस प्रशासक की सिफारिशों का परिणाम था?
   क. चार्ल्स ट्रेवेलियन ख. सर स्टेफर्ड
   ग. ट्रेवेलियन नार्थकोट घ. पीटर ड्रकर
4. भारत में भारतीय नागरिक सेवा के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा का नाम किसने दिया?
   क. जवाहरलाल नेहरू ने ख. एप्लवी ने
   ग. मौलाना आजाद ने घ. सरदार बल्लभ भाई पटेल ने
5. व्हिटले कमेटी का सम्बन्ध किस देश से है?
   क. अमरीका से ख. जर्मनी से
   ग. भारत से घ. इंग्लैण्ड से
6. शब्द 'नौकरशाही' का प्रयोग किसने किया?
   क. डी0 गोरने ने ख. मैक्स वेबर ने
   ग. एन्थानी डाउंस ने घ. पार्सन्स ने

## 5.13 सारांश

- लोक सेवा वास्तव में प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने शुद्ध रूप से यह एक सेवा है, लेकिन अपने विकृत रूप में यह नौकरशाही बन जाती है।
- प्रशासन के तीन अंग हैं- संगठन या प्रशासनिक संरचना; संगठन में कार्यरत् कर्मी जिनमें ऊँचे पद पर आसीन लोगों को अधिकारी या सेवी वर्ग कहा जाता है, तथा नीतियाँ, नियम तथा विनियम जिनके तहत सेवी वर्ग प्रशासन का संचालन करता है।
- लोक सेवा विकास का परिणाम है। वैसे तो अपने आधुनिक रूप में यह इंग्लैण्ड की देन है लेकिन भारत में इसकी जड़े प्राचीन भारत, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल तक फैली हुई है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन काल समाप्त होने के बाद भारत में लोक सेवा पूरी तरह विकसित हो गयी। विकास की यह प्रक्रिया आज तक चल रही है।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में लोक सेवा चहुमुखी विकास की शर्त बन गई। सेवी वर्ग का कुशल, प्रशिक्षित तथा विशिष्टीकरण, पक्षपात रहित सेवी वर्ग का चयन तथा राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ और संवेदनशीलता यह सेवी वर्ग के गुण हैं।
- लोक सेवा को नौकरशाही का नाम दिया गया है। जब परहित के स्थान पर आत्म हित हावी होता है तो लोक सेवा नौकरशाही बन जाती है। यह एक बदनाम शब्द है, जिसको जन विरोधी मानसिकता का नाम दिया गया है।

- मैक्स वेबर ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में लिया है और नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया है जो उसके विधिक-तार्किक सिद्धानत पर आधारित है। वह नौकरशाही को आधुनिक राज्य के लिए अपरिहार्य मानता है। अधिकांश देशों ने वेबर के मॉडल को स्वीकार किया है। इस मॉडल की जो विशेषताएं उसने बताई हैं, उनमें-शासकीय कार्य की निरन्तरता; प्रशासनिक अभिकरण का अस्तित्व, लिखित नियम; पदसोपनियता, निर्वैयक्तीकरण; लिखित दस्तावेज इत्यादि।
- लोक सेवा कल्याण राज्य का अभिन्न अंग है। इसका लक्ष्य जनतंत्रीय समाज में संवैधानिक तकाजों को पूरा करना है; साथ ही जन-कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों को पूरा करना है और आकस्मिक आपदाओं और संकट कालीन परिस्थितियों में जन समाज को सुरक्षा प्रदान करना है।
- लोक सेवा और नौकरशाही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों में बहुत सी समानतायें हैं लेकिन अन्तर के केवल मनोवैज्ञानिक है।
- नौकरशाही की मानसिकता भारत को इंग्लैण्ड से विरासत में मिली है। अन्तर यह है कि पहले यह कुलीन और सामन्ती थी, लेकिन अब मध्यवर्गीय है जो समाज की सभी असामाजिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती है। इस दृष्टि से यह अधिक कष्टदायक है।
- भारतीय लोक सेवा पर इंग्लैण्ड में होने वाले सुधारों का गहरा प्रभाव पड़ा है, व्हिटले कमेटी, राल्फ एशटन कमेटी और फुल्टन कमेटी की सिफारिशों को भारतीय लोक सेवा ने भी स्वीकार किया। इन सुधारों का सारांश लोक सेवा की भर्ती, प्रशिक्षण तथा सेवा शर्तों से भी है और लोक सेवा की संरचना, संगठन और कार्य विधि से भी। इन सुधारों ने लोक सेवा की प्रकृति को तय किया है।
- लोक सेवा की प्रकृति के नौ प्रमुख लक्षण हैं: विकास का परिणाम; अनेक वर्गों में विभाजित; ब्रिटिश लोक सेवी ताज के सेवक; न्यायालय नियंत्रण क्षेत्र से बाहर; नियमनों के अनुसान काम, सुरक्षा की गारन्टी; राजनीतिक तटस्थता; नौकरशाही की सुरक्षा की अनुकूल शर्तें; कल्याणकारी प्रवृत्ति तथा सेवी वर्ग में निरन्तर वृद्धि।
- एन्थॉनी डाउन्स ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में लिया है। वह इस संस्था को ब्योरो कहता है और नौकरशाहों को अधिकारी कहना पसन्द करता है। आफीशियल की विशेषता है, परहित के साथ-साथ आत्महित।
- लोक सेवा का सम्बन्ध विकास से है। विकास का बड़ा व्यापक अर्थ है, इसलिये प्रशासन को आज विकास के संदर्भ में देखा जाता है।

## 5.14 शब्दावली

ब्योरियॉक्रेसी- यह एक फ्रांसीसी शब्द है, जिसका सर्व प्रथम प्रयोग 18वीं सदी के अर्द्ध में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने ने किया था। तत्पश्चात 19वीं सदी में इस शब्द का प्रयोग जे0एस0 मिल, मोस्का और मिशेल ने, जबकि मैक्स वेबर ने इसी समय में इस शब्द का प्रयोग किया। ब्योरियॉक्रेसी का अर्थ कार्यालय या सरकारी कार्यालय से लिया जाता है। ब्योरों का अर्थ है विभाग।

प्रशासनिक विकास- इसका अर्थ मात्र आर्थिक या सामाजिक विकास से नहीं है। इसका अर्थ मानसिक स्थिति से है। एक स्थिति से दूसरी अधिक व्यापक स्थिति की ओर अग्रसर होना विकास है। यह भौतिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी। यह सम्पूर्ण परिवर्तन की शर्त है।

विधिक-तार्किक प्रतिमान- मैक्स वेबर ने नौकरशाही का यह मॉडल तैयार करके लोक सेवा के क्षेत्र में एक क्रान्ति का काम किया है।

निर्वैयक्तिक- जहाँ व्यक्ति या अधिकारी एक उपकरण या मशीन के रूप में काम करें, जिस की अपनी कोई इच्छा या हित न हो। जो केवल संरचना या नियमों के अनुसार काम करें, जिसमें उसका अपना व्यक्तित्व शामिल न हो।

## 5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** ग, **2.** ख, **3.** ग, **4.** घ, **5.** घ, **6.** क

## 5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन।
2. डी0 रविन्द्र प्रसाद, वी एस प्रसादः प्रशासनिक चिन्तक।
3. अवस्थी अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
4. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
5. Dwight Waldo : The Study of Public Administration.
6. Fred W. Riggo : Administration in Developing Countries.


## 5.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. D. Ravinddra Prasad : Administrative Thinkers.
2. Albrow, Martin : Bureaucracy, London, 1970.
3. Arora, Ramesh : Administrative Theory, New Delhi, 1984.
4. Blau, Peter : Bureaucracy in Modern Society, New York, 1962.


## 5.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा का अर्थ समझाइये तथा लोक सेवा और नौकरशाही के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये
2. आधुनिक नौकरशाही की क्या विशेषताएं हैं? भारतीय संदर्भ में नौकरशाही और लोक सेवा के सम्बन्धों को समझाइये।
3. विकास प्रशासन का क्या अर्थ है? क्या लोक सेवा विकास प्रशासन है?

# इकाई- 6 नौकरशाही के आधार

## इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 नौकरशाही: एक विवेचना
6.3 मैक्स वेबर और नौकरशाही
6.4 वैबेरियन नौकरशाही के आधार
6.5 नौकरशाही के आधार पर मार्क्स का विशलेषण
6.6 नौकरशाही, राज्य और हीगेल
6.7 ऐन्थॉनी डाउन्स और नौकरशाही
6.8 पर्यावरर्णीय सिद्धांत और नौकरशाही
6.9 नौकरशाही के आधार का व्यवहारिक पहलू
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

## 6.0 प्रस्तावना

इस इकाई में नौकरशाही के आधारों का विश्लेषण किया गया है। वास्तव में सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने नौकरशाही के अभिलक्षण और उसके सिद्धान्तों पर बहस की है। इन्हीं विशेषताओं को नौकरशाही के आधार कहा जा सकता है। ये आधार सार्वभौमिक हैं और स्थायी हैं। नौकरशाही का सबसे बड़ा सिद्धान्तकार मैक्स वेबर है। सभी अन्य चिन्ताकें ने उसका अनुसरण किया है। वेबर का नौकरशाही का मॉडल विधिक-तार्किक नाम से जाना जाता है। ''वैधानिकता'' और ''तार्किकता'' यही दो ऐसी अवधारणायें हैं जो नौकरशाही को आधार मोहय्या करती हैं।

नौकरशाही का दूसरा चिन्तक कार्ल मार्क्स है जो नौकरशाही के नाकारात्मक रूप को दर्शाता है। उसकी नजर में नौकरशाही का आधार आर्थिक अथवा भौतिक व्यवस्था है, जिसको वह पूंजीवादी और सामन्तीवादी कहता है। इस व्यवस्था के संरक्षक ही नौकरशाही के आधार हैं। नौकरशाही परजीवी है और उसका काम पूजीवादी वर्ग की यथास्थिति को बनाये रखना है।

हीगेल ने नौकरशाही का आधार राज्य को माना है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व की सबसे महान अभिव्यक्ति है। ऐन्थानी डाउन्स ने ब्योरोज को नौकरशाही का अधार माना है। दूसरी ओर रिग्स ने पर्यावरणीय परिवेश को नौकरशाही का निर्णायक आधार माना है।

## 6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके के उपरान्त आप-

- नौकरशाही के चरित्र, स्वरूप, अभिलक्षणों का समझ सकेंगे।

- मैक्स वेबर की विधिक-तार्किक नौकरशाही को जान पायेंगे।
- वेबर के अनुसार वैघानिकता और तार्किकता ही नौकरशाही के वास्तविक आधार हैं, ये समझ पायेंगे।
- मार्क्स द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की नकारात्मक भूमिका को जान पायेंगे और समझ पायेंगे कि राज्य का अस्तित्व किस तरह नौकरशाही के लिए अनिवार्य है।
- ऐन्थानी डाउन्स की नजर में नौकरशाही ब्योरेज पर टिकी हुई है। ब्योरोज की विशेषता क्या है, ये समझ पायेंगे।
- रिग्स किस तरह परिवेश को नौकरशाही का आधार मानता है, यह जान पायेंगे।

## 6.2 नौकरशाही: एक विवेचना

सेवी वर्ग अथवा लोकसेवकों ने एक संस्था का रूप ले लिया है, जिसे लोक प्रशासन में नौकरशाही का नाम दिया गया है। अभी तक नौकरशाही या ब्योकरियॅाक्रेसी की कोई निश्चित सर्वमान्य परिभाषा सामने नहीं आई है। केवल उसके अभिलक्षणों, स्वरूपों के आधार पर नौकरशाही को पहचाना जा सकता है। अपनी, एक विशिष्ट मानसिकता और व्यवहार के कारण नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन गया है। लेकिन मैक्स वेबर ने नौकरशाही का पक्ष लेते हुये, उसे प्रशासनिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य अंग बनाकर उसको एक वैज्ञानिक शास्त्र बनाने का प्रयास किया है। जिस गहनता के साथ वेबर ने नौकरशाही का अध्ययन करके उसका एक प्रतिमान तैयार किया है, उस कारण वेबर और नौकरशाही एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं।

नौकरशाही की अवधारणा की जन्म स्थली जर्मनी है। इसका नामकरण फ्रांस में हुआ है। इंग्लैण्ड में इसका पालन पोषण हुआ है और अब संसार के कोने-कोने में यह फल-फूल रही है। आज यह आधुनिक प्रशासनिक संस्कृति का एक अविभाज्य अंग बन चुकी है।

नौकरशाही एक प्रशासनिक संरचना भी है, एक नीति-निर्माण अथवा निर्णय-निर्माण के कार्यान्वयन का एक माध्यम भी है और एक मानसिकता भी फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने से लेकर जे0एस0 मिल, मोसनका और मिशेल जैसे राजनीतिक दार्शनिकों ने नौकरशाही को अपने चिन्तन का विषय बनाया। यहाँ तक कि यह राजनीतिक चिन्तन की परिधि से निकल कर समाजशास्त्र के दायरे में आ गयी। आज यह लोक प्रशासन का विषय है तो केवल इसलिए कि बिना नौकरशाही के प्रशासन एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

मैक्स वेबर, मार्क्स, हीगेल और एन्थॉनी डाउंस ऐसे चार चिन्तक हैं, जिन्होंने अपने-अपने नजरिये से नौकरशाही के अभिलक्षणों और आधारों पर प्रकाश डाला है। यहाँ चारों के दृष्टिकोणों को समझने का प्रयास किया जायेगा।

## 6.3 मैक्स वेबर और नौकरशाही

मैक्स वेबर ने कहीं भी नौकरशाही को परिभाषित नहीं किया है और न ही उसके आधारों पर बहस की है। उसने केवल नौकरशाही के अभिलक्षक बताऐं हैं और लक्षणों के आधार पर उसने नौकरशाही के रूप को प्रस्तुत किया है।

यहाँ हम वेबर द्वारा प्रस्तुत विधिक-तार्किक नौकरशाही के अभिलक्षणों की संक्षिप्त चर्चा करके यह बताने का प्रयास करेंगे कि नौकरशाही की विशेषतायें ही वास्तव में नौकरशाही के आधार हैं, जिनकी अनुपस्थिति में नौकरशाही का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

सर्वप्रथम यह याद रखना है कि वेबर ने 'सत्ता' पर बहुत अधिक बल दिया है, और सत्ता की रौशनी में उसने दो प्रकार की नौकरशाही की पहचान की है- वंशानुगत नौकरशाही जो परम्परागत और करिश्माई सत्ताओं की विशेषता है; और विधिक-तार्किक नौकरशाही जो केवल कानून के दायरे में पाई जाती है तथा जिसके औचित्य के

पीछे तार्किकता अथवा विवेक होता है। वेबर की नौकरशाही की अवधारणा का यही विधिक-तार्किक पहलू है, और वह इसी सिद्धान्त को आदर्श नौकरशाही के मॉडल का आधार मानता है। मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही का मॉडल वास्तव में प्रशासन और लोक सेवा के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति है, जिसके पक्ष एवं विरोध में बहुत कुछ लिखा जाता रहा है, लेकिन उसका यह सिद्धान्त अकाट्य है।

वैबर ने नौकरशाही के आधारों की व्याख्या से पहले कुछ तार्किक परिकल्पनाओं का सहारा लिया है। वह सर्वप्रथम इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि किसी भी प्रकार की 'सत्ता' के पीछे मौलिक रूप से 'वैधता' होती है। उसका विश्वास है कि सत्ता की वैधता पांच महत्वपूर्ण विश्वासों (Beliefs) पर आधारित है-

1. प्रशासन में एक कानूनी नियम का अस्तित्व होता है जिसके माध्यम से संगठन के सदस्यों से आदेशों का पालन कराया जा सके।
2. कानून नियमों की भावनात्मक अथवा निराकार व्यवस्था का नाम है, जो विशिष्ट मामलों पर लागू होता है तथा संगठन का हित देखता है।
3. वह व्यकित जो सत्ता का प्रयोग करता है (अधिकारी) वह भी इस निर्वैयक्तिक आदेश का पालन करता है।
4. केवल एक सदस्य ही सदस्य की हैसियत से कानून का पालन करता है (एक संगठन के अन्दर)।
5. आदेश का पालन सत्ताधारी व्यक्ति का नहीं होता है, बल्कि उस निर्वैयक्तिक व्यवस्था का होता है जो उस व्यक्ति को पद प्रदान करती है।

उक्त पाचों विश्वासों का सारांश यह है कि कानून सर्वोपरि है। कानून निर्वैयक्तिक है। सत्ता का आधार कानून है। जिस व्यक्ति को यह प्राप्त होता है, वह सत्ताधारी है, लेकिन आदेश के पालन का अर्थ है निर्वैयक्तिक व्यवस्था का पालन। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था तथा वैधता में गहरा सम्बंध है। यह सम्बंध ही नौकरशाही का सब से मजबूत आधार है।

नौकरशाही क्यों अस्तित्व में आई, इसका कारण बताते हुये वैबर ने लिखा- ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारणों ने सर्वप्रथम नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया आरंभ की, कानून के शासन ने नौकरशाही का संगठनात्मक ढाँचा तैयार किया, अधिकारियों की विशिष्ट योग्यता, उनकी पेशेवराना महारत तथा उनके विशिष्ट आचरण तथा सोच ने उनको एक अभिजात वर्ग का दर्जा दे दिया तथा आधुनिक संसार में नौकरशाही की महत्वपूर्ण भूमिका है, विशेष रूप से सरकारी संस्थाओं में स्वयं नौकरशाही ने शासकीय रूप ले लिया।

इस तरह संक्षेप में नौकरशाही के चार आधारों की ओर वेबर ने इशारा किया कि तकनीकी और प्रशासनिक प्रगति: कानून के शासन का अस्तित्व: अधिकारियों की विशिष्ट प्रशासनिक पहचान: तथा (घ) सरकारी संस्थाओं का फैलाव।

## 6.4 वैबेरियन नौकरशाही के आधार

मैक्स वेबर ने नौकरशाही से सम्बंधित, अपना मान्यताओं परिकल्पनाओं तथा विश्वासों के आधार पर विधिक तार्किक नौकरशाही का जो एक आदर्श प्रतिमान तैयार किया, वह छः विशेषताओं पर टिका हुआ है, जिनको नौकरशाही का आधार कहा जा सकता है। यह विशेषताऐं या आधार हैं- (1) निर्वैयक्तिक व्यवस्था (2) नियम (3) सामर्थ्य का क्षेत्र (4) पदानुक्रम (5) व्यक्तिक तथा लोक ध्येय: तथा (6) लिखित दस्तावेज। इन्हीं बिन्दुओं पर आगे चलकर विस्तार से चर्चा की जाएगी-

1. **निर्वैयक्तिक व्यवस्था-** निर्वैयक्तिक व्यवस्था वैबर की नौकरशाही की सब से अधिक महत्वपूर्ण विशेषता हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रशासनिक सत्ता या शक्ति का केन्द्र वह वह पद या विभाग है यहाँ अधिकारी पदासीन है, न कि कोई विशेष व्यक्ति।

2. **नियम-** किसी भी प्रशासनिक इकाई में नियम सर्वोपरि है, जिनके तहत संगठन की संरचना तथा सत्ता का आकार या प्रयोग तैय होता हैं। यही तार्किकता है और यही विधिक तार्किक सिद्धांत का सार है। मर्टन ने बेवर के इस विचार की सराहना की है लेकिन वह यह भी मानता कि प्रशासक का नियमों से चिपके रहना विलम्ब को जन्म देता है जो प्रशासन के लिये घातक है।
3. **सामर्थ्य का क्षेत्र-** इसका अर्थ है कि प्रत्येक अधिकारी को उसकी क्षमता अथवा सामर्थ्य के अनुसार वह कार्य सौंपा जाता है, जो श्रम विभाजन के क्रमवद्ध व्यवस्था के अनुसार होता हैं। दूसरे, अधिकारी को दिये गये कार्यो को करने की सत्ता भी सौंपी जाती है, तीसरे अधिकारियों को कार्यो को सम्पन्न करने के लिये परिभाषित साधन भी मोहय्या कराये जाते हैं। इस तरह अधिकार अपनी क्षमता का सद्पयोग कर सकता हैं।
4. **पदसोपान अथवा पदानुक्रम-** पदानुक्रम का अर्थ यह है कि प्रत्येक कार्यालय का संगठन पदानुक्रम सिद्धांत का पालन करता है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक अवर या निचला कार्यालय उच्चतर के नियंत्रण तथा निरीक्षण के अधीन रहता है। इसका अर्थ यह भी है कि सर्वोच्च सत्ता के अधीन पूर्ण प्रशासनिक स्टाफ निश्चित पदानुक्रम के अनुसार काम करता है।
5. **व्यक्तिक तथा लोक ध्येय-** इसका अर्थ है कि अधिकारी के व्यक्तिक हित और जन हित प्रशासनिक दृष्टि से पूरी तरह प्रथक हैं। प्रशासनिक अधिकारी उत्पादन के साधनों के स्वामी नहीं है और न ही प्रशासन उनके अपने हित की पूर्ति के लिए है। यह नियम नौकरशाहों पर पाबन्दियाँ लगाकर पद या स्थिति के दुरूपयोग को रोकता है।
6. **लिखित दस्तावेज-** वेबेरियन नौकरशाही की अन्तिम विशेषता यह है कि सभी प्रशासनिक कृत्यों, निर्णयों, तथा नियमों को लिखित रूप में तैयार किया जाता है और इनका लिखित रूप में रिकार्ड रखा जाता है। यहाँ तक कि मौखिक बातचीत को भी लेख बद्ध किया जाता है। यह दस्तावेज प्रशासन को जवाबदेह बनाता है और भविष्य की कार्यवाही के संदर्भ का काम करता है।

वेबेरियन मॉडल की कुछ और विशेषताऐं भी हैं, जैसे- तकनीकी तौर पर योग्य और अर्हता प्राप्त लोगों का चयन, उनको निश्चित वेतन मिलना, पूर्ण कालिक पेशा, पदोन्नति के अवसर, कठोर अनुशासन तथा नियंत्रण। अन्तिम विशेषता नौकरशाही प्रशासन का एकतंत्रीय होना है। प्रशासन तकनीकी दृष्टि से सर्वोत्तम क्षमताओं का परिचय देती है।

## 6.5 नौकरशाही के आधार पर मार्क्स का विश्लेषण

मार्क्स नौकरशाही का सिद्धान्तकार नहीं था, लेकिन उसने नौकरशाही का जिस नजरिए से विश्लेषण किया वह साम्यवादी सोच का नतीजा है उसके अनुसार नौकरशाही की उत्पत्ति के चार स्रोत हैं - धर्म, राज्य का अस्तित्व वाणिज्य तथा यांत्रिकी अथवा टेकनॉलोजी।

1. अपने प्रारम्भिक काल में धर्म शास्त्रियों (पण्डित, पादरी) का धार्मिक परम्पराओं को निभाने के लिए महत्वपूर्ण अधिकार ग्रहण करना और तत्पश्चात् प्रशासकों या नौकरशाहों का दर्जा प्राप्त कर लेना। धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त नीति-निर्माण, निर्णय तथा विधि निर्माण के अधिकार प्राप्त करना, यहाँ तक कि धर्म के दायरे से निकलकर सामाजिक वर्गों में विभाजित होना और अन्तः शासकों, प्रशासकों या नौकरशाहों का दर्जा प्राप्त कर लेना।
2. सामाजिक वर्गों के आन्तरिक द्वन्द ने राज्य को जन्म दिया। प्रशासकों के माध्यम से कानूनों का निर्माण और उनका कार्यान्वयन आरम्भ हुआ। इन्हीं के माध्यम से कराधान की व्यवस्था हुई और अन्ततः अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण इनको नौकरशाह कहलाया जाने लगा।

3. राज्य के विकास ने आर्थिक अथवा वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ाई। वित्त प्रबन्धन के सारे दायित्व प्रशासकों को सौंपे गयें। वाणिज्यिकी प्रशासन-प्रबन्धन ने नौकरशाहों को राज्य के लिए अपरिहार्य बना दिया।
4. तकनीकी और यांत्रिकी विकास ने आर्थिक औद्योगिक विकास के नये दरवाजे खोल दिये। पूंजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आ गई। यहां वर्ग-टकराव और तेज हो गया नौकरशाही की भूमिका भी बदल गई अब नौकरशाहों का पूंजीपतियों, सामन्तियों और शासकों के हितों की रक्षा करना परम् का धर्म हो गया। यहाँ तक कि यांत्रिकी और नौकरशाही का एक नया सम्बंध सामने आ गया, जिसे ब्योरियों क्रेसी के साथ-साथ टेक्नॉक्रेसी या शिल्पतिज्ञ कहा गया।

मार्क्स बनाम नौकरशाही के संदर्भ में यह याद रखना है कि नौकरशाही, राज्य और आर्थिक अथवा भौतिक परिवेश का आपस में गहरा सम्बन्ध है। आर्थिक व्यवस्था ने राज्य के स्वरूप, चरित्र और लक्ष्य को निश्चित किया है। राज्य के हितों की रक्षा के लिए नौकरशाही एक उपकरण के रूप में काम करती है।

यहाँ सरलता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मार्क्सवादी नजरिए से नौकरशाही का पहला और अन्तिम आधार राज्य है। जब तक राज्य का अस्तित्व है तब तक नौकरशाही का भी अस्तित्व हैं मार्क्स ने राज्य के विलुप्तीकरण के सिद्धांत से इसी सत्य की ओर इशारा किया है। उसके अनुसार समाजवादी या साम्यवादी व्यवस्था में राज्य विलुप्त हो जायेगा, तब नौकरशाही भी अर्थहीन हो जाऐगी।

नौकरशाही किस तरह राज्य अथवा उतपादन के स्वामियों की रक्षा करती है, इस बात को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने लिखा- नौकरशाही का चरित्र ही ध्वनकारी है। वह पूंजीपतियों, सामन्तियों तथा सत्ता धारियों के हितों की रक्षा के लिए समाज के कमजोर तबकों का दमन करती है। नौकरशाही अपनी नियंत्रकीय शक्ति के माध्यम से सत्ताधारी वर्ग के हितों को आगे बढ़ाती है। उसकी प्रकृति रहस्मयी है। वह अपनी इस विशेषता से सत्ताधारियों की वास्तविकताओं को गोपनीय और रहस्यमय बनाए रखती है। और समाज और सत्ताधारियों के मध्यम अलगाव को गहरा करती है, तथा सत्ताधारियों की रक्षा करके, कमजोर तबकों को कुचल कर और व्यवस्था की यथास्थिति को बनाए रखकर, नौकरशाही स्वयं अपने अस्तित्व को बनाए रखती है, क्योंकि मार्क्स के अनुसार नौकरशाही परजीवी है।

## 6.6 नौकरशाही, राज्य और हीगेल

मार्क्स के समान हीगेल ने भी नौकरशाही का आधार राज्य को ही माना है, लेकिन जहाँ राज्य एवं नौकरशाही के बारे में मार्क्स का नजरिया नकारात्मक है, वही हीगेल दोनों संस्थाओं को सकारात्मक रूप मे लेता है।

हीगेल के अनुसार नौकरशाही राज्य का एक मुख्य शासी निकाय है। राज्य सामाजिक व्यवस्था का अन्तिम विकास है तथा मनुष्य की आत्म अभिव्यक्ति का सर्वोच्च अन्तिम चरण है। जब राज्य अस्तित्व में आ जाता है तब स्वतः जन क्रियाऐं आरंभ होती हैं। इस परिवेश में शासक नौकरशाह तथा नारियों के स्वामी राजनीतिक अनिकताओं की भूमिका अदा करते हैं।

हीगेल के अनुसार राज्य तथा लोक समाज में अन्तर है। लोक समाज विशेष वर्गो का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन राज्य जनहित की अभिव्यक्ति है। नौकरशाही दोनों निकायों को जोड़ने का काम करती है। अतः हीगेल की नजर में भी नौकरशाही का आधार राज्य ही है, लेकिन उसकी भूमिका सकारात्मक और रचनात्मक है। राज्य की प्रकृति में सार्वभौमिकता है। इसलिए नौकरशाही भी सार्वभौमिक हैः यह सामान्य हितों की रक्षा करती है और समाज की प्रत्येक बात को कानून की कसौटी से देखती है।

हीगेल नौकरशाही के तीन आधार मानता है- (क) नौकरशाही निश्चित परिभाषित पदानुक्रम पर आधारित सम्बंधो की एक व्यवस्था है, जिस में विशिष्टीकरण के साथ पद सत्ता भी है (ख) नौकरशाही का आधार समाज का मध्य

वर्ग है। वे मध्य वर्ग से आकार वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था का अंग बन जाते है (ग) इस समावेश के बाद नव नियुक्त अधिकारी एक विनियागक यांत्रिकी के अनुसार काम करते हैं, जिसका अर्थ है आन्तरिक व बाहरी दबावों के अनुसार काम करना। यह दबाव युवा नौकरशाहों के आचरण और स्वभाव को निश्चित करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मार्क्स और हीगेल दोनों ही राज्य को नौकरशाही का आधार मानते हैं। मार्क्स राज्य को दमनकारी मानता है और नौकरशाही को इस दमन का एक उपकरण (apparatus)। लेकिन हीगेल राज्य को ईश्वर की एक प्रतिछाया मानता है, जिसका लक्ष्य मनुष्य का नैतिक और भौतिक उत्थान है और नौकरशाही इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक सहयोगी की भूमिका अदा करती है।

## 6.7 ऐन्थॉनी डाउन्स और नौकरशाही

ऐन्थॉनी डाउन्स ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'इनसाइड ब्योकरियॅाकरेसी' (Inside Bureaucracy) में नौकरशाही का विश्लेषण किया हे। उसने यह स्वीकार किया है कि नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन चुका है, जबकि सच यह है कि नौकरशाही का उद्भव ब्योरोज (Bureause) से हुआ है जो आज सम्पूर्ण सभ्य समाज की प्रशासनिक व्यवस्था पर छाया हुआ है।

विवादों से बचने के लिए उसने नौकरशाही के स्थान पर आधिकारीतंत्र तथा नौकरशाहों के स्थान पर 'अधिकारी' (officials) कहना पसंद किया है।

डाउन्स के अनुसार 'ब्योरोज' नौकरशाही या अधिकारीतंत्र का पहला आधार है। उसने ब्योरोज का विशद् विश्लेषण किया है -

1. ब्योरोज का अर्थ है सरकारी कार्यालय, जिनका रूप भले ही विभागीय हो, सम्भागीय अथवा आयोगीय हो।
2. ब्योरोज अधिकारियों के समूह हैं जिनका प्रायः आकार बड़ा होता है, जो स्वतः अपना बड़ा आकार ग्रहण करते रहते हैं।
3. ब्योरोज संगठन का एक विशिष्ट रूप है जिनमें वे सारी विशेषताऐं होती है जिनसे एक संगठन पहचाना जाता है।
4. ब्योरोज की विशेषता उनकी सार्वभौमिकता है। समाज के प्रत्येक पहलू- आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक पहलुओं पर उनकी गहरी छाप है। वे इन क्षेत्रों में निति-निर्माण का कार्य करते हैं।

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज का आधार 'संगठन' है। लोक प्रशासन में संगठन मात्र एक ढांचा या संरचना नहीं है। संगठन एक स्पष्ट परिभाषित इकाई हे जो निश्चित सिद्धांतों पर टिका होता है। अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने इस पर विस्तार से लिखा है, जिनमे मार्च, साइमन, बलाओं और स्कॅाट ने संगठन की औपचारिकता को मुख्य रूप से दर्शाया है। लेकिन डाउन्स वह पहला चिन्तक है, जिसने ब्योरोज और संगठन में गहरा सम्बंध स्थापित किया है। उसके अनुसार ब्योरोज का पूर्ण व्यवहार संगठन निश्चित करता है।

कर्मचारी किसी भी संगठन की आत्मा है। इस मानवीय पहलू के बिना ब्योरोज या संगठन पर चर्चा करना अर्थहीन है। ऐन्थानी कर्मचारीगण (च्मतेवदमसस) को अधिकारी अथवा 'आफिशियल्ज' कहता है। इनमें और नौकरशाहों में कोई अन्तर नहीं है। इन अधिकारियों की अनेक विशेषताऐं हैः (1)ये अधिकारी सर्वोपरि 'आत्मनहित से प्रेरित होते हैं, यद्यपि जन हित भी इनका ध्येय होता है। (2) अधिकारी एवं कर्मचारी पूर्ण कालिक आधार पर काम करते है; (3) संगठन के भीतर ही उनकी पदोन्नति होती है; (4) वे अपने से उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करते है (5) नौकरशाह एक बड़े आकार के ब्योरो का सदस्य होता है (6) नौकरशाह किस महारत से अपने कर्त्तव्य को अन्जाम देता है, यह पदोन्नति का मापदण्ड होता है, तथा (7) नौकरशाह का ध्येय, शक्ति प्राप्त करना, अपनी

आय बढ़ाना, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना, अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना, सुख सुविधाऐं प्राप्त करना और अपने कार्य पर गर्व करना विशेष महत्व रखता है।

डाउन्स की नजर में नौकरशाही का चौथा आधार पर्यावरण है। यहाँ पर्यावरण का अर्थ है वह स्थिति जिस में अधिकारी काम करते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अधिकारी परिस्थितियों के अनुसार काम करते हैं। पर्यावरण अधिकारियों का वास्तविक संसार होता है। वे इस संसार को बदलते नहीं है, बल्कि उसके अनुसार स्वयं को बदलते हैं। उनको इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि राजनीतिक व्यवस्था का क्या रूप हैं- वे लोकतंत्र में, राजतंत्र में, कुलीन तंत्र में और अधिनायक तंत्र में स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेते हैं- समाजवाद में वे समाजवादी, पूंजीवाद में वे पूंजीवादी, और साम्यवाद में वे साम्यवादी नजर आते हैं। धर्म निरपेक्षता में वे धर्म निरपेक्ष, और धर्मपरकता में वे धर्मान्धी भी बन सकते हैं। लेकिन यह सब चोले आस्थायी होते हैं। स्थायी होता है उनका अपना निजि स्वार्थ जो ब्योरोज के बढ़ने और विकसित होने से पूरा होता है।

डाउन्स ब्योरोज की सफलता के लिए संगठन की पदसोपनियता पर जोर देता हैं। यही वही बिन्दु है जिस पर सब से अधिक बल मैक्स वेबर ने दिया था। पद सोपनीय संरचना से आदेश, आदेश के अनुपालन और उत्तरदायित्व के मध्य समन्वय और अनुशासन के माध्यम से सन्तुलन पैदा होता है। इस सिद्धांत से संवाद में आसानी होती है। सूचना एवं संचार में प्रवाह बना रहता है। और इस तरह ब्योरोज का ध्येय पूरा होता है।

संक्षेप में डाउन्स ने नौकरशाही का सब से महत्वपूर्ण आधार ब्योरोज को ही माना है। उसने ब्योराज के आचरण पर खुल कर लिखा हैं उसका मानना है कि ब्योरोज पैदा नहीं होते हैं, वे बनाऐ जाते हैं। उसके अनुसार उत्साही अथवा जोशीले नौकरशाह नित्य नये ब्योरोज को बनाने की सोचते रहते हैं, ताकि उनको पदोन्नति के अवसर मिलते रहें और युवा नौकरशाहों के लिए रास्ते खुलें।

## 6.8 पर्यावरर्णीय सिद्धांत और नौकरशाही

नौकरशाही के आधारों में पर्यावरणीय सिद्धांत एक मजबूत और निर्णयक आधार है। यह एक ऐसा आधार है जो भौतिक भी है और मनोविज्ञानिक भी। नौकरशाही के मानवीय पहलू को यदि प्रभावित करने वाला कोई तत्व है तो वह पर्यावरणीय तत्व ही है, जो मनुष्य के पूरे व्यवहार को तैय करता है।

नौकरशाही मानवों का एक ऐसा समूह है जो अत्याधिक जागरूक एवं संवेदशील होता है। कुछ तो वह स्वयं एक विशिष्ट चिन्तन का मालिक होता है और कुछ प्रशिक्षण के माध्यम से उसके व्यवहार को ढाला जाता है। संक्षेप में, नौकरशाही और उसका पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते है। अतः इस प्रक्रिया के गतिज को समझाना नौकरशाही की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने के लिए जरूरी है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण जैसे शब्द को वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। जिस तरह पेड़-पौधे अपने पर्यावरण से प्रभावित होकर फलते-फूलते हैं, इसी तरह प्रशासन भी अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण से प्रभावित होकर अपनी दिशा और दशा तैय करता है।

प्रशासन पर वरचस्व नौकरशाही का होता है। अतः प्रशासन पर पर्यावरणी के प्रभाव का अर्थ है, नौकरशाही के आचरण को प्रभावित करना। इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन गॉस, राबर्ट ए0ढल और राबर्ट मर्टन ने किया, लेकिन इस दृष्टिकोण का सब से प्रभावशाली चिन्तक फ्रेड रिग्स् है। उसने प्रशासन का आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, तकनीकी, राजनीतिक और संचार तत्वों के साथ सम्बंध निश्चित करके यह सिद्ध किया कि प्रशासनिक व्यवस्था को, जिस पर नौकरशाही का नियंत्रण है, पर्यावरण प्रभावित करता है।

नौकरशाहों के विचार, उन की सोच और आचरण सब पर पर्यावरणीय परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है और बदले में वे अपने आचरण से समाज में भी बदलाव लाते हैं। इसलिए किसी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही की भूमिका अहम होती है, क्योंकि वे नीति-निर्माण, निर्णय-निर्माण तथा विधि निर्माण को प्रभावित करते हैं।

## 6.9 नौकरशाही के आधार का व्यवहारिक पहलू

नौकरशाही की विशेषता, चरित्र, स्वरूप अथवा उसके आधारों के बारे में अब तक जो कुछ लिखा गया है वह नौकरशाही के सिद्धांतकारों अथवा विश्लेषण कर्ताओं के अनुमानों, परिकल्पनाओं और औपचारिक विश्वासों का परिणाम है, जो औपचारिकताओं से भरपूर है। नौकरशाहों या प्रशासनिक अधिकारियों का अपना एक अलग संसार है जिसमें रहकर वे काम करते हैं, जिसमें किसी बाहरी शक्ति का दखल नहीं है और यदि है भी तो वह उसे कूड़ेदान में फेंक देते हैं।

नौकरशाह इस परिकल्पना पर चलते हैं कि प्रशासन एक वैज्ञानिक परिस्थिति के एक मनोवैज्ञानिक स्थिति भी है, जासे प्रशासकों के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। एक दृष्टि से ये व्यवहार परिकतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित होते हैं। नौकरशाह मशीन नहीं है, न ही वे रोबो है वह हाड़-मास के मनुष्य हैं, जिनकी अपनी इच्छाऐं हैं, अभिलाषाऐं हैं इनकी अपनी कल्पनाऐं हैं, अपने लक्ष्य हैं, अपने हित हैं जिन से यह प्रभावित होते है। इनका व्यवहार परिस्थितियों का भी दास है। अतः यह औपचारिकताओं का कम अनौपचारिकताओं का सहारा अधिक लेते हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो विलम्ब की बीमारी बढ़ेगी और भ्रष्टाचार के रूप में उभरेगी।

राजनीतिज्ञों के फैसले अटपटे, मनमाने और राजनीतिक लाभ या हानि से प्रेरित होते हैं। यदि उन फैसलों के अनुसार नौकरशाही चलती है तो उसका अन्जाम भयावाह भी हो सकता हैं और नौकरशाह जानते हैं कि यदि फैसलों का सकारात्मक स्वरूप सामने आया तो उसका श्रेय राजनीतिक निर्णय निर्माणता को मिलेगा, यदि दाँव उल्टा पड़ता है तो नौकरशाही को कोसा जायेगा। इसलिसे नौकरशाही नीति निर्माण से लेकर निर्णय-निर्माण तक फूंक-फूंक कर कदम बढ़ाती है, क्योंकि असफलता की गाज उस पर गिरे गी, उसका बुरी स्थिति में स्थानान्तरण होगा, पदोन्नति रोक दी जायेगी अथवा उसे अन्य दूसरे तरीकों से उत्पीड़ित किया जाऐगा। इस स्थिति से बचेन के लिए नौकरशाही औपचारिकता तथा अनौपचारिकता दोनो माध्यमों से काम लेकर, अत्याधिक उत्साही, निर्माण, बाद-दिमाग, सटकी, या फिर सजग, गतिशील, कर्मठ अथवा कल्पना वादी या आदर्शवादी राजनेता की मनीवृत्ति के अनुसार प्रशासनिक कार्यों का संचालन करता है। डेविड ईस्टन, लासवैल, विलियम राइकर इत्यादि राजनीति शास्त्रियां ने इसी व्यवहारपरकता पर जोर दिया है।

**अभ्यास प्रश्न-**

**1.** ब्योरियॅाक्रेसी का क्या अर्थ है?

क. सरकार ख. संगठन

ग. प्रशासन घ. अधिकारीतंत्र

**2.** मैक्स वेबर ने नौकरशाही के जिस प्रतिमान (मॉडल) का सिद्धांत प्रस्तुत किया उसका नाम क्या है?

क. विधिक ख. तार्किक

ग. ब्योरोज घ. विधिक तार्किक

**3.** नौकरशाही ''परजीवी'' है, यह कथन किसका है?

क. हीगेल का ख. ऐंजेल्ज का

ग. मार्क्स का घ. बाकुमिन का

**4.** किसने नौकरशाही को आफीशियज या अधिकारी कहना उचित समझा?

क. एन्थॉनी डाउन्स ने ख. डेविड इस्टन ने

ग. मार्क्स ने घ. इनमें से कोई नहीं

**5.** नौकरशाही के आधारों में कौन सा आधार नहीं है?

क. पदानुक्रम ख. नौकरशाह का राजनीति

ग. पर्यावरण घ. ब्योरोज

## 6.10 सारांश

नौकरशाही पर आधारों के दृष्टिकोण से किसी प्रशासनिक चिन्तकों कोई प्रथक रूप से सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया है। नौकरशाही पर मैक्स वेबर से लेकर एन्थॉनी डान्उस ने जो कुछ लिखा है उसके प्रकाश में नौकरशाही के अनेक आधार उभर कर सामने आते हैं।

- नौकरशाही एक संरचना भी है, एक सिद्धांत भी है और एक मानसिकता भी।
- व्योकरियोक्रेसी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डा0 गोरने ने किया। बाद में यह शब्द लोक सेवा के लिये प्रयोग होने लगा।
- मैक्स बैवर वह पहला विचारक है जिसने नौकरशाही पर विस्तृत चर्चा की और नौकरशाही का एक विशिष्ट सिद्धांत प्रतिपादित किया। उसने आदर्श नौकरशाही का एक चित्रण प्रस्तुत किया जिस पर उसका प्रसिद्ध प्रतिमान या मॉडल आधारित है। इस प्रतिमान को उसने विधिक-तार्किक का नाम दिया।
- मैक्स वेबर ने नौकरशाही की उसके हर पहलू से चर्चा की: नौकरशाही के अभिलक्षण नौकरशाही पर टिके उसके विश्वास वेबेरियन नौकरशाही का सार हैं।
- कार्ल मार्क्स एक ऐसा चिन्तक है, जिसने प्रत्येक संस्था को अपने वर्ग संघर्ष के नजरिये का परिणाम बताया है जो उत्पादन के मालिक और राजनीतिज्ञों के हितों की रक्षा करता हैं
- हीगेल के अनुसार नौकरशाही सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं इस विचार की मार्क्स ने आलोचना की है और कहा कि नौकरशाही केवल पूंजीपातियों, भू स्वामियों तथा शासकों के हितों की रक्षा करती हैं
- नौकरशाही के अनेक आधार निश्चित किये जा सकते है जिनमें व्योरोज संगठन, निर्णय निर्माण की प्रक्रिया, कर्मचारी, पर्यावरण, ब्योरोज की पद सोपनीयता विशेष हैं।
- नौकरशाही औपचारिकताओं तथा अनौपचारिकताओं दोनो तत्वों पर टिकी हुई है। जहाँ तक उसके औपचारिक स्वरूप का सम्बन्ध है वह सैधांतिक है, लेकिन उसकी अनौपचारिकता उसके व्यवहारिक पहलू को दर्शाता है, जो यर्थात् पर टिकी हुई है।
- रिग्स ने पर्यावरणीय परिवेश को प्रशासन और नौकरशाही का आधार माना है। पर्यावरणीय परिवेश नौकरशाही के व्यवहार को निश्चित करता है।

## 6.11 शब्दावली

ब्योरोज- इसका अर्थ है सरकारी कार्यालय। यह प्रशासन की पहली कड़ी है जो प्रशासनिक तकाजों की पूर्ती करते हैं। ब्योरोज से ब्योरियाक्रेसी बना है। एन्थानी डाउन्स ने ब्योरोज से जुड़ी प्रशासनिक व्यवस्था को एक संस्था मानकर उसे नौकरशाही माना है। लेकिन क्योंकि नौकरशाही को बदनाम माना जाता है, इसलिये उसने नौकरशाहों को अधिकारी या officials कहा है।

निर्वैयक्तिक (Impersonal)- इसका अर्थ है कि सत्ता, शक्ति और अधिकार इनका सम्बंध पद सहेजों व्यक्ति ग्रहण करता है। एक नौकरशाह या अधिकारी जो कुछ है वह पद के कारण सत्ता, शक्ति तथा अधिकार का स्त्रोत है। कोई अन्य व्यक्ति इसका स्त्रोत नहीं है। इस तरह अधिकारी का स्वयं में अपना कोई अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है उसका पद जो कानूनी रूप में परिभाषित है। अधिकारी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है और यदि है तो उसका सम्बन्ध उसके पद से नहीं है। व्यक्तिगत तौर पर वह किसी अन्य व्यक्ति का नौकर नहीं है, न ही वह किसी अन्य का है।

पर्यावरण (Environment)- प्रशासनिक दृष्टि से पर्यावरण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिवेश या वह स्थिति है, जिसमें एक ब्योरोज में लगे लोग काम करते हैं। यहाँ इसका अर्थ प्रकृति या वातावरण से नहीं है। प्रशासनिक पर्यावरण अधिकारियों या नौकरशाहों के व्यवहार को निश्चित और निर्धारित करता है।

## 6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** घ, **2.** घ **3.** ग, **4.** क, **5.** ख

## 6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. अवस्थी अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
2. अवस्थी अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धांत।
3. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
4. डा0 रविन्द्र प्रसाद: प्रशासनिक चिन्तक
5. अमरेश्वर अवस्थी: लोक प्रशासन तथा भारत में लोक प्रशासन


## 6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. Awasthi Awasthi: Bureaucracy and Development.
2. Albrow Martin : Bureaucracy Lawdor.
3. Blou Peter : Bureaucracy in Modern Society.
4. Downs Anthony: Inside Bureaucracy.


## 6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वेबर का विधिक तार्किक नौकरशाही का सिद्धांत क्या है?
2. मार्क्स नौकरशाही को वर्ग संघर्ष का परिणाम मानता था, क्यों?
3. नौकरशाही के कितने आधार हैं? समझाइये।
4. पर्यावरणीय सिद्धांत क्या है? वह किस तरह नौकरशाही को प्रभावित करता है।

# इकाई- 7 भारत में लोक सेवा का विकास

**इकाई की संरचना**

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 भारत में लोक सेवाओं के विकास का इतिहास: प्राचीन काल
7.2.1 मुगल शासन काल की प्रशासनिक व्यवस्था
7.2.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रशासनिक काल
7.3 प्रशासनिक सुधारों का दौर
7.4 सन् 1935 से लेकर सन् 1947 तक प्रशासनिक विकास
7.5 प्रशासनिक संस्थाओं का विकास
7.6 लोक सेवा का विकास: ब्रिटिश संदर्भ
7.7 लोक सेवा का विकास: स्वतंत्र भारत में
7.8 स्वतंत्र भारत में लोक सेवाएं: स्वरूप और विशेषताएं
7.9 लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्ध
7.10 लोक सेवा विकास की वर्तमान स्थिति
7.11 सारांश
7.12 शब्दावली
7.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

## 7.0 प्रस्तावना

भारत को लोक सेवाएं ब्रिटिश शासन से विरासत में मिली हैं। वैसे प्राचीन काल में भी विशेष रूप से कौटिल्य के समय किसी न किसी रूप में लोक सेवाओं के दर्शन होते रहे हैं। इस्लामी शासन काल अथवा मुगल शासन काल में भी लोक सेवाओं की परम्परा थी। मुगल काल के पतन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर लोक सेवा की नींव डाली, लेकिन जब ब्रिटिश ताज के शासन का दौर आरंभ हुआ तब विधिवत् रूप से भारत में लोक सेवा का युग आरंभ हो गया। इसके बाद बड़ी तेजी के साथ लोक सेवाओं में सुधार होने लगे।

एचीसन आयोग (1886), इस्लिंग्टन आयोग (1912), माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918), भारत सरकार अधिनियम (1919), ली आयोग (1923) भारत में लोक सेवा के सुधार और विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। भारत में अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक कदम उठाये गये, जिसमें लोक सेवा आयोग की स्थापना (1926) तथा भारत सरकार अधिनियम (1935) मील का पत्थर माने जाते हैं।

1935 से लेकर 1945 तक लोक सेवा पूरी तरह विकसित हो चुकी थी। लोक सेवाओं का भारतीयकरण हो गया था। आज भारत में अखिल भारतयी लोक सेवाओं का जो रूप है, वह 1935 के अधिनियम की देन है।

भारतीय लोक सेवाऐं सतत् विकास की ओर अग्रसर हैं और वे संवैधानिक मर्यादा को ध्यान में रखते हुये भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत कर रही है।

## 7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में लोक सेवाओं के विकास के इतिहास से परिचित होंगे।
- मुगल शासन काल तथा ईस्ट इण्डिया काल के प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- प्रशासनिक सुधारों के दौर (1858) से लेकर 1947 तक की प्रशासनिक घटनाओं का अध्ययन कर सकेंगे,
- ब्रिटिश संदर्भ में आप भारत की लोक सेवाओं की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- स्वतंत्र भारत में लोक सेवा के विकास की क्या स्थिति है, इसको आप जान सकेंगे।
- लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्धों की भी जानकारी ले पायेंगे।

## 7.2 भारत में लोक सेवाओं के विकास का इतिहास: प्राचीन काल

लोक सेवा की अवधारणा भारत के लिए नई नहीं है। वह बिन्दु जहाँ से भारत का इतिहास से आरंभ होता है, वहीं से लोक सेवा की कहानी भी आरंभ होती है। 300 वर्ष ईसा पूर्व लिखे गये कौटिल्य के अर्थशास्त्र को सेवी वर्ग की महत्ता, विशेषता तथा व्यवहारिकता पर सर्वोत्तम एक प्राचीनतम ग्रन्थ (Treatise) माना जाता है। कौटिल्य व्यवहारिक राजनीति का पहला लेखक था, जिसने कोरे सिद्धान्त से सम्पन्न शासक या प्रशासक को राज्य के लिये घातक बताया था। वह पहला भारतीय चिन्तक था, जिसने कुलीन वर्ग (Elite Class) को लोक सेवा सौंपने की सलाह दी थी। कुलीन वर्ग के सदस्य जन्म से बुद्धिमान, बहादुर, ज्ञानी, शिक्षित, धनी तथा स्वाभी भक्त होते हैं। कौटिल्य का सुझाव था कि राजा को ऐसे योग्यता सम्पन्न लोगों को मंत्री और अधिकारी बनाना चाहिये। अर्थशास्त्र में सेवी वर्ग की सेवा की शर्तों का भी उल्लेख है।

### 7.2.1 मुगल शासन काल की प्रशासनिक व्यवस्था

प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था मध्य काल तक चलती रही। स्थानीय हिन्दु रजवाड़ों में महाकाव्यों तथा स्मृतियों की प्रशासनिक झलक मध्यकाल तक देखने को मिलती रही। लेकिन तभी भारत में मुगलों के आगमन के बाद प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था विलुप्त होने लगी। भारत में सेन्ट्रल ऐशिया, तुर्की, इरानी और अरब प्रशासनिक चिन्तन का दौर आरम्भ हो गया। मुगल काल में अनेक प्रशासनिक क्षेत्रों में लोक सेवाओं को संगठित किया गया। क्योंकि अब भारत छोटे राज्यों के दौर से निकलकर साम्राज्य की ओर अग्रसर था, तब उसी आकार की अनिवार्यताओं और मांगों के अनुसार प्रशासनिक व्यवस्था को रूप दिया गया। अब पहली बार शासक और शासितों के सम्बन्ध स्थापित हुए तथा दूसरी ओर मुगल बादशाहों ने स्थानीय रजवाड़ों को भी मान्यता दी जिसने एक तरह से संघीय राज्य व्यवस्था को जन्म दिया, इसलिये एकीकरण की दृष्टि से प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित हुई।

मुगल बादशाहों ने मुगल सूबेदारों तथा हिन्दु रजवाड़ों को अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक व्यवस्था संगठित करने की छूट दी जिसके परिणाम स्वरूप स्थानीय स्तर पर कई प्रकार की लोक सेवाऐं गठित की गयीं, तथा उनके कार्यों, शक्तियों एवं दायित्वों का निर्धारण किया गया। क्योंकि इस समय का भारतीय समाज कृषि प्रधान था, इसलिये अधिकतर लोक सेवाओं का सम्बन्ध जमींदारी, रय्यतदारी, लगान इत्यादि से अधिक था।

मुगलों की एक विशेषता यह थी कि उन्होंने भारतीय प्रशासनिक प्राचीन परम्पराओं का भी सम्मान करते हुये, अपनी व्यवस्थाओं में उनका समावेश किया। जिसका नतीजा यह निकला कि मुगल कालीन भारतीय प्रशासन

अरब-तुर्की परम्पराओं तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओं की एक नई व्यवस्था बन गयी। तत्कालीन सैनिक और पुलिस अधिकारी 'अमीर' तथा राजकोष अधिकारी 'अमील' अरब परम्पराओं के प्रतीक थे। लेकिन उस समय की भू-राजस्व व्यवस्था भारत की प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप बनी रही।

### 7.2.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रशासनिक काल

18वीं सदी में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। शासन की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में आ गई। अब समय बदल रहा था। भारत औद्योगिक और वाणिज्यिक युग की ओर बढ़ने लगा था। कम्पनी ने भारत की प्राचीन और मुगलों की मध्यकालीन प्रशासनिक परम्पराओं को ध्वस्त करते हुये, एक नई इबारत लिखना आरंभ की। अपनी प्रकृति के अनुसार उसने लोक सेवा में 'योग्यता' को रौंद कर 'लूट-प्रथा' आरंभ कर दी। देश की सत्ता जिस गवर्नर जनरल के हाथ में आती थी वह प्रशासन के लिये अपने अधिकारी नियुक्त करता था। यह एक प्रकार से प्रशासनिक सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रहार था। हाँ, इतना जरूर हुआ कि वारेन हेस्टिंग्ज, लार्ड कार्नवेलिस तथा लार्ड वेलेजली जैसे गवर्नर जनरलों ने लोक सेवा और लोक सेवियों को योग्यता की नजर से देखा और प्रशासन के सुधार के लिये कुछ सराहनीय कदम उठाये। लोक सेवकों की चयन प्रक्रिया तथा उनके प्रशिक्षण पर जोर दिया। लोक सेवाओं को कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड (लिखित वचन तथा अलखित वचन) के रूप में सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया।

धीरे-धीरे यहाँ भी स्थिति बदलने लगी। कम्पनी के जिन अधिकारियों के हाथ में सत्ता थी, वे घमन्डी, रंगभेद में विश्वास करने वाले और भारतीयों को अपना दास समझने वाले लोग थे। परिणामस्वरूप जब रंग-भेद, सामाजिक अलगाव और आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी तो अचानक 1857 में धैर्य का प्याला टूट गया, जो एक भयानक विद्रोह के रूप में सामने आया। लेकिन इस स्थिति को 1854 में सर चार्ल्स वुड तथा लार्ड मैकाले ने पहले ही भांप लिया था। इसलिये प्रशासनिक सुधारों का दौर आरंभ हो गया।

1857 के विद्रोह के फलस्वरूप कम्पनी का शासन समाप्त हो गया तथा सत्ता ब्रिटिश क्राउन के पास पहुँच गयी। लार्ड मैकाले की सिफारिशों के अनुरूप सारी सरकारी शक्तियाँ प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित हो गयीं। अब सत्ता का एक नया चेहरा सामने आया। सर एडमण्ड ब्लण्ट ने लिखा: ''उच्च ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी वास्तव में भारत के स्वामी बन गये। वे अन्य किसी सत्ता के प्रति उत्तरदायी न होकर परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन गये।''

## 7.3 प्रशासनिक सुधारों का दौर

1858 में भारत सरकार अधिनियम सामने आया जिसके तहत भारत सचिव को भारतीय लोक सेवा में प्रवेश के लिये नियम बनाने का अधिकार सौंपा गया। इधर, क्योंकि लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग जोर पकड़ रही थी, इसलिए 1831, 1861 और 1870 में भारतीय लोक सेवा अधिनियम पारित किये गये। 1876 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने लोक सेवा के भारतीयकरण की ओर कुछ कदम उठाये लेकिन वे भारतीयों की उच्च पदों पर पहुँचने की आकाँक्षायें पूरी नहीं कर सके। तत्पश्चात् भारतीयों के दबाव के कारण प्रशासनिक सुधारों की एक झड़ी लग गयी: एचीसन आयोग 1886; इस्लिंगटन आयोग 1912; माग्टेग्यू चेम्स फोर्ड रिपोर्ट 1918; भारतीय सरकार अधिनियम 1919; स्टाफ चयन मण्डल 1922; ली आयोग 1923; लोक सेवा आयोग 1926; तथा 1935 का लोक सेवा से सम्बन्धित अधिनियम-इन सब आयोगों ने भारतीय लोक सेवा के विकास में एक अहम भूमिका अदा की। यहाँ इन सभी आयोगों तथा अधिनियमों की विशेषताओं को संक्षेप में समझने का प्रयास किया जायेगा।

एचीसन आयोग, 1886: इस आयोग की मुख्य सिफारिशें थीं (क) कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड सेवाओं के अन्तर को मिटाकर उसके स्थान पर सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत की जाए-भारतीय लोक सेवा, प्रान्तीय सेवा एवं अधीनस्थ सेवा। भारतीय लोक सेवा में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित की जायें जो भारतीयों और योरोपीय प्रत्याशियों को परीक्षा में खुले तौर पर बैठने का अधिकार दें। अन्य दो प्रकार की सेवायें केवल भारतीयों के लिए सुरक्षित हों तथा प्रान्तीय स्तर पर उनकी परीक्षाऐं आयोजित की जायें। इस तरह इन सिफारिशों में भारतीयों को लोक सेवा में प्रवेश के अनेक अवसर मिल गये।

इस्लिंगटन आयोग, 1912: 1912 में भारतीय लोक सेवाओं पर लार्ड इस्लिंगटन की अध्यक्षता में एक शाही आयोग गठित किया गया। इसकी सिफारिशें इस प्रकार थीं (क) लोक सेवाओं में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ प्रतियोगी परीक्षायें कराई जायें, (ख) उच्चतम लोक सेवाओं के 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिये रखे गए। इन पदों पर अंशतः सीधे तथा अंशतः पदोन्नति द्वारा भर्ती की जाये। यह सिफारिशें 1917 में प्रकाशित की गयीं तब तक परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं, इसलिये यह सिफारिशें महत्वहीन हो गयीं।

मांण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918: भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए 1918 में मांण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट को मील का एक पत्थर माना जाता है। इसकी तीन सिफारिशें महत्वपूर्ण थीं: (अ) सिविल सर्विस परीक्षा भारत एवं इंग्लैण्ड में एक साथ ली जाए। (ब) भारतीय सिविल सेवा में भारतीय प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिये प्रारम्भ में वरिष्ठ स्तर के 1/3 पदों पर भर्ती भारत में की जाए तथा प्रत्येक वर्ष इसमें डेढ प्रतिशत भारतीयों की वृद्धि की जाये। (स) भारतीय लोक सेवा के अधिकारियों के वेतनमान, सेवानिवृत्ति वेतन, अवकाश तथा भत्तों में वृद्धि की जाये। 1919 के अधिनियम में इन सिफारिशों को स्वीकार करते हुये क्रियान्वित किया गया।

भारत सरकार अधिनियम, 1919, यह वह पहला अधिनियम है, जिसने भारतीय लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिये रास्ता साफ किया, लेकिन भारतीय सचिव ने इस सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया।

ली आयोग, 1923: 1923 में ब्रिटिश सरकार ने लॉर्ड ली की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया जिसका उद्देश लोक सेवाओं की संरचना, सेवा की शर्तें तथा अधिकारियों की नियुक्ति के तरीकों पर विचार करना था। इस आयोग की सिफारिशें लोक सेवा का सम्बन्ध केवल उच्चतर सेवाओं से था। आयोग ने पहला सुझाव यह दिया कि लोक सेवा आयोग की स्थापना शीघ्र-अतिशीघ्र की जाये। लोक सेवा आयोग के कार्य दो प्रकार के हों (1) लोक सेवाओं के लिए भर्ती करना तथा भर्ती के लिये उपयुक्त योग्यताओं का स्तर निर्धारित करना, (2) लोक सेवाओं की सुरक्षा एवं अनुशासनात्मक नियन्त्रण।

ली आयोग ने विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से लोक सेवाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया- (1) प्रशासन के सुरक्षित भाग से सम्बन्धित सेवायें, जैसे आईसीएस, आईपीएस, भारतीय वन सेवा इत्यादि। यह भी सिफारिश की गयी कि नियुक्ति तथा नियंत्रण की शक्तियाँ भारत सचिव के पास रहें; (2) हस्तान्तरित क्षेत्र की सेवायें, जैसे भारतीय शिक्षा सेवा, भारतीय कृषि सेवा, भारतीय पशु चिकित्सा सेवा इत्यादि। इन पदों पर नियुक्तियाँ अखिल भारतीय आधार पर की जायें, तथा (3) भारतीय सरकार के अधीन केन्द्रीय सेवायें, जैसे राजनीति विभाग, आबकारी विभाग तथा धर्म विभाग की लोक सेवाएं। इन सभी सेवाओं पर नियुक्तियाँ भारत सचिव द्वारा की जायें।

लोक सेवा आयोग की स्थापना 1926, फरवरी 1926 में भारत सचिव ने लोक सेवा आयोग की स्थापना कर दी। इसमें चार सदस्य तथा एक सभापति था। सर रास बार्कर इस आयोग के प्रथम सभापति नियुक्त किये गये। अभी यह एक स्वतंत्र निकाय नहीं था। इसे गृह विभाग के साथ संलग्न किया गया। अभी इस आयोग को केवल परामर्शदाता का ही दर्जा दिया गया। साइमन कमीशन ने स्वीकार कि आयोग शक्तियों की दृष्टि से मात्र एक छाया ही था। वह भर्ती के मामले में अन्तिम निर्णायक नहीं था।

1935 का भारत सरकार अधिनियम, 1935 का भारत सरकार अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक अहम घटना मानी जाती है। कूपलैण्ड के अनुसार 1935 का अधिनियम ''रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक

महान कहानी थी।'' इस अधिनियम के तहत भारत को भविष्य में संघात्मक व्यवस्था मिली। संघीय कार्यपालिका, संघीय व्यवस्थापिका तथा संघीय न्यायापालिका की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

## 7.4 1935 से लेकर 1947 तक प्रशासनिक विकास

1935 में भारत में ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार अधिनियम को लाकर एक अहम संवैधानिक और प्रशासनिक कदम उठाया। जैसा कि लिखा जा चुका है यह अधिनियम रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक महान सफलता था। इस अधिनियम में द्वैध-शासन को अब केन्द्रीय स्तर पर लागू करने का प्रावधान एक महत्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम के माध्यम से भारत में संघीय कार्यपालिका, संघीय विधान मण्डल तथा संघीय न्याय पालिका की स्थापना की गयी। प्रान्तों में स्वायत्त की स्थापना के लिये भूमिका तैयार की गई। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया-स्वेच्छा सम्बन्धी शक्तियाँ, व्यक्तिगत शक्तियाँ और परामर्शपरक शक्तियाँ विशेष रूप से मन्त्रियों के संदर्भ में।

1935 के भारत अधिनियम के तहत ब्रिटिश संसद द्वारा जो विभिन्न अधिनियम पारित किये गये, प्रशासनिक विकास की दृष्टि से उन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. भारत में उत्तरदायी तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना तथा उनकी सदस्य संख्या और प्रकृति का क्रमिक विकास;
2. इन संस्थाओं द्वारा शासन को उत्तरदायी बनाकर जनतंत्रीय रूप देना;
3. भारतीय प्रशासन का भारतीयकरण और भारतीयों की प्रशासन में भागीदारी को बढ़ाना; तथा
4. सेवी वर्ग की उपयोगिता को स्वीकार करना, उनकी विशेष भूमिका स्वीकार करना तथा उनके हितों की रक्षा करना।

भारत में आज जो केन्द्रीकृत अखिल भारतीय सेवाओं का रूप है, वह भी 1935 के भारत अधिनियम की देन है। इसका कारण गवर्नर के वे विशेष अधिकार थे, जो 1935 के अधिनियम ने उनको दिये थे। 1935 के अधिनियम ने वास्तव में भारत के भावी संविधान की आधारशिला रख दी और इसके साथ भारतीय प्रशासन के विकास को भी आगे बढ़ाया। हमें यह स्वीकार करना होगा कि वर्तमान में जो संवैधानिक और प्रशासनिक विकास की तस्वीर है, वह अंग्रेजी शासन की देन है। हमें यह व्यवस्था विरासत में मिली है। विकास की यह कहानी 1935 से 1947 तक अंग्रेजों के माध्यम से चलती रही।

## 7.5 प्रशासनिक संस्थाओं का विकास

सन् 1858 से लेकर 1919 (भारत परिषद् अधिनियम) से गुजरता हुआ। 1935 के ऐतिहासिक भारत अधिनियम के चैनल के रास्ते होता हुआ भारत का प्रशासनिक विकास 1947 तक पहुँचा और तब से अब तक प्रगति के पथ पर अग्रसर है। संक्षेप में विकास की इस कहानी को समझने के लिये अधोलिखित बिन्दुओं का अध्ययन अनिवार्य है-

1. **केन्द्रीय सचिवालय का विकास-** मौजूदा सचिवालय ब्रिटिश शासन की देन है। प्रशासनिक एकता स्थापित करने, प्रशासनिक इकाइयों में समन्वय पैदा करने तथा प्रशासनिक कार्यों में एकरूपता लाने के लिये 1833 में एक चार्टर अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन सचिवालय की स्थापना की गई। यह विभिन्न विभागों की एक संयुक्त संस्था थी, जिसका 1843 से 1919 और तत्पश्चात् 1947 तक इस का पुनर्गठन और विभिन्न सुधारों के माध्यम से इसका वर्तमान स्वरूप सामने आया। अनेक महत्वपूर्ण विभागों का जन्म सचिवालय के माध्यम से ही हुआ। 1947 तक सचिवालय में 19 विभाग थे। यह सिलसिला आगे तक चलता रहा।

2. **वित्त प्रशासन-** वित्त प्रशासन का इतिहास पुराना है, लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में यह पूरी तरह भ्रष्टाचार और लूट खसोट से ग्रस्त हो गया। इसलिये वित्त का केन्द्रीकरण करने का प्रयास किया जाने लगा। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण के दिशा में लार्ड मयो द्वारा एक निश्चित योजना तैयार की गयी। 1877 में एक योजना के अन्तर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून तथा न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दी गयीं। तत्पश्चात् 1882 से लेकर 1907 तक अनेक सुधारात्मक उपायों के आधार पर वित्त प्रशासन को केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय निकायों अथवा सरकारों में विभाजित कर दिया गया। इसी तरह वित्तीय साधनों का भी विभाजन कर दिया गया। विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में चार्ल्स हॉब हाउस आयोग (1907) का बड़ा योगदान है। नतीजा यह निकला कि 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय बजट केन्द्रीय सरकार से अलग कर दिये गये।

## 7.6 लोक सेवा का विकास: ब्रिटिश संदर्भ

लोक सेवा का जो रूप आज भारत में है, वह विकास का परिणाम है, प्राचीन भारत में लोक सेवायें अविकसित थी, क्योंकि उस समय का समाज सरल था। मुगल या मुस्लिम शासन काल में लोक सेवा को नये आयाम मिले लेकिन उनका रूप उतना वैज्ञानिक नहीं था, जितना धीरे-धीरे ब्रिटिश काल में सामने आया। ब्रिटिश शासन काल का दौर औद्योगिक और वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ने के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल से आरंभ हुआ लेकिन लोक सेवाओं के क्षेत्र में लूट-प्रथा के चलते प्रशासनिक प्रगति के लिये एक बाधा बन गया। तत्कालीन लोक सेवकों की प्रकृति और व्यवहार के कारण ही सामाजिक अलगाव की नींव पड़ी, भारतीयों में बेचैनी बढ़ी जो अन्तः 1857 की बगावत के रूप में फूटी। यह बगावत ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पतन और अन्त का कारण बनी। परिणामस्वरूप 1858 में ब्रिटिश महारानी या ताज का शासन आरंभ हुआ और इस एहसास के साथ कि लोक सेवायें ही शासन के पतन या उत्थान का कारण बनती हैं, उनके विकास के लिये कदम उठाये जाने लगे।

अब इस तथ्य को स्वीकार किया जाने लगा कि लोक सेवाओं को योग्यता पर आधारित होना चाहिये। इस नजरिये से वारेन हेस्टिंग्स का नाम याद रखना होगा। यह ऐसा गवर्नर जनरल था जिसने भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिये मजबूत लोक सेवाओं की आधारशिला रखी। यहाँ से ब्रिटिशकालीन लोक सेवा के विकास की कहानी कुछ इस तरह है:

वारेन हेस्टिंग्ज, कार्नवालिस, लार्ड क्लाइव, लार्ड वैलेजली तथा लार्ड मैकाले कम्पनी काल के ऐसे गवर्नर जनरल थे, जिन्होंने पूरी निष्ठा के साथ लोक सेवाओं के स्वरूप, प्रकृति और स्वभाव को बदलने का प्रयास किया। इन्हीं के दौर में भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति व्यवस्था को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये; 1781 में जिलाधीश, मजिस्ट्रेसी तथा न्याय प्रशासन को एकीकृत करने का काम हुआ। लार्ड क्लाइव ने भी प्रशासनिक सुधार के लिये प्रयास किये, लेकिन जब उसे सफलता नहीं मिली तब लार्ड कार्नवालिस ने 1785 से 1793 तक अनेक सुधारात्मक कदम उठाये।

फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना लोक सेवाओं के प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक महत्वूपर्ण कदम था। भारत से प्रशासक प्रशिक्षण के लिये फोर्ट विलियम जाने लगे। 1833 में भारत में समस्त व्यक्तियों के लिये समान रूप से खुली प्रतियोगिता की पद्धति को स्वीकृति मिली। भारतीय लोक सेवाओं का इतिहास 1854 को भी याद रखना होगा। तब लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में गठित एक समिति ने आई.सी.एस. के लिये जो सिफारिशें की वे आज भी भारतीय लोक सेवाओं के गठन और कार्यप्रणाली की आधारशिला है।

1886 में भारत के वायसराय लार्ड डफरिन ने चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना की जिसकी सिफारिशों के आधार पर सामान्य लोक सेवा को भारतीय लोक-सेवा, प्रान्तीय सेवा औा अधीनस्थ सेवा- तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर दिया गया। इस तरह कवेनेण्टेड तथा अनेवेनेण्टेड सेवाओं का अन्तर समाप्त हो गया।

1918 में गठित माण्टेग्यू-चैम्सफोड समिति ने एक रिपोर्ट तैयार की, जो लोक सेवाओं के सुधार के लिये एक वरदान सिद्ध हुई। इस रिपोर्ट की महत्वपूर्ण सिफारिशें थीं: (1) लोक सेवा की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ कराई जाए, (2) वरष्ठि पदों पर एक-तिहाई भर्ती भारत में की जाये, ताकि भारतीयों की संख्या में वृद्धि हो, (3) आई.सी.एस. की सेवा शर्तों-सुरक्षा, वेतन तथा पदोन्नति में सुधार किये जायें। 1919 के भारत शासन अधिनियम के बाद इसे लागू किया गया।

1920 का वर्ष भारतीय लोक सेवाओं के लिये संकट का काल था। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधान मण्डलों में इन सेवाओं के तौर तरीकों की कटु आलोचना होने लगी; लोक सेवा के अधिकारी व्यक्तिगत रूप से भर्तसना का निशाना बनने लगे। भारतीय मंत्रियों ने इन लोक सेवकों को प्रायः अपंग बना दिया। 1920 में असहयोग आन्दोलन ने लोक सेवाओं पर कड़ा प्रहार किया। यहाँ तक कि अंग्रेज अधिकारी भारत छोड़ने का मन बनाने लगे। इधर इन सेवाओं के भारतीयकरण की मांग फिर उठने लगी। इस स्थिति से निपटने के लिए एक उच्च लोक-सेवा विषयक शाही आयोग की नियुक्ति लार्ड ली की अध्यक्षता में की गई। इस आयोग ने लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के कारण तीन सकारात्मक नतीजे सामने आये; (1) राज्यों में लोक सेवा आयोगों की स्थापना की गई; (2) चिकित्सा सेवाओं के लिये एक प्रथम आयोग बनाने की सिफारिश की गई; तथा सभी अन्य सेवाओं को भारत मंत्री के क्षेत्राधिकार से निकाल दिया गया और इन पर गवर्नर जनरल और गवर्नरों का नियंत्रण स्थापित किया गया।

हमको यह स्वीकार करना होगा कि ब्रिटिश काल के भारत में अंग्रेज निरन्तर भारतीय नजरिये से तथा भारतीय परिस्थितियों के अनुसार लोक सेवाओं में सुधार करते रहे। 1935 का अधिनियम इसे तथ्य का सर्वोत्तम उदाहरण है।

## 7.7 लोक सेवा का विकास: स्वतंत्र भारत में

वास्तव में 1935 का भारत सरकार अधिनियम इस परिकल्पना पर आधारित था कि निकट भविष्य में भारत आजाद होगा और सत्ता भारतीयों के हाथों में होगी। इस तरह 1935 का अधिनियम का भारतीय संविधान की आधारशिला के रूप में सामने आया। नतीजा यह निकला कि स्वतंत्रता के साथ ही लोक सेवाओं का स्वरूप भारत सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप बदलने लगा। जो नई तस्वीर सामने आई उसका सार था-

1. आई.सी.एस. के स्थान पर नवीन अखिल भारतीय सेवा, जैसे आई.ए.एस. और आई.पी.एस. की स्थापना; आई.एफ.एस. (भारतीय विदेश सेवा) तथा भारतीय वन सेवा की स्थापना।
2. तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को एहसास था कि देश का चहुमुखी विकास पूरी तरह गतिशील प्रशासन पर निर्भर करता है, इसलिये उन्होंने 1951 में गोरवाला और 1953 में ऐपल्बी को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार लोक सेवाओं के लिये अपना प्रतिवेदन देने के लिये नियुक्त किया। इनकी सिफारिशों के अनुसार 1954 में दिल्ली में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई।
3. 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने लोक सेवा में सुधार के लिये जो सुझाव दिये, उनके तहत 1970 में कार्मिक विभाग का गठन किया गया। 1956 में गृह मंत्रालय ने एक प्रशासनिक सतर्कता सम्भाग की स्थापना की। इसी वर्ष एक वेतन आयोग की नियुक्ति की गई, जिसका उद्देश्य केन्द्रीय एवं अखिल भारतीय सेवाओं के वेतन स्तर एवं सेवा शर्तों का पुनरीक्षण करना था। लोक सेवाओं में प्रशिक्षण की दृष्टि से नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन तथा विशेषीकृत प्रशिक्षण अभिकरण स्थापित किये गये। राज्यों में भी इसी प्रकार की प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित की गयीं।

प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 की स्थापना लोक सेवाओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम था। इसका वास्तविक उद्देश्य लोक सेवाओं के संगठन तथा कार्य विधि में अनिवार्य सुधार लाना था। इस आयोग ने जो अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसम में प्रमुख सिफारिश यह थी कि लोक-कल्याणकारी राज्य में बढ़ती हुई लोक सेवाओं पर नियंत्रण के लिये एक केन्द्रीय अभिकरण (ऐजेन्सी) का होना जरूरी है। प्रशासनिक सुधार आयोग का प्रतिवेदन स्वीकार करते हुये भारत सरकार ने 27 जून 1970 को कैबिनेट सचिवालय में सेवी वर्ग विभाग की स्थापना की 1972 में एक अधिसूचना द्वारा सेवी वर्ग विभाग को वे सभी कार्य सौंप दिये गये, जिनकी सिफारिश आयोग ने की थी। संक्षेप में इन सिफारिशों में (1) सामान्य सेवी वर्ग सम्बन्धी नीति की रचना करना; (2) प्रतिभाओं की खोज। वरिष्ठ प्रबन्ध के लिये सेवी वर्ग का विकास तथा वरिष्ठ पदों पर नियुक्ति की कार्यवाही; (3) मानव शक्ति नियोजन, प्रशिक्षण एवं आजीवन सेवा का विकास; (4) सेवी वर्ग प्रशासन में विदेशी सहयोग; (5) सेवी वर्ग प्रशासन में शोध कार्य; (6) कर्मचारी वर्ग में अनुशासन पैदा करना; (7) संघीय लोक सेवा आयोग, तथा राज्य सरकारों इत्यादि के मध्य कड़ी का कार्य करना; तथा स्थापना मण्डल के परामर्श से केन्द्रीय सचिवालय में कार्य करना।

वर्तमान में सेवी वर्ग विभाग गृह मंत्रालय का एक स्वतंत्र विभाग है। अब यह प्रधानमंत्री के अधीन रहकर कार्य करता है।

## 7.8 स्वतंत्र भारत में लोक सेवाएं: स्वरूप और विशेषताएं

अनेक बार बताया जा चुका है कि आधुनिक भारतीय लोक सेवा ब्रिटिश शासन की देन है। यह सतत् विकास का परिणाम है। अंग्रेजों ने भारत को भले ही लूटा-खसोटा हो, लेकिन प्रशासन के क्षेत्र में उनके अद्वितीय योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। यहाँ भारतीय लोक सेवाओं के कुछ ऐसे पहलुओं पर बात की जायेगी जो एक साधारण विद्यार्थी को समझना चाहिये। यह प्रमुख बिन्दु इस तरह हैं-

1. भारतीय लोक सेवा में भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जांच खुली प्रतियोगिता द्वारा होती है, जिसका माध्यम लोक सेवा आयोग है। यह संस्था स्वतंत्र, निष्पक्ष और गैर राजनीतिक है।
2. उच्च लोक सेवा में भर्ती की आयु 21 से 32 वर्ष है। सिफारिश यह भी की गई है कि भर्ती की अधिकतम सीमा 32 वर्ष से घटाकर 27 वर्ष कर देनी चाहिये। यह भी आवश्यक है कि उच्च लोक सेवा के उम्मीदवार अपने विचारों में परिपक्व हों, कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न हों, दृढ़ निश्चय के धनी हों तथा अच्छा सामान्य ज्ञान रखते हों। परीक्षा में दोनों प्रकार की व्यवस्थाएं है-लिखित व्यवस्था और साक्षात्कार व्यवस्था।
3. लोकसेवा के लिये चुने हुये प्रत्याशियों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था।
4. नौकरी में सुरक्षा, अच्छे वेतन की व्यवस्था और पदोन्नति के न्यायोचित अवसर प्रदान करना ताकि लोक सेवियों की कार्यक्षमता का विकास हो और उनका मनोबल ऊँचा रहे।
5. भारतीय लोक सेवा का ‘बहुदेशीय स्वरूप’ है। अधिकारी समय-समय पर अलग-अलग पद ग्रहण करते रहते हैं। इस तरह उनको प्रत्येक विभाग का ज्ञान रहता है। विशेषकर आई.ए.एस. एक बहु पदीय सेवा है। अधिकारी प्रशासन की प्रत्येक शाखा से परिचित हो यह लोक सेवा का उद्देश्य है।
6. केन्द्रीय एवं प्रान्तीय लोक सेवाएं ‘प्रथम’, ‘द्वितीय’, तृतीय तथा चतुर्थ वर्गों में विभाजित होती हैं। इनके वर्गों के अनुसार इनके कार्य, पद और शक्तियाँ होती हैं। भारत में इस समय तीन अखिल भारतीय सेवायें हैं- आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ.एस.।
7. लोक सेवा के पद प्रत्यक्ष भर्ती और पदोन्नति दोनों पद्धतियों से भरे जाते हैं।
8. भारतीय सेवी वर्ग प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि कुछ सेवायें संघ तथा राज्य दोनों के लिये समान रूप से गठित की गई हैं, जैसी कि अखिल भारतीय सेवायें। ये अधिकारी पूर्णतः केन्द्रीय अथवा

राज्यों की सेवा में नहीं होते हैं, लेकिन दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत विभिन्न समयों में कार्य करते हैं। इन सेवाओं में भर्ती समान अर्हताओं और वेतनमान और और अखिल भारतीय आधार पर की जाती है।

## 7.9 लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्ध

लोक सेवकों एवं राजनीतिज्ञों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति एक विवादास्पद विषय रहा है। मार्क्स का तो दृष्टिकोण यह था कि नौकरशाही अपने अस्तित्व के लिए पूरी तरह राजनीतिज्ञों पर न केवल निर्भर रहती है, बल्कि राजनीतिज्ञों की यथास्थिति को बनाये रखने के लिए सतत् प्रयास भी करती रहती है। इसलिए मार्क्स ने नौकरशाही को परजीवी (Parasitic) कहा था। नौकरशाही न केवल राजनीतिज्ञों की सहायता करती है, बल्कि वह समाज के सभी प्रभुत्व वाले तबकों की यथास्थिति को बनाये रखती है।

नौकरशाही की एक और विशेषता है, जिसकी ओर मार्क्स ने इशारा किया है, वह है नौकरशाही की 'गोपनीयता और रहस्यमयता'। वह राजनीतिज्ञों की वास्तविक चालों और इरादों को साधारण जन समाज से छुपाती है। ''वह राजनीतिज्ञों की हरकतों पर पर्दा डालती है और उनकी चालों को रहस्यमय बनाये रखती है।'' इस तरह नौकरशाही राजनीतिज्ञों, सत्ताधारियों और पूँजीपतियों तथा जन-समाज में दूरियाँ बनाये रखती है और अलगाव पैदा करती है।

पश्चिमी जगत तथा लोक सेवा और राजनीति के रिश्ते, पश्चिमी जगत में नौकरशाही के प्रति दृष्टिकोण बहुत कुछ हद तक उदारवादी रहा है। यहाँ लोगों ने मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की रूपरेखा को स्वीकार किया। वेबर ने नौकरशाही और तार्किकता को सिक्के के दो पहलू माना था। वह नौकरशाही और तार्किकता (तंजपवदंसपजल) को अप्रथक्कारी मानता है। इसलिए पश्चिमी जगत में राजनीति एव नौकरशाही में कम से कम टकराव देखने को मिला। यहाँ तक एहास होने लगा कि 'व्यक्तित्व' के अनुसार कभी तो नौकरशाही राजनीति पर हावी हो जाती थी और कभी राजनीति नौकरशाही पर। प्रायः टकराव स्थिति अधिक बनी रहती थी, इसलिये वेबर ने नौकरशाही की ''राजनीतिक तटस्थता'' को सफल नौकरशाही की एक शर्त माना। और इस तरह राजनीति एवं प्रशासन में द्विविभाजन (कपबीवजवउल) का सिद्धान्त स्वीकार किया जाने लगा।

भारतीय संदर्भ, 15 अगस्त 1947 को भारत विभाजन के साथ आजाद हो गया। अंग्रेजों से विरासत में जो स्वतंत्र भारत को मिला उनमें न्याय व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था के अतिरिक्त जो सर्वोत्तम संस्था प्राप्त हुई, वह प्रशासन व्यवस्था थी। प्रशासन व्यवस्था में भी लोक सेवा सर्वोपरि थी। लोक सेवा को भारत ने उसकी सम्पूर्ण मानसिकता सहित ग्रहण कर लिया।

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व नौकरशाही के रूप में आई.सी.एस. थे, जिनका और लोक सेवा दोनों का स्वरूप ब्रिटिश था, इसलिये दोनों में द्वन्द्व और टकराव की संभावना कम थी। परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासन में नौकरशाही और राजनीतिज्ञों सहयोग और समन्वय बिलकुल चुस्त-दुरूस्त था।

स्वाधीनता के बाद आई.सी.एस. का स्थान आई.ए.एस. और राज्य स्तर पर पी.सी.एस. ने ले लिया, लेकिन व्यक्ति तो बदल गये, प्रशासनिक सोच और आचरण नहीं बदला। इसलिये, स्वतंत्रता के प्रारम्भिक दिनों में नवीन प्रशासनिक ढाँचे में अधिकारियों की मानसिक स्थिति कुछ अजीबोगरीब थी। उन्हें शासन के नवीन राजनीतिक तत्व-मन्त्रियों के साथ सद्भावना और सहयोग के साथ काम करने में कुछ कठिनाई महसूस होती थी। आई.ए.एस. अधिकारी स्वयं को राजनीतिज्ञों से उच्चतर समझते थे और वे यह सोचते थे कि सरकार उनकी इच्छानुसार चलना चाहिये। लेकिन उस समय के राजनेता भी कोइ साधारण व्यक्तित्व के नहीं होते थे। स्वतंत्रता की जंग उन्हों ने लड़ी थी और जीती थी। इसलिये नौकरशाही और राजनीति में टकराव स्वाभाविक था।

स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रधानमंत्री को भी इन अधिकारियों को नियंत्रण में रखने और अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित कराने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था, लेकिन जैसे-जैसे लोकतंत्र की जड़ें मजबूत होती गयीं। धीरे-धीरे परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक अधिकारियों का यह रवैय्या भी बदलता गया। स्वयं

प्रशासन का लोकतांत्रीकरण होता चला गया और ''नौकरशाही'' अपने स्वरूप और मानसिकता को बदल कर ''लोक सेवक'' बनती चली गई। इन अधिकारियों के कर्तव्यों और कार्यों में इस प्रकार के परिवर्तन लाए गये हैं कि वे जन समाज की आवश्यकताओं, संवैधानिक तकाजों और राजनीतिज्ञों के इरादों या इच्छाओं में ताल-मेल विठाकर काम करने लगे। अब जनता में और अधिकारियों में संवाद बढ़ रहा था, दूरी घट रही थी और इस तरह देश अपनी मंजित की ओर बढ़ रहा था। आज यह कहा जा सकता है कि भारतीय लोक सेवाओं का लोकतांत्रीकरण हो चुका है। अब लोक सेवा का विकास, लोकतंत्र के विकास और भारत के विकास का प्रतीक बन गया है।

## 7.10 लोक सेवा विकास की वर्तमान स्थिति

स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। प्रशासन की नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगीं हैं। संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है, जिसका अर्थ है कि संविधान की प्रस्तावना को मूल भावना के अनुसार देश की सभी संस्थाओं को अपना काम करना है। यह बात अखिल भारतीय और राज्य सेवाओं के विकास के लिये भी अनिवार्य है। लोक सेवाओं का उत्तरदायित्व और कर्तव्य उत्तरदायी सरकार को मजबूती देने के लिये जरूरी है।

संवैधानिक तकाजों के अनुसार राज्य का कर्तव्य है कि सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, स्तर और अवसर की समानता का वातावरण मिले। सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास और पूँजी की स्वतंत्रता प्राप्त हो। लोक सेवा को संविधान की इस भावना का सम्मान करना होता है।

इस संदर्भ में यह याद रखना आवश्यक है कि भारतीय लोक सेवा के विकास का इतिहास, उसकी वर्तमान संरचना एवं प्रशासनिक कार्यविधि पर उसके अतीत ने उस पर गहरी छाप छोड़ी है। अतीत की प्रशासनिक विरासतें और वर्तमान का प्रशासनिक स्वरूप अप्रथक्कीकरण है। शताब्दियों के अन्तराल में भारतीय प्रशासकों की आदत का अन्तर बन जाने के कारण ये विरासतें प्रभावी हैं, और प्रशासन को निरन्तरता देती हैं। आज भी ब्रिटिश प्रशासनिक प्रभाव को भारतीय प्रशासन के विविध आयामों में देखा जा सकता है।

भारतीय प्रशासन के जिन क्षेत्रों में यह ब्रिटिश प्रभाव देखने को मिलता है, उनमें से प्रमुख हैं-सचिवालय व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक सेंवायें, संसदीय एवं न्याय प्रणालियाँ। इनमें यदि सब से अधिक प्रभावित संस्था है तो वो लोक सेवा ही है। बहुत कुछ लोकतांत्रिक होने के बाद भी भारतीय लोक सेवायें कहीं न कहीं अपने स्वभाव, अपने व्यवहार और अपनी सोच ने ब्रिटिश लोक सेवा के आज भी समीप है।

भारतीय लोक सेवा का एक नकारात्मक पहलू भी है। जहाँ ब्रिटिश लोक सेवक कुलीन परम्पराओं के अनुसार चलते थे, वहाँ आज ये मध्यवर्गीय लोक सेवी वर्ग समाज की नकारात्मक प्रवृत्तियों से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। भारत के चहुमुखी विकास के बाद भी कुछ क्षेत्रों में स्थिति अस्पष्ट तथा भ्रमित है। देश की राजनीतिक अस्थिरता, राजनीति के अपराधीकरण, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और भ्रष्टाचार का बढ़ता प्रभाव-यह सब कुछ लोक सेवकों को भ्रमित करता है। कानून की स्थिति में गिरावट, हिंसा का बढ़ता प्रभाव, प्रशासन का गिरता स्तर-यह न केवल लोक सेवा के विकास में एक बाधा है, बल्कि लोकतान्त्रिक मूल्यों के भी विपरीत है। इन बातों का प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

**अभ्यास प्रश्न-**

**1.** एचीसन आयोग किस सन् में गठित किया गया?

क. 1886 ख. 1857

ग. 1860 घ. 1868

**2.** लोक सेवा आयोग की स्थापना किस सन् में हुई?

क. 1924 ख. 1948

ग. 1926 घ. 1928

**3.** 1935 में कौन-सा ऐतिहासिक अधिनियम आया?

क. भारत परिषद अधिनियम ख. भारत सरकार अधिनियम

ग. भारत लोक सेवा अधिनियम घ. इनमें कोई नहीं।

**4.** 1966 में कौन-सा आयोग गठित किया गया?

क. प्रशासनिक सुधार आयोग ख. इस्लिंगटन आयोग

ग. ली आयोग घ. एचीसन आयोग

**5.** गोरवाला और ऐपेल्बी को किस प्रधानमंत्री ने प्रशासनिक अध्ययन के लिये आमंत्रित किया?

क. लाल बहादुर शास्त्री ने ख. मोरारजी दिसाई ने

ग. श्रीमती इन्दिरा गांधी ने घ. पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने

## 7.11 सारांश

- लोक सेवाओं के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया गया है-प्राचीन भारत में वैदिक काल से लेकर कौटिल्य के काल तक, मध्य युग में इस्लामी काल से लेकर मुगल शासन काल तक, तथा आधुनिक काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल से लेकर ब्रिटिश काल तक यह विकास चला।
- लोक सेवाओं का वर्तमान काल 1935 से आरंभ होकर, स्वाधीनता के वर्षों से गुजरते हुये अब तक यथावत् चल रहा है। 1858 से लेकर आज तक विकास की जो कहानी है, इसे लोक सेवा या प्रशासनिक सुधारों की कहानी माना जा सकता है। 1831, 1961, 1970, 1876 से चल कर 1918, 1922, 1923, 1926 और 1935 तक सुधारों को सतत् विकास का सिलसिला चलता रहा। आज भी यह विकास जारी है, नई संस्थाओं ने जन्म लिया है, नये प्रशासनिक विचार उभरे हैं, नई चुनौतियाँ सामने आयी हैं और उनका पूरे साहस से समाधान खोजा गया है।
- 1935 से लेकर आज तक अनेक प्रशासनिक संस्थाओं का विकास हुआ है-केन्द्रीय सचिवालय, वित्त प्रशासन, लोक सेवा आयोग, भारतीय विदेश विभाग, भारतीय वन विभाग आदि प्रमुख हैं।
- लोक सेवा का आधुनिक इतिहास ब्रिटिश शासन से आरंभ होता है। इसलिये आज भारत का लोकसेवा का जो स्वरूप है, वह ब्रिटिश काल की विरासत है, जिसकी अवहेलना करके नया भारत एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता है। वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवेलिस, लार्ड क्लाइव, लार्ड वैलेजी तथा लार्ड मैकाले जैसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरलों में भारत में प्रशासनिक और लोक सेवाओं की बुनियाद रखी।
- इतना ही नहीं 1886 में भारतीय वायसराय लार्ड डफरिन ने चार्ल्स एचिसेन के माध्यम से लोक सेवा को भारतीय लोक सेवा, प्रान्तीय सेवा और अधीनस्थ सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया। तत्पश्चात् 1918 में माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर लोक सेवा की परीक्षा भारत और इंग्लैण्ड में एक साथ होने लगीं, वरिष्ठ पदों पर एक तिहाई भर्ती भारतीयों के लिये सुरक्षित की गई। 1919 के भारत अधिनियम इन शर्तों से लागू किया गया।
- स्वतंत्र भारत लोक सेवा की तस्वीर धीरे-धीरे बदलने लगी। आई.सी.एस. के स्थान पर आई.ए.एस. तथा आई.पी.एस. ने स्थान ग्रहण कर लिया।

- गोरवाला और ऐपल्बी की सिफारिशों के आधार पर 1954 में दिल्ली में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई। 1970 में कार्मिक विभाग का गठन किया गया तथा 1956 में सतर्कता सम्भाग की स्थापना की गयी। इसी वर्ष में वेतन आयोग और प्रशासनिक सुधार आयोग अस्तित्व में आया।
- स्वतंत्र भारत में लोक सेवाओं के सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया। भर्ती के नियम तय किये गये, प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई, नौकरी की शर्तों को तैयार किया गया तथा लोक सेवाओं को वर्गीकृत किया गया।
- लोक सेवा के विकास के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। आज के मध्य वर्गीय लोक सेवक समाज की उन सभी बुराईयों का प्रतिबिम्ब है, जो किसी भी समाज को खोखला करती हैं-जातिवाद, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, हिंसा, आपराधीकरण तथा भ्रष्टाचार और इन सब बातों में राजनीतिज्ञों, अपराधियों और नौकरशाही का गठजोड़-वे पहलू हैं जो देश के विकास में बाधा डालते हैं।

## 7.12 शब्दावली

द्विविभक्तिकरण (dichotomy)- लोक प्रशासन में द्विविभक्तिकरण शब्द का प्रयोग प्रशासन और राजनीति के विभक्तिकरण से लिया जाता है। यह एक विवादास्पद विषय है, जिसके बारे में राजनीति शास्त्री एवं प्रशासनिक चिन्तक एकमत नहीं हैं। कुछ चिन्तक राजनीति और प्रशासन के गठजोड़ को एक बुराई मानते हैं और कुछ एक अनिवार्यता। वेबर प्रशासन और राजनीति के द्विविभक्तिकरण का समर्थक है।

ताज या क्राउन (Crown)- साधारण अर्थ में ताज वह आभूषण है जो राजा या रानी पहनते हैं। लेकिन संवैधानिक अर्थ में ताज एक संस्था है, जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से इंग्लैण्ड के राजतंत्र से है। राजा अथवा रानी नशवर है लेकिन ताज का अस्तित्व बना रहता। मशहूर कहावत है कि ज्ञपदह पे कमंकए स्वदह सपअम जीम ़पदह इसका अर्थ है कि राजा शरीर के रूप में तो मर गया, लेकिन राजा राजतंत्र की संस्था के रूप में जीवित है।

## 7.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** क, **2.** ग, **3.** ख, **4.** क, **5.** घ

## 7.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. शर्मा, हरिशचन्द्र: प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, 971
2. सुब्रह्मण्यम, बी: भारतीय प्रशासन, 1974
3. पायली, एम0वी0: भारतीय संविधान, 1966
4. अवस्थी एवं महेशवरी: लोक प्रशासन, 1992
5. फड़िया, बाबू लाल: भारत में लोक प्रशासन, 1993


## 7.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. Avasthi and Avasthi : Indian Administration.
2. Ravindara Prasad, d : Administrative Thinkers.
3. fffPiner and Presthus : Public Administration.
4. Gladden, G.E. : Dynamics of Public Administration, 1971

## 7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम क्या है? उसमें लोक सेवी वर्ग की किन विशेषताओं पर बल दिया गया है?
2. ब्रिटिश काल में लोक सेवा के विकास के लिये वारेन हेस्टिंग्ज-कार्न वलिस, लार्ड क्लाइव तथा लार्ड मैकाले जैसे गवर्नर जनरलों ने क्या कदम उठाये?
3. गोरवाला और ऐपलबी ने लोक सेवा के सुधार के लिये क्या सिफारिशें की?
4. स्वतंत्रता के बाद लोक सेवा के सन्दर्भ में आई.सी.एस. के स्थान पर कौन सा कैडर स्थापित किया और कितन वर्गों में विभाजित किया गया?
5. स्वतंत्र भारत में लोक सेवकों तथा राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध कैसे हैं? इनका नकारात्मक स्वरूप क्या है?

# इकाई- 8 लोक सेवाओं का वर्गीकरण

**इकाई की संरचना**

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 लोक सेवा में वर्गीकरण का अर्थ
8.3 वर्गीकरण के सिद्धान्त
8.4 पद वर्गीकरण कर उपयोगिता
8.5 वर्गीकरण की शर्तें और नकारात्मक पहलू
8.6 भारत में पद वर्गीकरण: ब्रिटिश संदर्भ
8.7 लोक-सेवा वर्गीकरण: भारतीय संदर्भ
8.8 पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन: ग्रेट-ब्रिटेन-फ्रांस
8.9 पद वर्गीकरण का मूल्यांकन
8.10 सारांश
8.11 शब्दावली
8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.15 निबन्धात्मक प्रश्न

## 8.0 प्रस्तावना

लोक सेवा आधुनिक प्रशासन का आधार है। लोक सेवा को तार्किक और वैज्ञानिक बनाने का समय-समय पर प्रयास होता है। पद वर्गीकरण इन्हीं प्रयासों का एक नतीजा है। प्रशासनिक व्यवस्था में 'पद' का बहुत महत्व है। सारी शक्तियाँ, अधिकार, उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य पद से सम्बन्धित हैं। जो व्यक्ति पद को ग्रहण करता है, उसको उस उत्तरदायित्व और कर्तव्य को निभाना होता है, जो पद में विद्यमान है। पदासीन व्यक्ति पद छोड़ सकता है, और वह महत्वहीन बन जाता है, लेकिन पद बना रहता हे। उसका महत्व कम नहीं होता हैं। प्रशासन को अधिक तार्किक बनाने के लिये, तथा पदों में भिन्नता लाकर पदों की पहचान बनाए रखने के लिए पद वर्गीकरण की व्यवस्था की गई है। आज यह व्यवस्था सभी विकसित और विकासशील देशों की प्रशासनिक पहचान है। इस इकाई में पद वगीकरण के अर्थ, उसकी, विशेषता, उपयोगिता तथा उसके नकारात्मक पहलुओं की विवेचना की गई है। भारत, ब्रिटेन तथा फ्रांस में वर्गीकरण के व्यवहारिक पहलुओं पर भी नजर डाली गई है।

## 8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

- लोक सेवा की प्रशासन व्यवस्था में पद वर्गीकरण का अर्थ, महत्व एवं उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- पद वर्गीकरण के सिद्धान्तों, शर्तों और उसकी सकारात्मक भूमिका की जानकारी ले सकेंगे।
- भारत लोक सेवाओं के क्षेत्र में पद वर्गीकरण की क्या स्थिति है, यह जान पायेंगे।
- भारत, ब्रिटेन तथा फ्रांस के पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन संक्षेप में कर सकेंगे।

- पद वर्गीकरण के नकारात्मक पहलुओं को भी समझ सकेंगे।

## 8.2 लोक सेवा में वर्गीकरण का अर्थ

भारत में लोक सेवाओं के विकास के साथ अनेक बाधायें भी बनी रहती हैं। उन्हीं में से एक वर्गीकरण की समस्या है। 1992 तक भारत में तीन अखिल भारतीय सेवायें, 51 केन्द्रीय सेवा ग्रुप ''ए'' तथा अनेक राज्य स्तरीय सेवाएं थीं।

भारतीय प्रशासनिक संरचना में प्रशासनिक अधिकारियों की एक निश्चित पदसोपनीयता के अनुसार परिभाषित स्थिति है। इन अधिकारियों के अलग-अलग प्रकार के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व होते हैं। किसी भी पद का आकार व्यक्ति न होकर कर्तव्य व उत्तरदायित्व होता है। व्यक्ति पद रिक्त कर सकता है, तब वह व्यक्ति शून्य हो जाता है, लेकिन पद का महत्व बना रहता है। पद ही किसी को जिलाधीश, कमिश्नर, अधीक्षक या लिपिक बनाता है। रिक्त पद अपनी महत्ता नहीं खोता है, रिक्त व्यक्ति महत्वहीन हो जाता है।

जिन लोक सेवाओं के एक समान उत्तरदायित्व और कर्तव्य होते हैं, उन्हें एक वर्ग या श्रेणी में रखा जाता है। दूसरी प्रकृति के पदों पर आसीन सेवियों को यदि उनमें समानता है तो उनके लिये दूसरी श्रेणी होती है। यहाँ भी मापदण्ड उत्तरदायित्व और कर्तव्य होते हैं। अतः अनिवार्य है कि प्रशासनिक कार्यों की विभिन्न के आधार पर सेवाओं को भी श्रेणीबद्ध किया जाये। इसी विभिन्नता को स्पष्ट रूप से पहचानने के लिये सेवाओं का वर्गीकरण अनिवार्य हो जाता है। यही लोक सेवाओं का वर्गीकरण है।

वर्गीकरण की परिभाषा: लगभग सभी विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं को वर्गीकृत किया गया है। प्रशासन के इस बिन्दु का इतना अधिक महत्व है कि अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने शब्द 'वर्गीकरण' की व्याख्या करने तथा उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए डिमांक तथा डिमांक के अनुसार लोक प्रशासन में ''वर्गीकरण का अर्थ है, तुलनात्मक कठिनाइयों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार पदसोपनीयता के आधार पर पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।'' दूसरी ओर पिफ्नर ने लिखा ''वर्गीकरण से हमारा तात्पर्य यह है कि समान कार्य तथा समान उत्तरदायित्व वाले पद एक ही श्रेणी में रखें जायें, चाहे किसी विभाग या सेवा से जुड़े हुये हों।'' प्रो0 व्हाइट के अनुसार सेवा की कार्मिक आवश्यकता जिस संरचना पर टिकी होती है, वह पदवर्गीकरण की योजना कही जा सकती है। जब लोक सेवाओं में उत्तरदायित्वों और कार्यों का तार्किक विश्लेषण किया जाता है, तब जो निष्कर्ष निकलकर आता है, उसे वर्गीकरण कहा जाता है। व्हाइट के अनुसार वर्गीकरण के माध्यम से बहुत गुंथे हुए पद स्पष्ट हो जाते हैं। लोक सेवा बड़ी विषम होती है, उसकी जटिलता को सरलता में बदलना वर्गीकरण का कम है। इससे क्रमिक स्थितियाँ निर्धारित होती हैं, जिसके द्वारा एक नया कार्मिक अगल सोपानों पर आगे बढ़ता है।

पदों की विशेषता में पदों का सम्बन्ध उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों से है। इसमें योग्यताओं का भी समावेश है। वर्गीकरण सदा पदों का होता है और पद सदा विद्यमान रहता है, भले ही पद रिक्त रहे। वर्गीकरण व्यक्ति के महत्व को नहीं दर्शाता है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन सा व्यक्ति किसी पद पर कार्यरत है। वर्गीकरण में यह बात भी सारहीन होती है कि पदासीन व्यक्ति की योग्यता क्या है, और उसको क्या वेतन मिल रहा है। वेतन का अन्तर श्रेणी का अन्तर नहीं होता है।

आज प्रशासनिक दृष्टि से विकसित लेकिन विषम समाज में वर्गीकरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। लोक सेवकों की एक लम्बी फौज है, इसलिए अनिवार्य है कि उन्हें श्रेणीबद्ध करके पंक्तिबद्ध किया जाए ताकि लोक सेवियों को पहचानने में सुविधा हो। लाखों कर्मचारियों के बारे में अलग-अलग विचार करना संभव नहीं है। प्रो0 व्हाइट का इस सम्बन्ध में कहना है ''नियुक्ति, वेतन का प्रश्न, पदोन्नति की पंक्ति, स्थानान्तरण की आवश्यकताओं तथा

प्रतिदिन के विषय को तुरन्त एवं सावधानी से सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि पदों को वर्गों में समूहीकृत कर दिया जाये।''

## 8.3 वर्गीकरण के सिद्धान्त

वर्गीकरण लोक सेवाओं का महत्वपूर्ण पहलू है। यह कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर किया जाता है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. **सेवा के आधार पर-** इसके अन्तर्गत विभिन्न लोक सेवाओं के आधार पर तरह-तरह के वर्गों का निर्माण किया जाता है; जैसे भारतीय विदेश सेवा, भारतीय वन सेवा, भारतीय पुलिस सेवा आदि।
2. **किसी पद या विषय या कर्मक्षेत्र-** इस सिद्धान्त के अनुसार पदों को कार्यों के क्षेत्र से जोड़ा जाता है अथवा उस विषय को ध्यान में रखा जाता है, जिसका सम्बन्ध पद से होता है। इन दो बातों के आधार पर (कार्यक्षेत्र या विषय) पद वर्गीकरण किया जाता है। जैसे- शिक्षा, राजस्व, स्वास्थ्य, समाज कल्याण इत्यादि।
3. **नियंत्रण एवं निरीक्षण का मापदण्ड-** इस सिद्धान्त का सम्बन्ध संगठन की पदसोपनीय व्यवस्था से है। जिन पदों का ऊपर से अधिक नियंत्रण और निरीक्षण हो, उनको निम्न स्तर का पद माना जाता है, लेकिन निरीक्षण की यदि यह मात्रा कम से कम हो तब वे पद उच्च श्रेणी के माने जाते हैं।
4. **उत्तरदायित्व का सिद्धान्त-** जैसा कि लिखा जा चुका है, पद का सम्बन्ध कर्तव्य और उत्तरदायित्व से है और जिस अधिकारी को अधिक उत्तरदायित्व का पद दिया जाता है, वह अधिकारी उतना ही बड़ा होगा और उसके अधिकार और शक्तियाँ उतनी ही अधिक होंगी।
5. **कार्य की प्रकृति-** पद का सम्बन्ध कार्यो से होता है। प्रत्येक कार्य की एक प्रकृति होती है। कुछ कार्य बड़े विषम और जटिल होते हैं, लेकिन कुछ अपनी प्रकृति से सरल होते हैं। सरल कार्य का पद छोटा माना जाता है, और जटिल कार्य का पद बड़ा माना जाता है। अतः जटिल पद पर आसीन अधिकारी बड़ा माना जाता है और सरल पद का कर्मचारी छोटा माना जाता है।
6. **योग्यता के आधार पर-** अनेक ऐसे पद हैं जिनके लिये ऊँची योग्यता, शिक्षा और अनुभव निर्धारित है, ऐसे पद बड़े होंगे और उन पर पदासीन अधिकारी भी ऊँचे माने जायेंगे। लेकिन सामान्य योग्यताओं वाले पद नीचे माने जायेंगे।

उक्त इन छः सिद्धान्तों के आधार पर ही भारत में लोक सेवाओं के पदों को वर्गीकृत किया गया है।

## 8.4 पद वर्गीकरण की उपयोगिता

वास्तविकता तो यही है कि किसी देश का शासन पूरी तरह लोक प्रशासन पर टिका होता है। इस तथ्य को सब से पहले वुडरो विल्सन ने अपने प्रसिद्ध प्रबन्ध 'दि स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में स्वीकार किया था। विल्सन प्रशासन को वैज्ञानिक बनाना चाहता था। उसका यह निबन्ध ही लोक प्रशासन के शास्त्र का आरंभ माना जाता है। मैक्स वेबर दूसरा चिन्तक है, जो नौकरशाही को लोक प्रशासन की आत्मा मानता है। उसने नौकरशाही को तार्किकता की नजर से देखा और उसे एक ओर कानून से जोड़ा तो दूसरी ओर तार्किकता से।

भारत में पद वगीकरण का विचार समान कार्य के लिये समान वेतन के सिद्धान्त के साथ पनपा। वर्गीकरण सामान्यतः मनमाने व्यवहार पर एक प्रहार है। इसमें न्याय की भावना है। यह सब को लाभ पहुँचाता है। लोक सेवा में ये एक मनोवैज्ञानिक उपचार है। टकराव की संभावना को दूर करता है। मनमानी से भ्रम पैदा होता है, जो प्रशासन के लिये घातक है। वर्गीकरण आर्थिक नियंत्रण के लिये जरूरी है। इस पद्धति के निम्नलिखित उपयोगिता है-

1. **भर्ती कर सरलीकरण-** विभिन्न विभागों में कितनी भर्ती होनी है, वर्गीकरण से यह बात सरलता से जानी जा सकती है। भर्ती संस्थान विभाग की इस मांग के अनुसार भर्ती के लिये अनिवार्य कदम उठाता है।
2. **प्रशासनिक स्पष्टता-** वर्गीकरण से प्रशासन क्रमबद्धता और व्यवस्था के साथ चलता है। इस सिद्धान्त से उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों को समझने में आसानी रहती है तथा व्यवस्था और अनुशासन बना रहता है।
3. **पदोन्नति में सरलीकरण-** वर्गीकरण से श्रेणियों की क्रमिकता का पता रहता है। इस तरह यह जानना आसान होता है कि किस वर्ग के किस कर्मचारी को किस श्रेणी पर पदोन्नत करना है। अक्सर पदोन्नति स्वतः नहीं होती, योग्यता और काम के प्रति निष्ठा अपनी भूमिका अदा करती है। यह सिद्धान्त व्यक्ति को पदोन्नति के लिये चुस्त दुरूस्त रखता है।
4. **बजट बनाने में सुविधा-** विभागों को यह मालूम होता है कि किसी सम्भाग में कितने कर्मचारी हैं और उनका पद एवं वेतन क्या है। वर्गीकरण के आधार पर वार्षिक बजट का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।
5. **लोक सेवियों में सहयोग एवं समन्वय-** वर्गीकरण से प्रत्येक वर्ग के कर्मियों में यह एहसास पैदा होता है कि वे प्रशासनिक सेवाओं के संदर्भ में एक ही परिवार के सदस्य हैं। उनके हित समान हैं और वे अकेले नहीं हैं।
6. **कर्तव्यों तथा दायित्वों का स्पष्ट विभाजन-** वर्गीकरण से लोक सेवाओं के प्रत्येक पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों को निश्चित करने में सुविधा होती है और कार्य-सम्पन्नता के मापदण्ड तय किये जा सकते हैं।

उक्त बिन्दुओं से यह सिद्ध होता है कि किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में प्रशासन का कार्य बिना वर्गीकरण के संचालित नहीं किया जा सकता। फाइनर के अनुसार ''सभी देशों का अनुभव बताता है कि प्रशासनिक वर्गीकरण का क्या महत्व है। बिना वर्गों या श्रेणियों के न तो तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है और न ही पदों और पदासीन अधिकारियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।''

## 8.5 वर्गीकरण की शर्तें और नकारात्मक पहलू

1. **लोक सेवाओं में वर्गीकरण-** लोक सेवाओं में वर्गीकरण एक पेंचीदा विषय है। थोड़ी सी असावधानी पूरी प्रशासनिक संरचना को बिगाड़ सकती है। अतः सब से पहले वर्गीकरण की मांगों को समझना होगा। वर्गीकरण करते समय जिन बातों को ध्यान में रखता होगा, वे इस प्रकार हैं-
    - वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का उलझाव न हो। गुंथा हुआ वर्गीकरण भ्रम पैदा कर सकता है।
    - प्रत्येक श्रेणी या वर्ग की स्पष्ट रूप से अलग-अलग व्याख्या होनी चाहिये।
    - पदोन्नति एक बड़ा मनोवैज्ञानिक विषय है। पदोन्नति के नियमों को स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।
    - कर्तव्यों एवं दायित्वों को श्रेणीबद्ध करना चाहिये। ऐसा विभाजन भ्रमित करने वाला न हो।
    - शैक्षणिक योग्यताओं, अनुभव और आयु का निर्धारण स्पष्ट नियमों के अनुसार तय होना चाहिये।
    - पदो, वर्गों और सेवाओं को अलग-अलग शीर्षकों में परिभाषित होने चाहिए।
2. **वर्गीकरण का नकारात्मक पहलू-** यद्यपि वर्गीकरण लोक सेवा की एक अनिवार्य शर्त है, लेकिन यह सिद्धान्त दोष मुक्त नहीं है। इसके अनेक गुण तथा विशेषताएं हैं, लेकिन इसकी निम्नलिखित हानियाँ भी हैं-

- प्रत्येक पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण और उनका मूल्यांकन संभव नहीं है। भारत जैसे देश के संदर्भ में यह आलोचना सत्य है। अप्रथक नौकरशाही में प्रथक या संगठित पद नहीं हो सकते।
- वर्गीकरण के कारण कर्मचारियों में यदि कुछ समय के लिए फेर बदल किया जाता है तो कर्मचारी उसका विरोध करते हैं। वे अपने पद और कर्तव्यों को कानूनी अधिकार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनमें 'लकीर के फकीर- वाली भावना आ जाती है।
- वर्गीकरण मनुष्य को एक मशीन या वस्तु बना देता है। इसमें न तो व्यक्ति के गुणों का ध्यान रखा जाता है और न उनकी भावनाओं का। इस तरह लोक सेवक हतोत्साहित रहते हैं और उनका मनोबल टूटता रहता है। यह स्थिति अच्छी प्रतिभा और बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों को निराश करती है। इस तरह प्रशासन में शिथिलता आती है और कार्यकुशलता का ह्रास होता है।
- विकासशील देशों में विकास की गति तेज होती है। इसी गति के अनुपात में लोक-सेवकों के दायित्वों में परिवर्तन लाना जरूरी होता है, जो एक जटिल काम है।

उक्त दोषों का यह अर्थ नहीं है कि वर्गीकरण अनावश्यक है। लगभग सभी प्रशासनिक विचारकों ने लोक प्रशासन में वर्गीकरण को अनिवार्य बताया है। विशेष रूप एल.डी. व्हाइट तो पद-वर्गीकरण को ''जीवनवृत्ति के रूप'' में देखते हैं।

3. **पद-वर्गीकरण-** पद-वर्गीकरण सेवी वर्ग प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन सभी देशों में पद-वर्गीकरण के आधार एक समान नहीं हैं। फ्रांस का उदाहरण दिया जा चुका है। अन्य देशों में दो प्रमुख पद वर्गीकरण है- (अ) स्थिति वर्गीकरण (Rank Classification), एवं (ब) दायित्व वर्गीकरण (Duties Classification), भारत, पाकिस्तान, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, मलेशिया आदि देशों में स्थिति वर्गीकरण प्रचलित है। अधिकारी का दर्जा या उसकी व्यक्तिगत स्थिति-स्थिति वर्गीकरण का आधार होता है। यहाँ पद सम्बन्धी दायित्व या कर्तव्य आधार नहीं होता है। कनाडा, अमरीका, फिलिपाइन्स, तायवान में दायित्व वर्गीकरण प्रचलित है। दायित्व वर्गीकरण के समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को अपनाया जाता है।

## 8.6 भारत में पद वर्गीकरण: ब्रिटिश संदर्भ

पद वर्गीकरण भी भारत को अंग्रेजों से विरासत में मिला है। प्राचीन या मुगल काल में पद-वर्गीकरण की कोई परम्परा नहीं थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में कर्मियों को दो भागों में विभाजित किया गया था-एक भाग था संविदाबद्ध (covenanted) लोक सेवकों का और दूसरा भाग था, असंविदाबद्ध (Uncovenanted) कर्मियों का। एचीसन आयोग (1886-87) की सिफारिशों के अनुसार लोक सेवकों को तीन वर्गों में बांटा गया- (क) इम्पीरियल सेवा, (ख) प्रान्तीय सेवा, तथा (ग) अधीनस्थ सेवा। इस वर्गीकरण की कमियों को देखते हुए इस्लिंग्टन आयोग (1912-15) ने त्रिवर्गीय वर्गीकरण को समाप्त कर दिया और लोक सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया-उच्च वर्ग सेवा तथा निम्न वर्ग सेवा।

सन् 1926 में 'इम्पीरियल' शब्द के स्थान पर 'भारतीय' शब्द का प्रयोग आरंभ हुआ। साथ ही 'उच्च' तथा 'निम्न' के स्थान पर 'प्रथम श्रेणी' तथा 'द्वितीय श्रेणी' कहा जाने लगा। अब दो प्रकार के लोक सेवक थे- 'भारतीय' (Indian) वह लोक सेवक कहलाए गये जो भारत मन्त्री के द्वारा नियुक्त किए जाते थे और दूसरे 'केन्द्रीय' लोक सेवक, जो गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होते थे। एक ओर विशेषता यह थी 'राजपत्रित'

(Gazetted) और 'अराजपत्रित' (non-gazetted) के आधार पर भी वर्गीकरण था। यह परम्परा आज भी भारत में चल रही है।

सन् 1930 के बाद भारत सरकार की सेवाओं का वर्गीकरण 'अखिल भारतीय' तथा 'केन्द्रीय' वर्गों में किया गया। अखिल भारतीय सेवा में दो सेवायें प्रमुख थीं- इण्डियन सिविल सर्विस (I.C.S.) तथा इण्डियन फॉरेन सर्विस (I.F.S.) केन्द्रीय सेवाओं को प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, अधीनस्थ सेवा और निम्न सेवा में विभक्त किया गया। प्रान्तों में भी वर्गीकरण का यही आधार रखा गया।

स्वतंत्रता के बाद यद्यपि वर्गीकरण के प्रचलित स्वरूप को नकारा नहीं गया, लेकिन लोक-सेवाओं की श्रेणियों में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। आज केन्द्रीय सरकार में उच्च सेवाओं की दो श्रेणियाँ हैं- अखिल भारतीय सेवायें, एवं केन्द्रीय लोक सेवायें। वर्तमान भारत में सेवाओं को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है- अखिल भारतीय सेवायें; केन्द्रीय सेवाएं- इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी सेवायें शामिल हैं; राज्य सेवाएं, इनमें भी प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणियाँ आती हैं; केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं, यहाँ भी सेवाओं का चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है; तथा विशिष्ट सेवाएं, जिनमें तकनीकी ज्ञान या विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है।

## 8.7 लोक-सेवा वर्गीकरण: भारतीय संदर्भ

पिछले पन्नों में भारत में सेवाओं के वर्गीकरण के संक्षेप में समझाया गया। जिसके अनुसार अखिल भारतीय सेवायें; केन्द्रीय सेवाएं; राज्य सेवाएं; केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं तथा विशिष्ट सेवाओं का उल्लेख किया गया है। आगे हम विस्तार से इन सेवाओं को समझाने का प्रयास करेंगे-

1. **अखिल भारतीय सेवाएं-** अखिल भारतीय सेवायें संविधानिक मान्यता रखती हैं। संविधान में विशेष रूप से भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा का उल्लेख किया गया है। संविधान ने भारतीय संसद को यह भी अधिकार दिया हे कि वह कानून के दायरे में अन्य सेवाओं की भी स्थापना करे। इस अधिकार के अन्तर्गत भारतीय संसद ने 'भारत वन सेवा' की स्थापना की है।

   अखिल भारतीय सेवा प्रथम श्रेणी की सेवा है। इसके सदस्यों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन तथा अन्य शर्तों का निर्धारण केन्द्रीय सरकार करती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए भी केन्द्रीय सरकार को ही अधिकार हे।

   साधारणतयः अखिल भारतीय सेवायें अपने-अपने कार्यकाल के अधिकतर समय में राज्य सरकार की सेवा में रहती हैं। वस्तुतः इनकी नियुक्ति विभिन्न राज्यों के काडरों अथवा संवर्गों पर होती हैं। जब केन्द्रीय सरकार को इन अधिकारियों की सेवा की आवश्यकता होती है तो वे राज्य सरकारों से इन्हें उधार लेती हैं। चौथे वेतन आयोग ने अखिल भारतीय सेवाओं को छह श्रेणियों में बाँटा था। यह हैं-

   - उच्चतम वेतनमान- स्थिर या फिक्स्ड-सचिव
   - उच्चतम वेतनमान- स्थिर या फिक्स्ड-अतिरिक्त सचिव
   - उच्चतम वेतनमान-संयुक्त सचिव
   - चयनित वेतनमान
   - वरिष्ठ वेतनमान
   - कनिष्ठ वेतनमान

प्रारम्भ से सभी लोक सेवक अधिकारी कनिष्ठ वेतनमान में ही नियुक्त किये जाते हैं। धीरे-धीरे उन्हें वरिष्ठ वेतनमान तथा उच्चतम वेतनमान दिया जाता है। लेकिन यह पदोन्नति नहीं कही जा सकती।

2. **केन्द्रीय सेवाएं-** जो अधिकारी भारत सरकार (केन्द्रीय सरकार) के विभिन्न विभागों में कार्य करते हैं, उनका सम्बन्ध केन्द्रीय सेवाओं से होता है। केन्द्रीय सेवायें दो श्रेणियों में विभक्त होती हैं-प्रथम श्रेणी की सेवायें तथा द्वितीय श्रेणी की सेवायें। केन्द्रीय सेवाओं की प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत लगभग 33 सेवायें आती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- (1) भारतीय लोक-परीक्षण एवं लेखा से; (2) भारतीय विदेश सेवा; (3) भारतीय डाक सेवा; (4) भारतीय डाक-तार संचार सेवा; (5) केन्द्रीय इंजीनियरिंग सेवा; (6) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा; (7) केन्द्रीय राजस्व सेवा; (8) भारतीय विदेश सेवा; (9) केन्द्रीय सूचना केन्द्र; तथा (10) भारतीय सांख्यिकी सेवा। अन्य 23 सेवायें भी महत्वपूण हैं। यह सेवायें प्रथम श्रेणी में आती हैं।
   द्वितीय श्रेणी की केन्द्रीय लोक सेवायें 24 वर्गों में विभाजित हैं। इन में प्रमुख हैं- (1) केन्द्रीय सचिवालय सेवा; (2) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा; (3) आय-कर सेवा; (4) भारतीय जलवायु सेवा; (5) केन्द्रयीय एक्साइज सेवा; (6) सीमा शुल्क सेवा; (7) भारतीय सर्वेक्षण सेवा; (8) केन्द्रीय यांत्रिक सेवा; (9) सामान्य केन्द्रीय सेवा; तथा (10) भारतीय भू-सर्वेक्षण।
3. **राज्य सेवाएं-** ऐसी लगभग 15 सेवायें हैं (चौथे वेतन आयोग के अनुसार) इनमें (1) राज्य प्रशासनिक सेवा; (2) राज्य पुलिस सेवा; (3) राज्य शिक्षा सेवा; (4) राज्य सचिवालय; (5) राज्य स्वास्थ्य सेवा; (6) राज्यकृषी सेवा; (7) राज्य श्रम सेवा; (8) राज्य वन सेवा; (9) राज्य उद्योग सेवा; तथा (10) राज्य सिंचाई सेवा प्रमुख हैं।
4. केन्द्रीय सचिवालयीय सेवाओं को अलग दर्जा दिया गया है। इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के अधिकारी व कर्मचारी आते हैं।
5. विशिष्ट सेवाओं में वे सेवायें हैं जिनमें तकनीकी ज्ञान या विशेष बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है। तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की सेवायें (केन्द्रीय) अधीनस्थ सेवायें कही जाती हैं। यह विभागों के सामान्य कार्यो का संचालन करती हैं। उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करना इनका उत्तरदायित्व है।

## 8.8 पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन: ग्रेट-ब्रिटेन-फ्रांस

लोक सेवाओं का विचार ही ब्रिटिश प्रशासन की देन है, क्योंकि यहाँ प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में लोक सेवाओं की व्यवस्था है। वर्तमान में ब्रिटिश लोक सेवाओं को छः वर्गों में विभक्त किया गया है। यह इस प्रकार हैं-

1. **प्रशासनिक वर्ग-** यह भारतीय प्रशासनिक सेवा के समान है और सम्पूर्ण ब्रिटिश लोक सेवा का आधार है। इसमें जो अधिकारी आते हैं, उनमें स्थाई सचिव से लेकर सहायक प्रधान प्रमुख हैं। अपने कार्यों और कर्तव्यों से यह वर्ग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रशासनिक स्तर पर निर्णय-निर्माण, नीति-निर्धारण और विभागीय संचालन का उत्तरदायित्व इसी वर्ग पर है। यह अधिकारी कठिन प्रतियोगिता परीक्षा से गुजर कर चयनित होते हैं। 25 प्रतिशत पदों की भर्ती पदोन्नति द्वारा होती है।
2. **अधिशासी वर्ग-** इस वर्ग के लोक सेवकों का मुख्य कार्य दिन प्रतिदिन के सरकारी कामकाज का निस्तारण करना है। राजस्व संग्रह, क्षेत्रीय और स्थानीय कार्यालयों के प्रबन्ध आदि का दायित्व विशेष रूप से अधिशासी वर्ग पर ही होता है। इस वर्ग के अधिकारियों को कुछ प्रशासनिक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इस तरह प्रशासनिक कार्यों तथा दिन प्रतिदिन के कार्यों में अन्तर प्रायः बहुत कम होता है। समाज के आवश्यकताओं को देखते हुए सरकारी कार्य क्षेत्र का विस्तार हुआ है। काम-काज में जटिलता भी आई है और इस तरह प्रशासनिक वर्ग तथा अधिशासी वर्ग के कार्यो का अन्तर घटा है।
3. **विशिष्ट वर्ग-** इस वर्ग में व्यावसायिक, वैज्ञानिक और तकनीकी स्टाफ समाविष्ट होता है। इस वर्ग की बौद्धिक क्षमता एवं योग्यता सम्पन्न व्यक्ति जैसे वैरिस्टर, सॉलिस्टर, इन्जीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक,

लाइब्रेरियन, सहायक शिल्पी आदि आते हैं। यह वर्ग प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर चयनित न होकर मान्य योग्यता, विशिष्ट प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर साक्षातकरी के माध्यम से चुना जाता है।

4. **लिपिक वर्ग-** इस वर्ग में प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर 16-17 वर्ष के युवक-युवतियों को चुना जाता है। इनका काम है रिकॉर्ड रखना, नियमों के अनुसार पत्राजात, दावों आदि की जाँच पड़ताल करना। अधिकार वर्ग के आदेशानुसार दिन प्रतिदिन के कार्यों का निपटारा करना, तथा तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करना इनका विशेष कार्य है।
5. **लेखक सहायक वर्ग-** इस वर्ग में सहायक लिपिक, टाइपिस्ट और कम्प्यूटर और डुप्लीकेट मशीनें चलाने वाले होते हैं।
6. **सन्देशवाहक एवं निम्न वर्ग-** इस वर्ग में संदेशवाहक, दफ्तरी, सफाई कर्मचारी आते हैं।

पद वर्गीकरण के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से फ्रांस में लोक सेवाओं के पद वर्गीकरण का बहुत महत्व है। फ्रांस में लोक सेवा संरचना की चार इकाईयाँ है-श्रेणियाँ, कोप्स, सेवायें तथा ग्रेड्स।

श्रेणियाँ प्रशासन में मुख्य रूप से व्यक्ति के शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर आधारित होती हैं तथा देश के प्रशासन में व्यापक भूमिका निभाती हैं।

कोर्प्स एक व्यापक नाम है। सभी लोक सेवक जिस सेवा के आजीवन सदस्य बनते हैं, वह सेवा एक कोर्प्स का अंग होती है। कोर्प्स एक फ्रेंच शब्द है जो वर्गों का पर्यायवाची हो सकता है। लेकिन कोर्प्स की तुलना में वर्गों का महत्व कम होता है। ऐसे वे तमाम समूह जिन में लोक सेवाओं के समान ग्रेड्स तथा समान नियमों और योग्यताओं के द्वारा प्रशासित होते हों, वे कोर्प्स की परिभाषा में आते हैं। प्रत्येक कोर्प्स एक सील बन्द इकाई के समान है। एक सेवा में लम्बरूप में विभिन्न कोर्प्स की एक श्रृंखला होती है। ग्रेड्स की इकाईयाँ हैं, जिन का अस्तित्व प्रत्येक कोर्प्स में होता है।

1946 के अधिनियम को फ्रांस की लोक सेवाओं के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम माना जाता है। इस अधिनियम ने जिन चार प्रकार की सेवाओं का उल्लेख किया है, उनमें से दो व्यावसायिक वर्ग की थी। इनके प्रथम को असैनिक प्रशासक तथा दूसरे को प्रशासनिक सचिव कहा गया। इन दोनों सेवाओं के नीचे अधिकारियों के दो वर्ग हैं। इन दोनों वर्गों के कर्मचारी लिपिक वर्ग तथा संदेशवाहक वर्ग के होते हैं। फ्रांस की उच्चतम लोक सेवा का स्वरूप इस प्रकार हैं-

1. **असैनिक प्रशासक-** इस वर्ग की संरचना ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासनिक वर्ग के मॉडल को ध्यान में रखकर की गई है। इस वर्ग के सभी सदस्य एक जैसे अनुशासनात्मक नियमों के अधीन रहते हैं, तथा एक ही समूह एवं आजीवन सेवा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह एक ही कोर्प्स के सदस्य माने जाते हैं, भले ही इनका सम्बन्ध किसी भी विभाग से हो। इनकी सेवायें पाँच रैंक में विभाजित हैं- Administrators-adjoint, Administrative Class iii, Administrative Class ii, Administrative Class i and Class Exceptional. मार्सल डेबरे के अनुसार प्रशासनिक मामलों के व्यवहारों को सरकार की सामान्य नीति के अनुरूप ढालना, कानूनों और नियमों का प्रारूप तैयार करना, उनके कार्यान्वयन के लिए निर्देश तैयार करना तथा लोक सेवाओं के मध्य समन्वय पैदा करना, असैनिक प्रशासकों का उत्तरदायित्व है।

   प्रशासनिक श्रेणी के अधिकारियों का काम प्रशासनिक आधार पर लिये गये निर्णयों तथा निर्मित की गई नीतियों के अनुसार कार्यों का कार्यान्वयन करना होता है। इस वर्ग के कर्मचारी अत्यन्त शिक्षित, योग्य, प्रशिक्षित और गतिशील होते हैं।
2. **निष्पादक सचिव-** यह फ्रांस की उच्च सेवाकों की द्वितीय श्रेणी है। यह ग्रेट ब्रिटेन के निष्पादक वर्ग से समानता रखती है। इस श्रेणी में सभी उच्चतर गैर लिपिकीय कार्य, जैसे अनुवादक कार्य, लेखा कार्य शामिल कर लिये जाते हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा इस श्रेणी के सदस्यों की भर्ती की जाती है।

3. **एकीकृत प्रशासनिक सेवा-** फ्रांस में स्थायी सचिव के रूप में एक ही कार्यालय का विकास नहीं हो पाया है। सभी मंत्रालयों में अनेक निदेशालय हैं तथा प्रत्येक की अध्यक्षता एक महानिदेशक करता है। इस पद पर आने वाला अधिकारी ग्राण्ड कोर्प्स का सदस्य होता है।
4. **कोर्प्स का अस्तित्व-** फ्रांस में लोक सेवाओं के पुनर्गठन के बाद भी कोर्प्स का महत्व कम नहीं हुआ है। यद्यपि कोर्प्स की व्यवस्था ने लोक सेवा के विकास के प्रवाह को रोका है, लेकिन फ्रेंच राजनीतिज्ञों तथा प्रशासनिक चिन्तकों ने कोर्प्स को एक बहुमूल्य विरासत के रूप में संजोये रखा है। इस फैसले के कुछ बुरे परिणाम भी निकले हैं-लोक सेवा के बहाव में रूकावट आयी है। उच्च स्तर पर प्रशासनिक एकरूपता नहीं आ सकी। सभी कोप्स पर अधिकारियों का अधिकार है, परिणाम स्वरूप पदोन्नति व्यवस्था महत्वपहीन हो गई है। कुल मिलाकर कोर्प्स व्यवस्था पूरी तरह फ्रांस लोकसेवा पर हावी है।

## 8.9 पद वर्गीकरण का मूल्यांकन

1. समालोचकों द्वारा यद्यपि पद वर्गीकरण को लोक सेवा के विकास के लिए अनिवार्य बताया है, लेकिन समय-समय पर इस सिद्धान्त की अलोचना भी की है। जिन बिन्दुओं पर पद वर्गीकरण की ओलाचना हुई है, वे इस प्रकार हैं-
   - आलोचकों की मान्यता यह है कि पद वर्गीकरण का आधार वैज्ञानिक नहीं है।
   - पद वर्गीकरण में ग्रेडों की संख्या बहुत अधिक है। भारत में ऐसे ग्रेडों की संख्या 36 है।
   - पद वर्गीकरण के कारण एक सेवा में कार्य करने वाले कर्मचारियों को दूसरी सेवा में कार्य करने का कोई अधिकार नहीं होता है, यद्यपि सेवा के नियम सबके लिये एक होते हैं, जिनको 'सिविल सर्विस नियम' कहा जाता है।
   - ऐपल्बी ने भारतीय वर्गीकरण व्यवस्था के छः दोष बताऐ हैं' कठोरता; बौद्धिक अनुप्रेरणा; बड़ी सीमा तक श्रंखलाग्रस्त; अन्तर- विभागीय ईर्ष्या; सामान्य लोगों से प्रभावित; तथा विकास के प्रवाह में बाधित।
2. भारतीय परिवेश में पद वर्गीकरण- इस प्रश्न पर कि क्या भारतीय परिवेश में लोक सेवा के क्षेत्र में पद वर्गीकरण लागू किया जाना चाहिये? वास्तव में यह प्रश्न आज भारत में विवादास्पद बना हुआ है। विशिष्ट सेवाओं द्वारा इसका समर्थन किया जाता है, लेकिन सामान्य सेवाओं के क्षेत्र में इसका विरोध होता रहा है। यहाँ यह याद रखना होगा कि प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) द्वारा पद वर्गीकरण पद्धति का समर्थन किया गया था।

वास्तविकता यह है कि पद वर्गीकरण की जड़े पूरी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में बहुत गहरी हैं। उनको एक झटके से उखाड़ फेंकना असंभव है। और यदि यह संभव हो भी जाए तब उसकी वैकल्पिक व्यवस्था क्या होगी, यह किसी को मालूम नहीं है। समालोचकों का मानना है कि इस सम्बन्ध में कोई निश्चित निर्णय लेने के पूर्व पद-वर्गीकरण के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्ष का पूर्ण परीक्षण अनिवार्य है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. पद वर्गीकरण में 'कोर्प्स' शब्द का प्रयोग किस देश ने किया?
   क. अमरीका ख. फ्रांस
   ग. ब्रिटेन घ. रूस
2. वर्गीकरण में पदों का सम्बन्ध किससे है?
   क. शक्ति से ख. प्रभाव से

ग. उत्तरदायित्व से घ. अधिकार से

3. किसके शासनकाल में संविदाबद्ध (Convenant) तथा असंविदाबद्ध (Unconvenant) की परम्परा पड़ी?
4. क. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में ख. ब्रिटिश शासलकाल में
   ग. मुगल शासनकाल में घ.1947 के बाद भारतीय शासन के आरम्भिक काल में
5. भारत में पर वर्गीकरण का आधार क्या है?
   क. सेवा ख. वेतन
   ग. ग्रेड घ. अधिकार
6. पद वर्गीकरण के आधार पर भारत में कितने प्रकार की भारतीय लोक सेवायें हैं?
   क. पाँच प्रकार की ख. छः प्रकार की
   ग. चार प्रकार की घ. दो प्रकार की

## 8.10 सारांश

लोक प्रशासन में पद वर्गीकरण सभी विकसित और विकासशील देशों की विशेषता है। आज यह लोग सेवाओं का एक अभिन्न अंग है। संसार में पद वर्गीकरण की विशेषताएं, उसके सिद्धांत और उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू इस प्रकार हैं-

- लोक सेवा की भाषा में पद वर्गीकरण का अर्थ है ''तुलनात्मक कठिनाइयों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार पद सोपनियता के आधार पर पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।''
- वर्गीकरण का तात्पर्य यह है कि समान कार्य तथा समान उत्तरदायित्व वाले पद एक ही श्रेणी मं े रखे जाऐं, चाहे वे किसी विभाग अथवा सेवा से जुड़े हों।
- पदों का संबंध उत्तरदायितवों और कर्तव्यों से है। इसमें योग्यता का भी समावेश रहता है। वर्गीकरण सदा पदों का होता है, और पद सदा विधमान रहता है, भले ही पद रिक्त ही रहें।
- आज के विषम समाज में पद वर्गीकरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। लाखों लोक सेविओं को श्रेणीबद्ध करके उन्हें पहचानने में सुविधा होती है। लोक सेवकों की सेवा शर्तों को सरलता से सुलझाने में वर्गीकरण की एक अहम भूमिका रहती है।
- वर्गीकरण कुछ निश्चित सिद्धातों पर किया जाता है। इनमें सेवा, विषय या कर्म क्षेत्र, नियंत्रण एवं निरीक्षण का मापदण्ड, कार्य की प्रकृति, योग्यता इत्यादि मुख्य हैं।
- पद वर्गीकरण की उपयोगिता को लगभग सभी देशों तथा प्रशासनिक विचारको नें स्वीकार किया है। मैक्स बेबर ने लोक सेवाओं को ''तार्किकता'' से जोड़ कर एक तरह लोक सेवा के औचित्य को स्वीकार किया।
- पद वर्गीकरण से भर्ती का सरलीकरण, प्रशासनिक स्पष्टता, पदोन्नति में सुविधा, बजट बनाने में आसानी, लोक सेवा में सहयोग एवं समन्वय तथा कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट विभाजन होता है।
- वर्गीकरण की सफलता के लिए कुछ शर्तों को स्वीकार करना पड़ता है, जैसे वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक श्रेणी की अलग-अलग व्याख्या होनी चाहिए। पदोन्नति निश्चित एवं स्पष्ट होने चाहिए। भ्रमित करने वाले न हों।

- पद वर्गीकरण के अनेक नकारात्मक पहलू हैं, जैसे कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का स्पष्ट निर्धारण करना संभव नहीं है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों में असंतोष पैदा करता है। यह व्यवस्था मनुष्य को एक मशीन बना देती है, जिससे मनोवैज्ञानिक तनाव पैदा होता है। पद वर्गीकरण विकास की गति के साथ गतिशील नहीं है, जिससे विकास में एक बांधा आती है।
- भारत को पद वर्गीकरण की व्यवस्था विरासत में मिली है। पहले 'कंवेनेन्टेड' तथा 'अनकवेनेन्टेड' की परमपरा को ग्रहण किया गया। तत्पश्चात 'राजपत्रित' और 'अराजपत्रित' वर्ग सामने आये जो आज भी लोक सेवा में विद्यमान हैं। 1930 के बाद भारतीय लोक सेवाओं को 'अखिल भारतीय' तथा 'केन्द्रीय' वर्गों में विभक्त किया गया।
- ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ऐसे दो देश हैं, जहाँ से लोक सेवा में पद वर्गीकरण की परम्परा शुरू हुई। ब्रिटेन में प्रशासनिक लोक सेवाओं को श्रेणियों, सेवाओं, ग्रेड्स तथा कोर्प्स में विभाजित किया गया है। इनमें कोर्प्स सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है।
- पद वर्गीकरण के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। यह सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है। वर्गीकरण में ग्रेडों से संख्या बहुत होती है, जिससे भ्रम की स्थिति पैदा होती है। लोक सेवा के अधिकारियों को दूसरी सेवा में जाने का अवसर नहीं मिलता, जिनसे उनका प्रशासनिक जीवन निरीह हो जाता है।
- नकारात्मक पहलू होने के बाद भी पद वर्गीकरण का महत्व कम नहीं आंका जा सकता। अभी तक इस सिद्धान्त का विकल्प नहीं खोजा जा सका है।

## 8.11 शब्दावली

कोर्प्स (Copers)- लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह एक फ्रेंच शब्द है, जिसका अर्थ है विभागों का समूह। फ्रेंच लोक सेवा में पद वर्गीकरण की दृष्टि से कोर्प्स सब से बड़ी इकाई है और उच्च लोक सेवक किसी न किसी कोर्प्स से जुड़े रहते हैं।

स्थिति वर्गीकरण (Rank Classification)- अधिकारी का दर्जा या उसकी स्थिति वर्गीकरण का आधार होता है।

दायित्व वर्गीकरण (Duty Classification)- इसका अर्थ है कि लोक सेवा में पद का सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर दायित्वों से होता है। दायित्वों की भिन्नता पदों की विभिन्नों को दर्शाती है।

## 8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** ख, **2.** ग, **3.** क, **4.** क, **5.** ख

## 8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुब्रह्मण्यम, बी: भारतीय प्रशासन, 1974
2. अवस्थी-अवस्थी: भारतीय प्रशासन, 1997
3. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
4. डिमॉक, एम.ई.: मॉर्डन पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन।
5. फड़िया, बाबू लाल: भारत में लोक प्रशासन, 1993

## 8.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Ferrel Heady : Public Administration : A Comparative Perspective.

White, L.D. : Introduction to the Study of Public Administration.
F. Ridley and J. Blondel : Public Administration in France.

## 8.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पद वर्गीकरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पद वर्गीकरण के सिद्धान्तों की वयाख्या कीजिए।
2. पद वर्गीकरण के क्या लाभ हैं? तथा भारत में लोक सेवा में पद वर्गीकरण की स्थिति क्या है?
3. ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस में पद वर्गीकरण की में तुलना कीजिये।

# इकाई- 9 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ

**इकाई की संरचना**

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ: चरित्र-चित्रण
    9.2.1 विशेषज्ञ: प्रकृति और आचरण
    9.2.2 विशेषज्ञ और सामान्यज्ञ में अन्तर
9.3 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद
9.4 अपनी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सामान्यज्ञों के तर्क
9.5 विशेषज्ञों के तर्क
9.6 विवाद का समाधान
9.7 प्रशासनिक सुधार आयोग- 1966 के सुझाव
9.8 भारत सरकार की ओर से विवाद के समाधान के लिए पहल
9.9 निष्कर्ष
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

## 9.0 प्रस्तावना

सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ का विवाद ब्रिटेन की फुल्टन, समिति 1965 की देन है, जिसने पहली बार सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ नामों को अपने प्रतिवेदन में उदघृत किया। भारत में यह विवाद ब्रिटेन से ही आया है। विवाद केवल यह है कि अधिक महत्व किसका है? सामान्यज्ञ का या विशेषज्ञ का, विशेष रूप से शासकीय व्यवस्था के संदर्भ में। सामान्यज्ञ के तर्क हैं कि प्रशासन बिना उनके नहीं चल सकता; नीति-निर्माता वही हैं; वही मंत्रियों को परामर्श देते हैं, इसलिए वे श्रेष्ठ हैं; वे गरिमामय हैं और वे प्रतिष्ठित हैं।

विशेषज्ञों का तर्क है कि वे भी अपने क्षेत्र में दक्ष हैं, वे यांत्रिकी में निुण हैं, देश का आर्थिक, वैज्ञानिक और संरचनात्मक विकास उनके कन्धों पर है। लेकिन सरकार सामान्यज्ञों की तुलना में उनकी अवहेलना करती है, वेतन, भत्ते और अन्य सुख सुविधाओं में वे सामान्यज्ञों से पिछड़े हुये हैं। इस तरह यह विवाद विशेषज्ञों में एक मनोसंकट की स्थिति पैदा करता है, जो विकास में बाधा पहुँचाता है।

## 9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके के उपरान्त आप-

- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का अर्थ समझ सकेंगे।
- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ विवाद का कारण और परिणाम समझ सकेंगे।
- अपने-अपने पक्ष में सामान्यज्ञों और विशेषताओं के तर्क जान पायेंगे।

- विवाद को सुलझाने के लिए सरकार की ओर से क्या उपाय सुझाये गये हैं, इनकी जानकारी ले सकेंगे।
- विवाद के समाधान के लिए विभिन्न आयोगों की क्या सिफारिशें हैं, उनसे परिचित होंगे।

## 9.2 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ: चरित्र-चित्रण

लोक प्रशासन की सरलतम भाषा में सामान्यज्ञ वे प्रशासनिक कर्मचारीगण (Personnel) हैं, जो राज्य की प्रशासनिक सेवाओं को अन्जाम देते हैं। इनका इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी आधुनिक सभ्यता। कौटिल्य ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में राज्य के जिन महत्वपूर्ण कर्मियों को राज्य की प्रगति के लिए अनिवार्य बताया था, वे यही सामान्यज्ञ थे। भारत में चाहे मुस्लिम काल हो या मुगलकाल हर चरण में सामान्यज्ञ प्रशासकों का वरचस्व बना रहा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दौर में भी लूट प्रथा के अनुसार एक तरह से प्रशासनिक सत्ता सामान्यज्ञों के हाथ में थी। 1858 में जब ताज या ब्रिटिश संसद के हाथों में भारतीय शासन की बागडोर आई तो प्रशासन का वह सारा स्वरूप जो ब्रिटेन की विशेषता थी, भारत पर छा गया। इस नये ब्रितानी स्वरूप को लोक सेवा, नौकरशाही अथवा नागरिक सेवा का नाम दिया गया, जिसका आधार आई.सी.एस. अधिकारी थे।

आरंभ में इंग्लैण्ड के 20-21 वर्ष के शिक्षित, प्रतिभाशाली युवाओं को आई.सी.एस. की प्रतियोगी परीक्षा में सफलता के बाद भारत में प्रशासनिक लोक सेवा के लिए चुना जाता था। यह अधिकारी एक निश्चित उद्देश्य- ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा एवं सेवा तथा आत्महित के लिए भारत आते थे और निश्चित समय तक सेवा करके अपने देश लौट जाते थे। यह अधिकारी स्वयं को बहुत श्रेष्ठ समझते थे और इसी श्रेष्ठता के भ्रम से ग्रस्त रहकर प्रशासन करते थे। इन्होंने कभी भी भारत को आत्मसात नहीं किया, बल्कि पूरी तरह सामाजिक अलगाव की नीव डालकर भारत से विदा होते थे।

ब्रिटिश आई.सी.एस. की इस मानसिकता और आचरण ने धीरे-धीरे भारतीयों को विचलित करना आरंभ कर दिया। लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग तेज होने लगी। भारतीयों की मांग को गम्भीरता से लिया जाने लगा। 1886 में चार्ल्स एचीसन की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया गया। इस आयोग ने सामान्य लोक सेवा को भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा तथा अधीनस्थ सेवा में वर्गीकृत कर दिया। तत्पश्चात् माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर 1919 में लोक सेवा की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ ली जाने जाने लगी, और इस तरह भारतीय लोक सेवा में भारतीयों की संख्या बढ़ाने का रास्ता खुला। जब लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग और तेज हो गयी तो लार्ड ली आयोग की स्थापना की गई। इसका परिणाम यह निकला कि 1935 से लोक सेवाओं के भारतीय करण का मार्ग पूरी तरह प्रशस्त हो गया। स्वतन्त्रता के बाद आई.सी.एस. के स्थान पर नवीन अखिल भारतीय सेवाऐं, यथा- आई.ए.एस. और आई.पी.एस. की स्थापना की गयी। 1951 में आई.एफ.एस. की सेवा भी अस्तित्व मे आ गयी।

यह सब कुछ लिखने का उद्देश्य यह है कि समय के साथ-साथ राजनीतिक सत्ता और व्यवस्था बदलने के बाद यद्यपि प्रशासनिक क्षेत्र में मानवीय तत्व बदल गये, संरचना बदल गयी, लक्ष्य बदल गये, लेकिन जो नहीं बदल सकी, वह है लोक सेवियों की मानसिकता और उनका आचरण। लोक सेवा ने पूरी तरह नौकरशाही का चोला पहन लिया है। ब्रिटिश काल में इसने अभिजात् वर्ग (Elite Class) का रूप धारण कर लिया था, लेकिन अब क्योंकि नौकरशाही मध्यवर्ग से है, इसलिए यह अभिजात् वर्गीय तो नहीं हो सकी, लेकिन वो स्वयं को श्रेष्ठतम् समझने लगी। आज भी यह साधारण लोगों से दूर सिविल लायंस के विशाल बंगलों में निवास करती है। एक मंत्री से मिलना आसान है, लेकिन एक जिलाधीश या कमीशनर से मिलना बहुत कठिन है।

### 9.2.1 विशेषज्ञ: प्रकृति और आचरण

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के कारण राज्य में एक नया वर्ग उदित हुआ। यह वर्ग था तकनीशियनों, वैज्ञानिकों, विधिशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों का। ये वे वर्ग थे जो उद्योगों के क्षेत्र में अपना सक्रिय योगदान देते थे। आगे चलकर इन्हीं वर्गों में स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कर्मी भी जुड़ गये। जैसे-जैसे आर्थिक जगत का विकास होता गया, इन कर्मियों का भी महत्व बढ़ता गया। यहाँ तक कि जहाँ लोक सेवकों को सामान्यतज्ञ कहा गया, इन विशिष्ट कर्मियों को विशेषज्ञ कहा जाने लगा। इस तरह शासकीय समाज तकनीकी दृष्टि से सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ में आज विभक्त हो चुका है।

'सामान्यवादी' एवं 'विशेषज्ञ' शब्दों की कोई स्पष्ट सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। समझ में केवल इतना ही आ सकता है कि जो लोक सेवा में प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होते हैं, वे सामान्यज्ञ की श्रेणी में आते हैं। इनकी कोई विशेष पृष्ठभूमि नहीं होती और यह सरलता से नियमानुसार शासन के एक विभाग या शाखा से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित होते रहते हैं। अधिकांशतः इनका कार्य प्रबन्धन का होता है। कुछ समालोचकों का मानना है कि इनका कार्यक्षेत्र पोस्डकोर्ब (POSDCORB)- नियोजन, संगठन, पर्यवेक्षण, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन तथा बजट-निर्माण की परिधि में आता है।

यदि सामान्यज्ञ को समझ लिया जाये तो विशेषज्ञ को समझना आसान होगा। एक लोक सेवक (IAS) किसी एक प्रशासनिक कार्य में निपुण, दक्ष और अनुभवी हो जाए, तब उसे भी विशेषज्ञ माना जाएगा। लेकिन सामान्यतः वो अधिकारी जो अपनी विशिष्ट तकनीकी शिक्षा के आधार पर लोक सेवा आयोग से प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होता है और चयन के बाद प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजर कर वह विशिष्ट तकनीकी पद पर नियुक्त होता है और उसी विशेष विभाग में उसकी पदोन्नति होती रहती है, तो वह अधिकारी विशेषज्ञ कहलाऐगा। इस तरह विशेषज्ञ को जो बात सामान्यज्ञ से पृथक करती है, वह है उसकी विशिष्ट शिक्षा और प्रशिक्षण। विशेषज्ञ अपने क्षेत्र में 'दक्ष', तकनीकी दृष्टि से प्रतिभाशाली और समय के साथ अनुभवी होता है।

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने विशेषज्ञ सेवाओं को कार्यात्मक सेवाओं की संज्ञा दी है। फुल्टन समिति (ब्रिटेन की लोक-सेवा समिति, 1966-68) ने उन कर्मचारियों को विशेषज्ञों का नाम दिया है, जो अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार शासन में एक से अधिक विभिन्न पदों पर कार्य करते हैं। इस श्रेणी के अधीन अधिवक्ता, चिकित्सक, अभियान्त्रिक, वैज्ञानिक, लेखाकार, अर्थशास्त्री, ड्राफ्टमैन आदि आते हैं।

### 9.2.2 विशेषज्ञ और सामान्यज्ञ में अन्तर

संक्षेप में सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ का अंतर स्पष्ट करना जरूरी है। भारतीय लोक-प्रशासन संस्थान ने सेवीवर्ग प्रशासन पर एक सेमीनार का आयोजन किया था। विषय था 'सामान्यवादी अधिकारियों' एवं 'विशेषज्ञ' अधिकारियों को परिभाषित करना।' यद्यपि सेमीनार इस उद्देश्य में असफल रहा, लेकिन कुछ तथ्य स्पष्ट हुए-

- ऐसे तमाम लोक सेवक जिन्होंने अखिल भारतीय लोक सेवा की अनिवार्य प्रतियोगिता सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की हो, तथा तत्पश्चात् अनिवार्य प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण की हो, उनको चयनित और प्रशिक्षित करके मध्यस्तरीय निरीक्षणात्मक पदों पर नियुक्त कर दिया जाता है, ऐसे कर्मचारी को सामान्यज्ञ अधिकारी कहा जाता है। इन अधिकारियों के लिए सामान्यतः अनिवार्य तकनीकी या व्यावसायिक अर्हतायें निर्धारित नहीं है।
- दूसरी व्यवस्था यह है कि मध्यस्तरीय पदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है, जिन्होंने सम्बन्धित पद के लिए निर्धारित अनिवार्य तकनीकी या व्यावसायिक योग्यता प्राप्त की हो। ये व्यक्ति अपनी शिक्षा एवं विशिष्टता के आधार पर उन्हीं पदों पर नियुक्त होते हैं, जिनके लिए इनका चयन हुआ है। ऐसे

अधिकारियों को विशेषज्ञ कहा जाता है। इनके कार्य अपनी प्रकृति से तकनीकी होते हैं। यह अपने कार्यक्षेत्र में 'दक्ष' या माहिर होते हैं, इसलिए इनको विशेषज्ञ का दर्जा दिया गया है।

## 9.3 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद

विवाद चाहें कहीं भी हों-व्यक्तियों के मध्य, दलों के मध्य या वर्गों के मध्य, उनके कारण चार हो सकते हैं- मनोवैज्ञानिक, भौतिक, कार्यात्मक अथवा परिस्थितीय। कहीं न कहीं यह चारों कारण सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ के टकराव में भी देखने को मिलते हैं। विश्व के अनेक लोकतांत्रिक देशों की प्रशासनिक व्यवस्था में सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों के मध्य अनेक मुद्दों पर विवाद और टकराव की समस्या व्याप्त है। विशेष तौर से इंग्लैण्ड, अमरीका और भारत इस प्रशासनिक द्वन्द से पूरी तरह ग्रस्त हैं। इस विवाद की पृष्ठभूमि 1965 में ब्रिटेन की 'फुल्टन समिति' ने तैयार की थी। उसने अपनी सिफारिश में पहली बार 'सामान्यज्ञ' तथा 'विशेषज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया और दोनों वर्गों के कार्यों एवं दायित्वों का विश्लेषण करते हुए 'सामान्यज्ञ' की श्रेष्ठता को इंगित करके दोनों वर्गों में टकराव और द्वन्द को हवा दे दी। संघर्ष की यह बीमारी भारत में भी पहुँच गई, यहाँ तक कि इस विवाद ने डॉ0 शाह को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया, जिसके फलस्वरूप देश में इंजीनियरों ने हड़ताल कर दी।

सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के मध्य संघर्ष के अनेक कारण हैं। इनमें पहला है- मनोवैज्ञानिक, दूसरा भौतिक है, तीसरा कार्यात्मक और चौथा परिस्थितिय।

1. **मनोवैज्ञानिक कारण-** अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से, अपनी परम्पराओं से, अपनी विरासत से और अपनी मानसिकता से सामान्यज्ञ स्वयं को श्रेष्ठतम समझता है, न केवल किसी एक वर्ग के मुकाबले बल्कि पूरे समाज के संदर्भ में। इंग्लैण्ड में जहाँ इसका विधिवत् जन्म हुआ, वहाँ इसने बहुत जल्दी अभिजात् वर्ग का रूप ले लिया; स्वयं को 'स्वर्ग-जन्मा' मानने लगा; उपनिवेशों में इस वर्ग के अधिकारियों ने केवल स्वामियों की तरह ही व्यवहार किया और उपनिवेशी निवासियों को लगभग अपना गुलाम बना लिया। आश्चर्य की बात यह है कि जब लोक सेवाओं का भारतीयकरण हो गया और भारतीय युवा आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करके विभिन्न पदों पर अधिकारी बने तो उन्हें भी अंग्रेजों के रंग-रूप को छोड़कर वह सब कुछ विरासत के रूप में ग्रहण कर लिया जो नौकरशाही की पहचान थी।

   स्वतन्त्रता के बाद भी स्थिति नहीं बदली। केवल आई.सी.एस. का नाम आई.ए.एस. हो गया। मानसिकता ज्यों की त्यों वही बनी रही। भारतीय आई.ए.एस. अधिकारी, पूरी तरह 'उत्कृष्ठ मनोग्रंथि' के आवेश में जकड़े रहे। उनकी 'सनक' (Complex) में कोई सुधार नहीं हुआ।

   दूसरी ओर विशेषज्ञ सामान्यज्ञ की मानसिकता के विरूद्ध प्रतिकार (Counter-reaction) भावना से मजबूर होकर मनःसंकट (Psychic Crisis) में पहुँच जाते हैं। वे किसी भी रूप में स्वयं को कमतर नहीं समझते हैं, और किसी भी स्थिति में वे सामान्यज्ञों के आधिपत्य में रहना सहन नहीं कर सकते। तब सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में टकराव होना स्वाभाविक है। सामान्यज्ञों की प्रतिष्ठा को सदा बनाए रखना और विशेषज्ञों को उनके अधीन रखना अन्याय है।

2. **भौतिक कारण-** भौतिक कारणों को आर्थिक भी कहा जा सकता है। भौतिक कारणों में सबसे अहम वेतन विसंगतियाँ हैं। विशेषज्ञों का तर्क है कि उनके कार्य और उत्तरदायित्व किसी भी रूप में सामान्यज्ञों (आई.ए.एस.) से कम नहीं है। उनका कहना है कि वे दक्षता के ऐसे कार्य करते हैं, जो सामान्यज्ञ नहीं कर सकते, जबकि वे सामान्यज्ञों के प्रशासनिक कार्यों को पूरी निपुणता के साथ अंजाम दे सकते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी सामान्यज्ञों को विशेषज्ञों की तुलना में वेतन अधिक दिया जाता है तथा उनको तरह-तरह के भत्ते भी दिए जाते हैं। पदोन्नति के मामले में भी सामान्यज्ञ अधिक भाग्यशाली हैं। एक आई.ए.एस. को जल्दी-जल्दी पदोन्नति देकर 5 वर्ष बाद जिलाधीश व 15 वर्ष के बाद केन्द्र सरकार में सह-सचिव तथा

राज्य में आयुक्त बना दिया जाता है। इसके विपरीत विशेषज्ञ को उच्च पद पर पहुँचते-पहुँचते 20-25 वर्ष लग जाते हैं।

3. **कार्यात्मक कारण-** कार्यात्मक कारण में मुख्य मुद्दा नीति-निर्माण और निर्णय-निर्माण के क्षेत्र का है। नीति-निर्माण अथवा निर्णय-निर्माण का कार्य सामान्यज्ञों को मिला हुआ है। यहाँ तर्क यह है कि विशेषज्ञों द्वारा एकत्रित तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर जो कुल कार्य का 90 प्रतिशत है, सामान्यज्ञ निर्णय-निर्माण और नीति-निर्माण का काम करके अपने महत्व और श्रेष्ठता को सिद्ध करते हैं। यह अनुचित और अतार्किक है। विशेषज्ञों का तर्क है कि नीति-निर्माण का काम भी विशेषज्ञ को मिलना चाहिए, जिसमें उनकी भूमिका अधिक रहती है। विशेषज्ञों का यह तर्क तो उचित है, लेकिन शासन स्तर पर केवल सामान्यज्ञ को दक्षता और श्रेष्ठता को स्वीकार किया जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों वर्गों में टकराव होना स्वाभाविक है।
4. **परिस्थितिय कारण-** शासन में एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक संगठन अथवा निकाय है, जिसे सचिवालय कहते हैं। केन्द्र और राज्य के सचिवालय शासन के विभिन्न मंत्रालयों से जुड़े होते हैं। मंत्रालयों में मंत्री होते हैं, लेकिन सचिवालयों में सचिवों की एक श्रृंखला होती है। इन सचिवों एवं मंत्रियों में एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, जो संवाद और सूचना के माध्यम से निरन्तर जारी रहता है। यह सचिव सामान्यज्ञ से होते हैं और क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप से मंत्रियों के सम्पर्क में रहते हैं, इसलिए इनका महत्व भी अधिक हो जाता है।

दूसरी ओर प्रत्येक राज्य और केन्द्र में मुख्यालय स्तर पर निदेशालय होते हैं, जिनके मुखिया निदेशक होते हैं। स्थिति यह होती है कि सचिव और निदेशक का रिश्ता पदसोपनीय आधार पर होता है। एक तरह से निदेशक सचिव के अधीन होता है। वह अपनी मर्जी से अपने विभाग के मंत्री से नहीं मिल सकता है। यदि मंत्री चाहता है तो वह निदेशक को बुलाकर बात कर सकता है लेकिन प्रायः वह विभाग के सचिव के माध्यम से ही राजनीतिक स्तर पर बात करता है। क्योंकि निदेशक विशेषज्ञ होता है और विभाग का अधिकांश कार्य निदेशालय के ही माध्यम से होता है, इसलिए विशेषज्ञ को तब बड़ी मानसिक चोट पहुँचती है, जब सामान्यज्ञ (सचिव) उसको आदेश देता है। ये ऐसा परिस्थितिय कारण है जो सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के टकराव की तीव्रता को बढ़ाता है।

## 9.4 अपनी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सामान्यज्ञों के तर्क

सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के मध्य का विवाद तब और आसानी से समझ में आयेगा जब स्वयं इन दोनों वर्गों के प्रवक्ताओं के मन को टटोला जाए। सर्वप्रथम हम सामान्यज्ञों के तर्कों को लेते हैं-

1. सामान्यज्ञ स्वयं को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से श्रेष्ठ मानते हैं। वे अपनी श्रेष्ठता की जड़े ब्रिटिश शासन काल में खोजते हैं। वे समझते हैं कि वे ब्रिटिश लोक सेवियों (ICS) के आधिकारिक वारिस हैं। उनके मौलिक वर्ग (नौकरशाह) ब्रिटिश साम्राज्य की धरती पर ब्रिटिश राजा के शासन के बाद प्रशासन के 'शाह' हैं। उनका दावा है कि वे भारत में आज भी अपने पूर्वजों की प्रशासनिक विरासत को संजोए हुए हैं।
2. सामान्यज्ञों का दूसरा तर्क यह है कि वे ऐसे प्रशासनिक काम करते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध जनहित से है, इसलिए वे जन सम्पर्क में रहते हैं, जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं से परिचित रहते हैं। इसलिये, विभिन्न विभागों के निकायों पर सामान्यज्ञों का वर्चस्व स्वाभाविक होता है।
3. सामान्यज्ञों का दावा है कि नीति-निर्माण की वैधानिकता की बारीकियों को वे ही जानते हैं। यह उनका उत्तरदायित्व है कि नीतियाँ सम्बन्धी ऐसे निर्णय लें, जो कानूनी दृष्टि से सटीक हो, जो संविधान की मर्यादा को भी बनाये रखें और जिनके नतीजे जन-हित में भी हों।

4. लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनेता अपनी नीतियों, विश्वासों, विचारधाराओं तथा वायदों (मैनीफेस्टो) के आधार पर निर्वाचित होकर आते हैं तथा सत्ता ग्रहण करके उनका यह कर्तव्य होता है कि वे जनता से किए वायदों को पूरा करें। सामान्यज्ञों का कहना है कि केवल वे ही सत्ताधारियों द्वारा किये गये वायदों को पूरा कर सकते हैं। राजनेता अपने राजनीतिक अस्तित्व के लिए सामान्यज्ञों पर ही निर्भर रहते हैं।
5. सामान्यज्ञों का मंत्रियों से प्रत्यक्ष संवाद रहता है। विशेषज्ञों में मंत्रियों को समझाने की, विश्वास दिलाने की अथवा आश्वस्त करने की महारत नहीं होती है। विशेषज्ञ अड़ियल और दंभी होते हैं। और वे न तो मंत्री की दशा को समझते हैं न उसको विश्वास दिला सकते हैं। वे सदा अभिनीत से प्रभावित रहकर मंत्री को परामर्श देते हैं।
6. पाल एपल्वी विशेषज्ञ को संकीर्ण प्रवृत्ति का मानता है। वह किसी भी समस्या को तकनीकी दृष्टि से देखता है, ओर उसी संदर्भ में फैसले लेता है। अतः वह लचीलेपन से दूर रहता है। नतीजा यह निकलता है कि सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के नजरियों में सामंजस्य बिठाना कठिन होता है।

## 9.5 विशेषज्ञों के तर्क

1. विशेषज्ञों के भी अपने पक्ष में और सामान्यज्ञों के महत्व के विरूद्ध अनेक मजबूत तर्क हैं। उनकी पहली शिकायत ये है कि शासन की नजर में आई.ए.एस. अधिकारियों का अधिक महत्व है। सचिवालय में 50 प्रतिशत से अधिक उपसचिव जैसे उच्च पदों पर आई.ए.एस. की नियुक्ति की जाती है। नतीजा यह निकलता है कि सचिव एवं उप-सचिव के पदों पर सामान्यज्ञों के आसीन रहने से विशेषज्ञों का मंत्रियों से सीधा सम्बन्ध टूट जाता है, जिसके कारण वे तकनीकी विषयों पर अपने सुझावों और दृष्टिकोणों को मंत्रियों तक नहीं पहुँचा सकते। आज भी विशेषज्ञ राजनीतिक संवाद में सामान्यज्ञों की भूमिका अहम होती है, जिसके कारण मंत्री की नजर में सामान्यप्ज्ञ का रूतबा बढ़ता है और विशेषज्ञों का महत्व कम हो जाता है। विशेषज्ञों का तर्क है कि राजनीतिक स्तर पर तकनीकी समस्याओं और आवश्यकताओं की सही व्याख्या केवल विशेषज्ञ ही कर सकता है, लेकिन सामान्यज्ञ उस से यह अधिकार भी छीन लेता है, जिससे समस्या की जटिलता तो बढ़ती ही है, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेषज्ञों में हीनता की भावना पैदा होती है। और ये सच है कि किसी भी स्तर पर असंतोष, तनाव और अवसाद (कमचतमे◌्पवद) को जन्म देता है, जो विकास के लिए घातक होता है।
2. विशेषज्ञ कहते हैं कि सामान्यज्ञ नीति-निर्माण या निर्णय निर्माण के लिए विशेषज्ञों पर निर्भर करते हैं, जो उनके द्वारा एकत्रित एवं संयोजित तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर फैसले करते हैं। यदि विशेषज्ञ अपनी विशेषज्ञयी जिम्मेदारी न निभाऐं तो सामान्यज्ञ राजनीतिज्ञों के सामने असहाय हो जायेंगे।
3. विशेषज्ञों का कहना है कि तकनीकी कार्यों जैसे-कृषि, सिंचाई, आर्थिक नियोजन, स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग में सामान्यज्ञ शून्य होते हैं और उनकी कोई भूमिका नहीं होती है।
4. यदि कोई कार्य या योजना सफल होती है तो उसका श्रेय राजनीतिज्ञ और सामान्यज्ञ दोनों लेते हैं, लेकिन अगर इस योजना में असफल हो गये तो सारा दोष विशेषज्ञों के सिर मढ़ दिया जाता है।
5. विशेषज्ञों का एक मजबूत तर्क ये है कि वे भी प्रशासनिक कार्यों को उतनी महारत से कर सकते हैं, जिस तरह सामान्यज्ञ करते हैं, क्योंकि उनकी नजर, तकनीकी और पैनी होती है। जबकि सामान्यज्ञ तकनीकी कामों से अनभिज्ञ होता है। लेकिन दुख की बात यह है कि सामान्यज्ञों को देश के उच्चतम पदों पर बैठाया जाता है, जबकि एक सशक्त और दक्ष विशेषज्ञ को आई.ए.एस. और आई.एफ.एस. के सामने तुच्छ समझा जाता है, भले ही वह देश का महान वैज्ञानिक हो, अर्थशास्त्री हो अथवा वह एक विश्व ख्याति का चिकित्सक हो।

6. विशेषज्ञों का दावा है कि वे ही ऐसा वर्ग हैं जो देश को विकास की बुलन्दियों तक पहुँचाने में सक्षम हैं। वो देश को सैनिक और असैनिक क्षेत्रों में सशक्त और महान बनाने की क्षमता रखते हैं। वो देश के लिए गौरवशाली काम करता है। लेकिन दुख की बात यह है कि यदि वह प्रधानमंत्री का विशेष सलाहकार भी बनता है तो भी केन्द्र के मुख्य सचिव से नीचा समझा जाता है।

उक्त बहस से यह बात साफ हे कि सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के मध्य टकराव ने प्रशासकीय व्यवस्था को प्रभावित किया है, जिसके प्रतिकूल परिणाम सामने आए हैं। उदाहरण के लिए विकास के कार्यों (निर्माण कार्य) में वित्त निर्गत न करके सामान्यज्ञ, विशेषज्ञों के काम में बाधा पहुँचाते हैं। बदले में विकास कार्यों में सुस्ती लाकर विशेषज्ञ नीतियों के कार्यान्वयन में विलम्ब करते हैं। और इस तरह आरोप-प्रत्यारोप का सिलसिला शुरू हो जाता है।

## 9.6 विवाद का समाधान

शासन के स्तर पर सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद की तीव्रता को देखते हुए, समस्या को गंभीरता से लिया गया है। उसने समय-समय पर यह स्वीकार किया है कि इस विवाद में एक प्रशानिक संकट का रूप ले लिया है। अतः शासन की ओर से इस समस्या के तार्किक समाधान के लिए अनेक परामर्शदात्री समितियों की स्थापना की गई। विशेष रूप से इनमें संसदीय समितियाँ थीं, जिन्होंने इस द्वन्द्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है, और इस दृष्टि से प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया है। सारांश में ऐसी समितियों के सुझाव इस प्रकार हैं-

1. योजना आयोग (1959) की एक सिफारिश में सुझाव दिया गया कि प्रशासन के पुरातन संगठन में इस तरह संशोधित किया जाए कि विशेषज्ञ प्रशासन के सभी स्तरों पर, उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से अपना योगदान प्रदान कर सकें।
2. द्वितीय वेतन आयोग ने सुझाव दिया कि जिस विभाग का कार्य मुख्यतः तकनीकी हो, उस विभाग का सचिव ऐसा व्यक्ति हो, जो प्रशासनिक योग्यता भी रखता हो और क्षेत्र विशेष में तकनीकी ज्ञान भी रखता हो।
3. संसद की प्राक्कलन समिति ने 1969 में अपनी सिफारिश में कहा कि सरकार को चाहिए कि वह वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी विषयों से सम्बद्ध विभागों के प्रशासनिक अध्यक्षों के रूप में तकनीकी पृष्ठभूमि वाले अधिकारियों की भर्ती करे।
4. तृतीय वेतन आयोग ने 1973 के अपने प्रतिवेदन में कहा कि वह प्रशासनिक सेवा में सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों की समानता की मांग का समर्थन करते हैं। इस संदर्भ में तर्क औचित्यपूर्ण ओर प्रासंगिक हैं। आयोग ने इंजीनियरी सेवा के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि उनको वे सारी सुविधाऐं दी जायें जिनके वे अधिकारी हैं।
5. प्रशासनिक सुधार समिति (राजस्थान) 1962 ने सिफारिश की कि तकनीकी विभागाध्यक्षों को सचिवालय में नीति निर्माण में संयुक्त किया जाना चाहिए। समिति के अनुसार विभिन्न शाखाओं की चीफ इंजीनियर नीति निर्माण का काम बखूबी कर सकते हैं। ऐसी ही सिफारिश प्रशासनिक सुधार समिति ने भी की। उसने अपनी सिफारिश (1963) में कहा कि विभिन्न विभागों के चीफ इंजीनियरों को सचिवालय में पदेन सचिव तथा पदेन उपनिदेशक के पद पर लाना चाहिए।

## 9.7 प्रशासनिक सुधार आयोग- 1966 के सुझाव

प्रशासनिक सुधार आयोग 1966 ने भारत के कार्मिक प्रशासन में सुधार और सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ के द्वन्द्व से उत्पन्न समस्या के समाधान हेतु कुछ सुझाव दिए थे, जो इस प्रकार हैं-

- आई.ए.एस. सेवा के लिए एक कार्यात्मक क्षेत्र निश्चित किया जाये तथा भू-राजस्व कार्यों तथा विनियमात्मक कार्यों को शामिल किया जाए;
- लोक सेवा में वेतन क्रमों में समान उत्तरदायित्व वाले अधिकारियों को समान वेतन क्रम में रखा जाये;
- प्रथम श्रेणी के सभी पदों को समान वेतन क्रमांकों में रखा जाये;
- प्रथम श्रेणी के इंजीनियरिंग पदों पर भर्ती प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से करनी चाहिए;
- प्राविधिक पदों के वरिष्ठ स्रत पर विश्व विद्यालय तथा औद्योगिक अनुभव वाले लोगों को रखा जाये;
- गैर-तकनीकी सेवाओं की परीक्षा में स्वास्थ्य (डॉक्टर) एवं प्राविधिक (इंजीनियर) विषयों को भी रखा जाए;
- केन्द्र में सचिवालय में भर्ती राज्य कर्मचारियों से की जाए;
- अनुभवी प्रशासकों एवं विशेषज्ञों की सहायता से सरकार को लोक सेवा के प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय नीति तैयार करनी चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग की दिलचस्पी सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के टकराव की समसया को हल करने में थी। चतुर्थ वेतन आयोग (1986-87) ने 'समानता' के सिद्धान्त पर विराम लगा दिया। उसने अपनी रिपोर्ट में साफ कहा: 'प्रशासनिक अधिकारियों' की श्रेष्ठता को स्वीकार करना चाहिए, विशेषज्ञों को प्रशासनिक अधिकारियों के मुकाबले वरीयता नहीं दी सकती। विशेषज्ञों को दूसरी पंक्ति में रहकर ही काम करना होगा। आयोग ने जान बूझकर विशेषज्ञों को वेतनमान कम कर दिए तथा सामान्यज्ञों के वेतन और भत्तों में बढ़ौत्तरी के लिए उदार रूख अपनाया। पाँचवे वेतन आयोग ने भी लगभग यही रूख अपनाया। इसका स्पष्ट कारण यह था कि आयोगों तथा वेतन आयोगों के सदस्य स्वयं सामान्यज्ञ से थे और वे राजनेताओं के अधिक समीप थे।

## 9.8 भारत सरकार की ओर से विवाद के समाधान के लिए पहल

भारत सरकार ने विवाद की गंभीरता और उसे बुरे परिणामों को देखते हुए समाधान हेतु अनेक कदम उठाये हैं। उनमें से महत्वपूर्ण  कदम निम्नवत् हैं-

1. **कार्यकाल प्रणाली का कमजोर होना-** परम्परागत प्रणाली यह थी कि सामान्यज्ञ अधिकारियों का जिले या क्षेत्र से सचिवालय एवं सचिवालय से जिले या क्षेत्र में स्थानान्तरण किया जाता था। यह प्रणाली अब समाप्त हो गई है। अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वरिष्ठ अधिकारियों को स्थायी रूप से सचिवालय में ही रखा जाये।
2. **नवीन विशेषज्ञ अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं की स्थापना-** भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत स्वतन्त्रता से पहले काल में केवल दो अखिल भारतीय सेवायें थीं- भारतीय सिविल सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय सिविल सेवा के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा अस्तित्व में आ गई। 1963 में भारतीय वन सेवा, भारतीय अभियान्त्रिकी सेवा तथा भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा की भी सृष्टि की गई। इस तरह नवीन अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना करके विशेषज्ञ सेवाओं के महत्व को स्वीकृति मिली है। यह भी सिफारिश की गई है कि इन सेवाओं के अधिकारियों को अच्छा वेतन तथा अन्य सेवायें भी प्रदान की जायें ताकि इनमें श्रेष्ठता का एहसास बढ़े।
3. **प्रशासनिक दायित्व के पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति-** प्रशासनिक पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति सरकार की ओर से एक अच्छी पहल है। जैसे- अब अक्सर शिक्षा विभाग का सचिव शिक्षा शास्त्री या विज्ञान सम्बन्धी मामलों के विभाग का सचिव वैज्ञानिक हो सकता है, यद्यपि राज्यों में यह रूझान अभी

कम देखने को मिलता है, लेकिन कुछ राज्यों में ऐसी पहल शुभ संकेत है। योजना आयोग में तो केवल विशेषज्ञ अधिकारी ही कार्यरत हैं।

भारत सरकार की ओर से सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के विवाद को हल करने के लिए कुछ और संरचनात्मक क्षेत्र में कदम उठाने पर जोर दिया गया है, जिनके मुख्य इस प्रकार हैं-

- पृथक पद सोपान- इस व्यवस्था के अन्तर्गत विशेषज्ञों को अधिक मान्यता मिलेगी, यद्यपि वेतनक्रम सामान्य होगा। स्वीडन, पश्चिमी जर्मनी तथा ऑस्ट्रेलिया में यह प्रणाली प्रचलित हैं।
- समान्तर पद-सोपान- इस प्रणाली में महानिदेशक (विशेषज्ञ), उच्च सचिव (सामान्यज्ञ) एवं निदेशक (अधीनस्थ विशेषज्ञ), उच्च सचिव (सामान्यज्ञ) एवं निदेशक (अधीनस्थ विशेषज्ञ) अवर सचिव के साथ मिलकर काम करते हैं।
- संयुक्त पद सोपान- इस व्यवस्था में उच्च-सचिव (सामान्यज्ञ) तथा निदेशक (विशेषज्ञ) संयुक्त रूप से स्थायी सचिव (सामान्यज्ञ) के अधीन काम करते हैं। यहाँ सामान्यज्ञवादी एवं विशेषज्ञ दोनों को ही मन्त्रालय को परामर्श देने का अवसर मिलता है।
- एकीकृत पद सोपान- यह सर्वाधिक क्रान्तिकारी सुझाव है। सुझाव यह है कि सामान्य स्तर की एक प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से लोक सेवा में भर्ती की जानी चाहिए और वेतन एवं सेवा की शर्तें भी समान होनी चाहिए। इस सेवा को भारतीय संघीय सेवा का नाम दिया जा सकता है। भारत में इस प्रणाली पर मंथन हो रहा है, जबकि पाकिस्तान में अगस्त 1973 से एकीकृत लोक सेवा के निर्माण की पहल की जा चुकी है, और सभी को समान अवसर प्रदान किए गए हैं।

लेकिन भारत में वास्तविकता यह है कि सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ विवाद के समाधान के लिए जो भी कदम उठाये जाते हैं, कहीं न कहीं भारतीय नौकरशाही उनमें बाधायें खड़ी कर देती है, क्योंकि निर्णय-निर्माण का अधिकार उसी को प्राप्त है जिसका विरोध करना राजनीतिक स्तर पर भी संभव नहीं है।

## 9.9 निष्कर्ष

ब्रिटेन, अमरीका तथा फ्रांस में सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ का विवाद काफी हद तक सुलझा लिया गया है, लेकिन भारत में यह अभी तक जारी है। स्वतंत्रता के बाद परिवर्तित परिस्थितियों ने सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों दोनों के महत्व को स्वीकृति दी है। स्पष्ट रूप से प्रशासन में दो क्षेत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण समझे गये हैं- नीति निर्माण तथा नीति कार्यान्वयन। यह दो क्षेत्र विभिन्न विभागों के मंत्रियों को सामान्यज्ञों से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ते हैं। दोनों के मध्य सीधा संवाद होता है। सामान्यज्ञ नीति निर्माण में मंत्रियों को परामर्श देता है; मंत्रियों की अक्षमताओं, भावनाओं तथा जनता से किये गये वायदों को समझाने का प्रयास करता है। इसलिए विशेषज्ञ को नीति निर्माण का कार्य सौंपना अनुचित होगा। लेकिन इतना जरूर है कि तकनीकी क्षेत्र में सामान्यज्ञ का ज्ञान लगभग शून्य होता है। अतः यहाँ विशेषज्ञ को मंत्रियों को परामर्श देने का अधिकार मिलना चाहिए।

जहाँ तक वेतन और भत्तों तथा अन्य सुविधाओं का प्रश्न है। विशेषज्ञ को भी सामन्यज्ञ के समान वेतन तथा भत्ते मिलना चाहिए, क्योंकि विशेशज्ञ अपने कार्यालय से लेकर क्षेत्र में जाकर भी काम करता हैं।

जहाँ तक सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रश्न है तो यह एक स्वनिष्ठ (subjective) विषय है। समाज या कोई वर्ग अथवा स्वयं व्यक्ति दूसरों के बारे में क्या सोचते हैं और क्यों सोचते हैं, यह सब कुछ परम्पराओं और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आज तक जितने नोबेल पुरस्कार मिले हैं वे लगभग विशेषज्ञों को ही मिले हैं। हमारा किसी के प्रति क्या नजरिया है, इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई जा सकती। प्रतिष्ठा और महत्व को वेतन या भत्तों से नहीं मापा जा सकता।

फिर भी यह स्वीकार करना चाहिए कि परिस्थिति विशेष में अथवा समस्या विशेष के समाधान के लिए विशेषज्ञ होते हैं। ऐसी स्थिति में नीति विषयक प्रश्नों पर निर्णय लेते समय विशेषज्ञों की सलाह पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यहाँ सामान्यज्ञ की स्थिति निर्णायक की तथा विशेषज्ञ की स्थिति सलाहकार की होती है। इन दोनों के नजरियों मे तारतंभ्य स्थापित रहना चाहिए। इसलिए सामान्यज्ञ को विशेषज्ञ से व्यवहार में अत्यंत सतर्क, ज्ञानशील तथा शालीन होना चाहिए। उसे विशेषज्ञ के आत्म-सम्मान को किसी भी तरह ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए।

जहाँ तक संभव हो दोनों के वेतन, भत्ते और अन्य भौतिक सुविधाऐं समान होना चाहिए। राजनीतिक स्तर पर भी विशेषज्ञों को पूरा सम्मान मिलना चाहिए। तकनीकी क्षेत्रों में नीति निर्णायक विशेषज्ञ होने चाहिए।

सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद को चौथे वेतन आयोग की नजर से कभी भी नहीं देखना चाहिए, जिसने विवाद को कम करने के बजाये और बढ़ाया, जिसकी वजह से विशेषज्ञों की देशव्यापी हड़ताल का सामन करना पड़ा था। पाँचवें और छठे वेतन आयोग का रूख तर्क ओर न्याय पर आधारित है। इन वेतन आयोगों की सिफारिशों की रौशनी में विवाद की तीव्रता को कम किया जा सकता है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. आई.ए.एस. का मौलिक नाम क्या है?
   क. आई.पी.एस. ख. आई.एफ.एस.
   ग. आई.सी.एस. घ. आई.आर.एस.
2. सामान्यज्ञ का अर्थ है-
   क. असैनिक कर्मचारियों का वर्ग ख. किसी भी प्रकार के सरकारी कर्मचारी
   ग. सामान्य कार्यालयों के कर्मचारी घ. नौकरशाह
3. फुल्टन समिति (1965) का किस देश से सम्बन्ध है?
   क. अमरीका से ख. फ्रांस से
   ग. ग्रेट ब्रिटेन से घ. भारत से
4. किस समिति ने पहली बार 'सामान्यज्ञ' और 'विशेषज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया?
   क. प्रशासनिक सुधार समिति (राजस्थान) ख. प्राक्कलन समिति (1969)
   ग. फुल्टन समिति (1965) घ. हार्थॉर्न समिति
5. नीति-निर्माण का उत्तरदायित्व किसका है?
   क. विशेषज्ञों का ख. सामान्यज्ञों का
   ग. मंत्रियों का घ. संसद का
6. किस वेतन आयोग ने विशेषज्ञों की तुलना में सामान्यज्ञों को वरियता दी?
   क. चौथे वेतन आयोग ने ख. पाँचवे वेतन आयोग ने
   ग. छठे वेतन आयोग ने घ. सातवें वेतन आयोग ने

## 9.10 सारांश

लोक प्रशासन में सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ का विवाद एक गंभीर समस्या है। इसने भारत के विकास की गति को धीमा किया है। यह विवाद क्या है, इसे सारांश में समझना होगा-

- मानवीय स्तर पर किसी देश के बहुमुखी विकास की जिम्मेदारी दो प्रकार के सरकारी कर्मचारीगण पर निर्भर करती है- (1) सामान्यज्ञ जिनका काम मुख्यतया प्रशासनिक होता है, तथा (2) विशेषज्ञ जिनका काम तकनीकी होता है।

- सामान्यज्ञों में ऐसे व्यक्ति आते हैं जिन्होंने अनिवार्य शिक्षा प्राप्त की हो तथा जिनका चयन उनकी योग्यता तथा बौद्धिक क्षमता के आधार पर लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाये।
- विशेषज्ञों में ऐसे युवा आते हैं जिन्होंने एक निश्चित तकनीकी शिक्षा प्राप्त की हो और जो अपनी दक्षता के आधार पर लोक सेवा आयोग से चुनकर आयें।
- सामान्यज्ञों में अधिकांशतः आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ.एस. के अधिकारी होते हैं, जबकि विशेषज्ञों में वैज्ञानिक, डॉक्टर, इन्जीनियर, अर्थशास्त्री, विधिशास्त्री इत्यादि आते हैं।
- सामान्यज्ञों को आमतौर से लोक सेवक या नौकरशाह (Bureaucrats) कहा जाता है, जबकि विशेषज्ञों को आजकल शिल्पी-तांत्रिक (Technocrats) कहा जाता है।
- नौकरशाह या सामान्यज्ञ स्वयं को अधिक शक्तिशाली, प्रभावशाली, प्रतिशिक्षित और महत्वपूर्ण मानते हैं। इनकी मानसिकता अभिजातीय और सामन्ती होती है। यह मानते हैं कि उनकी जड़े अतीत के गौरवशाली इतिहास में हैं, इनको प्रशासन करने का स्वाभाविक और दैवी अधिकार है।
- विशेषज्ञ भी अपनी हैसियत को किसी तरह कमतर नहीं आंकते। उनका दावा है कि वे अपने कार्य में दक्षता और महारत रखते हैं। बिना उनके देश का विकास एक क्षण के लिये भी आगे नहीं बढ़ सकता।
- लेकिन सच यह है कि शासकीय स्तर पर सामान्यज्ञों को अधिक महत्व दिया जाता है। इनका वेतनमान, इनके भत्ते तथा इनकी सुविधायें विशेषज्ञों की तुलना में कहीं अधिक होती हैं।
- सामान्यज्ञ प्रशासनिक कार्यों के अतिरिक्त नीति-निर्माण का कार्य भी करते हैं। वे मंत्रियों को परामर्श देते हैं और उनके समीप रहते हैं, इसलिये उनका महत्व विशेषज्ञों से अधिक होता है।
- इसी कारण वे शासकीय तथा सामाजिक स्तर पर अधिक प्रतिष्ठित मानते जाते हैं।
- इस तरह सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में टकराव मनोवैज्ञानिक रूप का होता है, जिसने अनेक बार देश को संकट में डाला है।
- भारत सरकार ने इस विवाद को गंभीरता से लिया है और इसके समाधान के लिए समय-समय पर आयोगों और समितियों द्वारा प्रयास किये हैं।
- अब धीरे-धीरे सरकार की समझ-बूझ से यह विवाद धीमा पड़ता जा रहा है, यद्यपि नौकरशाही की मानसिकता में  कोई बदलाव नहीं आया है।
- वर्तमान युग इलेक्ट्रॉनिकी, डिजीटल (बाइनरी डिजेट से संचालित सूचना संग्रह) कम्प्यूटरिंग का है, जो विशेषज्ञों की देन है ओर जिसने प्रशासनिकों को भी अतिरिक्त मस्तिष्क प्रदान कर दिया है, ऐसे में विशेषज्ञों का कृतज्ञ होकर और प्रोत्साहन देकर उनका सम्मान करना पूरे समाज का कर्तव्य है।

## 9.11 शब्दावली

सबजैक्टिव (Subjective)- आत्मनिष्ठ, व्यक्तिनिष्ठ अर्थात कोई व्यक्ति दूसरे के बारे में क्या सोचता है और क्यों सोचता, यह सब कुछ उसके नजरिए पर निर्भर करता है।

Psychic Crisis- मनोसंकट अर्थात किसी व्यक्ति का किसी घटना, व्यवहार अथवा समस्या को देखकर या महसूस करके मानसिक उथल-पुथल से ग्रस्त हो जाना और ऐसी प्रतिक्रियायें व्यक्त करना जो हानिकारक हो सकती हैं।

Ecological- परिस्थितिय अर्थात ऐसा वातावरण जो व्यक्ति के आचरण और सोच को निश्चित करता है। यह वातावरण, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हो सकता है।

## 9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** ग **2.** घ **3.** ग **4.** ख **5.** ख **6.** क

## 9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. अवस्थी/अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
2. Ashok Chandra : Indian Administration.
3. Maheshwari, S.R. : Indian Administration.
4. Sarkaria Report, Part 1 (1998)


## 9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. Maheshwari, S.R. : The Administrative Reforms Commission.
2. Buch, M.N. : Administrative Inffeectiveness.


## 9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का अन्तर बताते हुए सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद के चार कारणों को स्पष्ट कीजिए।
2. चौथे वेतन आयोग का रूख सामान्यज्ञों के बारे में क्या था? इसका क्या परिणाम निकला?
3. सामान्यज्ञ क्यों स्वयं को विशेषज्ञों से उच्चतर मानते हैं?
4. प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 की सिफारिशों को समझाइए।
5. सरकार की ओर से सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद को सुलझाने के लिये कौन से पदसोपनीय सम्बन्धी सुझाव दिये गये?

# इकाई- 10 संघ लोक सेवा आयोग/राज्य लोक सेवा आयोग/कर्मचारी चयन आयोग

**इकाई की संरचना**

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 कार्मिक अभिकरण : अर्थ एवं उद्देश्य
10.3 भारत में कार्मिक अभिकरण
10.4 संघ लोक सेवा आयोग
  10.4.1 संघ लोक सेवा आयोग का उद्भव एवं विकास
  10.4.2 संघ लोक सेवा आयोग का संगठन
  10.4.3 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य
  10.4.4 संघ लोक सेवा आयोग की सलाहकार भूमिका
  10.4.5 संघ लोक सेवा आयोग की भूमिका का मूल्यांकन
10.5 राज्य लोक सेवा आयोग
  10.5.1 राज्य लोक सेवा आयोग के गठन सम्बन्धी प्रावधान
  10.5.2 राज्य लोक सेवा आयोग का संगठन
  10.5.3 राज्य लोक सेवा आयोग के कार्य
  10.5.4 राज्य लोक सेवा आयोग की सलाहकार भूमिका
  10.5.5 राज्य लोक सेवा आयोग की भूमिका का मूल्यांकन
10.6 कर्मचारी चयन आयोग
  10.6.1 कर्मचारी चयन आयोग के गठन सम्बन्धी प्रावधान
  10.6.2 कर्मचारी चयन आयोग का संगठन
  10.6.3 कर्मचारी चयन आयोग के कार्य
  10.6.4 कर्मचारी चयन आयोग की भूमिका का मूल्यांकन
10.7 कार्मिक अभिकरणों की भूमिका का मूल्यांकन
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 10.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन की क्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की विशाल संख्या की जरूरत पड़ती है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। लोक सेवकों के पदों की भर्ती के लिए एक ऐसे निकाय की आवश्यकता होती है जो राजनीतिक एवं प्रशासनिक दबाव से मुक्त होकर कार्य कर सके। विकासशील एवं

प्रजातांत्रिक देशों में इस कठिन एवं दुरूह कार्य को लोक सेवा आयोग द्वारा संपन्न किया जाता है। लोक सेवा आयोग लोक सेवाओं में योग्यता को एकमात्र मापदंड मानकर उसे अन्य राजनीतिक संस्थाओं के संभावित दबाबों से बचाता है तथा निष्पक्षता बनाए रखता है। यद्यपि इस प्रकार के आयोग परामर्श दात्री संस्थाओं के रूप मे कार्य करती है, फिर भी इनकी सिफारिशें स्वीकार नहीं की जाती। भारत में संघ लोक सेवा आयोग के महत्व को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है।

कार्मिक ऐसी धुरी हैं जिनके इर्द-गिर्द चारों ओर प्रशासन घूमता रहता है। भारत मे संघ लोक सेवा आयोग को केन्द्रीय लोक सेवकों की नियुक्ति का कार्य सौंपा गया है तथा राज्य स्तर पर गठित राज्य लोक सेवा आयोग राज्य के लोक सेवकों की नियुक्ति करता है। इसी प्रकार प्रशासन के निचले स्तर के कार्मिकों की नियुक्ति कर्मचारी चयन आयोग के माध्यम से होता है।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में लोक सेवाओं के विविध कार्मिक अभिकरणों से परिचय कराना है। इसमें संघ लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग एवं कर्मचारी चयन आयोग के उद्भव एवं विकास, संगठन, कार्य एवं भूमिका के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा।

भारत के कार्मिक अभिकरणों की आवश्यकता, क्रम-विकास आदि मुद्दों पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा।

## 10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत के विविध कार्मिक अभिकरणों के महत्व एवं कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- साथ ही आपको संघ लोक सेवा आयोग के उद्भव एवं विकास, संगठन, कार्य एवं भूमिका के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- आप राज्य लोक सेवा आयोग के गठन, कार्य एवं भूमिका के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे तथा
- कर्मचारी चयन आयोग के गठन सम्बन्धी प्रावधान, कार्य एवं भूमिका से भी आप अवगत होंगे।

## 10.2 कार्मिक अभिकरण: अर्थ एवं उद्देश्य

किसी संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य कर सके। कर्मचारियों की पूर्ति के इस कार्य को भर्ती तथा चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। किसी संगठन में लोक सेवकों का चयन सर्वाधिक आवश्यक कार्य है। राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। आज के संदर्भ में राज्य केवल सतही और विनियामक कार्य ही नहीं करता बल्कि वह लोगों की राज्य के प्रति आकांक्षाओं के अनुरूप आर्थिक विकास को गति देता है और सामाजिक और संस्कृति प्रगति को भी एक परिवर्तित रूप देता है। सरकार के कार्य, परिस्थितियों के अनुसार विगत कई दशकों से परिवर्तित हुए हैं और अब प्रशासन एक गतिमूलक, परिवर्तनमूलक और उद्देश्यमूलक प्रणाली का रूप ले चुका है। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्मिक अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं। कार्मिकों को व्यवसायिक और प्रेरणात्मक रूप से तैयार करने के लिए एक ठोस संगठनात्मक प्रणाली का विकसित होना अत्यावश्यक है और ऐसी संगठनात्मक संरचना की छवि हमें केंद्रीय कार्मिक अभिकरण में दिखाई पड़ती है। केंद्रीय कार्मिक अभिकरण ऐसे ही माध्यम हैं जो सभी महत्वपूर्ण कार्मिक गतिविधियों को क्रियान्वित करते हैं तथा भावी नीतियों को बनाने में और विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने में

सही दिशा भी प्रदान करते हैं। कार्मिक अभिकरण सक्रिय कार्मिक नीति बनाने और कार्मिक संबंधी आधुनिक प्रयोगों को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

## 10.3 भारत में कार्मिक अभिकरण

भारत जैसे विशाल देश में कार्मिक अभिकरणों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। भारत चीन के बाद विश्व की सबसे घनी आबादी वाला देश है। पर्याप्त श्रमिक बल, कुशल स्नाकतकों की अपार संख्याव तथा तेज़ी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के चलते, रोजगार के अवसरों की ज़रूरत में अत्यधिक वृद्धि हुई है। स्वतंत्रता के पश्चात कार्मिक संबंधी कार्यों का निष्पादन केंद्र स्तर पर गृह मंत्रालय अपनी सेवा तथा स्थापना शाखा के अधिकारियों के माध्यम से करता था। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाओं के पश्चात वर्ष 1970 में कार्मिक विभाग की स्थापना की गई थी। उस समय यह मंत्रिमंडल सचिवालय में स्थित था और प्रधानमंत्री के नियंत्रण में कार्य करता था। विविध अध्ययन दलों तथा आयोगों की अनुशंसा के आधार पर इसमें समयानुसार परिवर्तन भी किए गए। अनंतर अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के कार्मिकों को नियंत्रित एवं निर्देशित करने, संघीय कार्यालयों के विरुद्ध जन शिकायतों का निवारण करने तथा केंद्र सरकार के सेवानिवृत्त कार्मिकों को पेंशन संबंधी मामलों में कार्रवाई करने के लिए कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना 1985 में की गई थी। 1985 में केंद्रीय सचिवालय के मंत्रालयों में पुनर्गठन करते हुए कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय की स्थापना की गई। यह मंत्रालय प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करता है, जिसकी सहायता के लिए राज्यमंत्री और उप मंत्री नियुक्त होते हैं। कार्मिक, प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन भोगी कल्याण मंत्रालय में तीन अलग-अलग विभाग शामिल हैं: कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग तथा पेंशन और पेंशन भोगी कल्याण विभाग।

इसके साथ ही, भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 315 के अधीन गठित एक संवैधानिक प्राधिकरण के रूप में संघ लोक सेवा आयोग उच्च सिविल सेवा के अधिकारियों तथा संघ सरकार के संबंधित अन्य पदों की परीक्षा और साक्षात्कार के माध्यम से अधिकारियों की भर्ती करने के अलावा केंद्रीय कार्मिक प्रशासन की संरचना में एक सलाहकार की भूमिका भी निभाता है। राज्य स्तर पर यह व्यवस्था राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा संपादित की जाती है। संघ लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग और कर्मचारी चयन आयोग विभिन्न सेवाओं एवं पदों पर भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षाएं आयोजित करते हैं।

भारत के संविधान में लोक सेवा आयोगों के तीन वर्गो पर विचार किया है। संविधान के अनुच्छेद 315 से 323 में एक 'संघीय लोक सेवा आयोग' और राज्यों के लिए 'राज्य लोक सेवा आयोग' के गठन का प्रावधान है। संघ लोक सेवा आयोग संघ सरकार की सेवाओं संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा, एक संयुक्त लोक सेवा आयोग दो या अधिक राज्यों की और राज्य लोक सेवा आयोग एक राज्य की सेवाओं संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग तो सांविधानिक निकाय हैं, परन्तु संयुक्त लोक सेवा आयोग का निर्माण संसद के अधिनियम द्वारा ही हो सकता है।

## 10.4 संघ लोक सेवा आयोग

लोक सेवकों की नियुक्ति के संबंध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक निष्पक्ष संस्था की स्थापना है, जो राजनीतिक और प्रशासनिक दबाव से मुक्त होकर कार्य करे। साथ ही नियुक्तियां समय पर हो तथा मापदंड योग्यता पर आधारित हो, इन्हीं सारी बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में भारत में संघ लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई है तथा इसे संवैधानिक दर्जा भी प्रदान किया गया है। संघ लोक सेवा आयोग एक स्वतंत्र संस्था है, जो कार्मिक प्रशासन के मामले में सरकार के एक निष्पक्ष और सुविज्ञ परामर्शदाता की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका हमारी कार्य पद्धति में एक

महत्वपूर्ण स्थान है और यह एक दक्ष और निष्पक्ष लोक सेवा बनने में सरकार की सहायता करता है। भारतीय शासन अधिनियम, 1919 द्वारा सर्वप्रथम एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई थी यद्यपि यह आयोग 1926 में स्थापित हो पाया। अनंतर 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा संघ में लोक सेवा आयोग की स्थापना के अतिरिक्त प्रांतों में भी लोक सेवा आयोग की व्यवस्था का प्रावधान रखा गया। स्वतंत्र भारत में संविधान के लागू होते ही संघीय सरकार के लिए एक संघ लोक सेवा आयोग तथा संघ के घटक भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए राज्य लोक सेवा आयोग का प्रावधान किया गया।

संघ लोक सेवा आयोग भारत के संविधान द्वारा स्थापित एक संवैधानिक निकाय है जो भारत सरकार के लोकसेवा के पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करती है। संविधान के अनुच्छेद 315 से लेकर 323 तक में एक संघीय लोक सेवा आयोग और राज्यों के लिए राज्य लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है।

## 10.4.1 संघ लोक सेवा आयोग का उद्भव एवं विकास

भारत में लोक सेवा आयोग के गठन का लंबा इतिहास है। स्वतंत्रता से पूर्व इस प्रकार के आयोगों के गठन के प्रयास ब्रिटिश शासकों द्वारा किए गए थे। यहाँ तक कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी कर्मचारियों की आवश्यकता को देखते हुए इस दिशा मे प्रयास किए। लोक सेवा के सिविल कर्मचारी की संज्ञा सबसे पहले ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के उन कर्मचारियों को दी गई थी जो भारत में इसके वाणिज्यिक कार्यों के प्रशासन से संबंधित थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी तब इंग्लैंड में इसके 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' द्वारा चुने जाते थे और भर्ती किए जाते थे। भर्ती के उद्देश्य से, पूर्वी व्यापार और वाणिज्यिक लेखाओं का प्राथमिक ज्ञान उम्मीदवारों की योग्यता माना जाता था लेकिन कुल मिलाकर भर्ती प्रश्रय के आधार पर की जाती थीं। चूँकि नियुक्तियाँ निदेशकों द्वारा नामित व्यक्तियों के लिए पूर्णतः आरक्षित थी, अतः इससे सेवाओं के लिए भर्ती में और अधिक भ्रष्ट तरीके इस्तेमाल होने लगे।

सर्वप्रथम 1833 में लार्ड ग्रेनविल ने यह मांग कि उम्मीदवारों की भर्ती निदेशकों द्वारा किए गए नामांकनों के बजाए प्रतियोगिता के आधार पर होनी चाहिए। लेकिन 1853 तक इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। फिर भी ईस्ट इंडिया कम्पनी को प्रदत्त चार्टर अधिनियम, 1833 में एक खंड जोड़ा गया कि भविष्य में सिविल सेवा के लिए पात्रता का मानदंड उपयुक्तता होगी और जाति तथा रंग का कोई भेदभाव नहीं बरता जाएगा। भारत में सिविल सेवाओं में नियुक्तियों के लिए नामांकन के संबंध में निदेशकों का अधिकार अप्रैल, 1854 के अंत तक जारी रहने दिया गया। 1833 के अधिनियम को अमल में लाने के लिए उपायों पर सलाह देने के लिए सर चार्ल्स वुड ने 1854 में लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की और इससे, सिद्धान्त रूप में ही सही, भारतीय सिविल सेवा में नियुक्तियाँ, बिना किसी भेदभाव के, प्रतियोगिता के आधार पर होने लगी। समिति ने सिफारिश की कि प्रत्याशियों का चयन प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर होना चाहिए। कर्मचारियों की अंतिम रूप से नियुक्ति से पहले परिवीक्षा अवधि होनी चाहिए और हेलीबरी कॉलेज बंद कर देना चाहिए।

प्रतियोगी परीक्षा प्रणाली की प्रथम परीक्षा भारत में हुई और फिर धीरे-धीरे यह इंग्लैंड में भी अपनाई गई। लेकिन सेवाओं के भारतीयकरण की प्रक्रिया 1909 तक बहुत धीमी गति से चलती रही। मार्ले- मिंटो सुधार शुरू किए गए लेकिन यह सुधार भारतीयों को संतुष्ट नहीं कर सके।

संघ लोक सेवा आयोग के उद्भव एवं विकास को तीन काल खंड मे विभाजित किया जाता है-

**प्रथम काल (1926-37)-** लोक सेवा निकायों के स्थापना का प्रयास उन दिनों हुआ जब 1919 में तत्कालीन अंग्रेजी शासकों ने भारत के लिए स्वायत्त शासन की आवश्यकता स्वीकार की। सन 1919 के भारतीय शासन अधिनियम में इस भावना की व्यावहारिक अभिव्यक्ति मिलती है। उसमें एक सार्वजनिक सेवा आयोग की स्थापना

का प्रावधान था जिसकी सेवाओं के लिये पदाधिकारियों की भर्ती, भारत की सार्वजनिक सेवाओं का नियंत्रण तथा ऐसे अन्य कर्त्तव्य होंगे जिनका निर्देश सपरिषद भारत सचिव करेंगे। परंतु उस आयोग की स्थापना तत्काल नहीं हुई। भारत सरकार अधिनिय, 1919 तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट मांटेग्यू तथा तत्कालीन वायसराय और गवर्नर जनरल ऑफ इंडिया लार्ड चैम्सफोर्ड द्वारा प्रस्तुत संयुक्त रिपोर्ट पर आधारित था। यह भारत में लोक सेवा आयोग की स्थापना की दिशा में पहला कदम था। इस अधिनियम में एक सक्षम और स्वतंत्र सिविल सेवा रखने के महत्व को मान्यता दी गई थी। बिना किसी राजनीतिक हस्तक्षेप के सिविल कर्मचारियों की किसी विशेषज्ञ निकाय द्वारा भर्ती करने की तथा ऐसे एक स्थायी कार्यालय की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया गया। अधिनियम के निर्माताओं ने यह अवलोकन किया था कि भारत में लोक सेवा आयोग की स्थापना हो जाने पर भारतीय लोक सेवाओं में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में आ सकेंगे और साथ ही सिविल कर्मचारियों की राजनीतिक हस्तक्षेप से सुरक्षा भी हो सकेगी। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार लाके सेवा आयोग की सदस्य संख्या, अध्यक्ष को मिलाकर, पाँच से अधिक नहीं हो सकती थी। प्रत्येक सदस्य अपने पद पर पाँच वर्ष तक रह सकता था और पुनः नियुक्ति के लिए पात्र था।

अनंतर 1923 में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा के साथ सम्बद्ध स्थापित करने की अपनी घोषित नीति के अनुपालन में लार्ड ली की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया। लॉर्ड ली के नेतृत्व में नियुक्त शाही आयोग को भारतीय उच्च सेवाओं के संबंध मे विचार एवं विवरण प्रस्तुत करना था। उस शाही आयोग ने तत्काल उस लोक सेवा आयोग की स्थापना की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। आयोग की राय थी कि सरकार को अपनी जिम्मेदारी निभाने की दिशा में सहायता प्रदान करने के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना आवश्यक थी। इसका विचार था कि लोक सेवा आयोग की स्थापना के संबंध में उसकी सिफारिश उस रिपोर्ट की एक आधारभूत विशेषता थी और सेवाओं के भविष्य के लिए उसके प्रस्तावों का पूरी संरचना का अभिन्न और अनिवार्य अंग थी। आयोग की सिफारिशों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रान्तों के लिए ऐसे आयोगों का सुझाव नहीं दिया था और राय दी थी कि केन्द्र के लोक सेवा आयोग की विशेषज्ञता का उपयोग प्रान्तीय सरकार को भी करने दिया जाए। शाही आयोग का प्रस्ताव था कि उक्त आयोग के निम्नलिखित चार मुख्य कार्य होंगे- (क) सार्वजनिक सेवाओं के लिये कर्मचारियों की भर्ती, (ख) सेवाओं में प्रविष्ट होनेवाले व्यक्तियों की योग्यताओं का विधान तथा उचित मानक स्थापित करना, (ग) सेवाओं के अधिकारों की सुरक्षा करना तथा नियंत्रण एवं अनुशासन की व्यवस्था करना तथा (घ) सामान्य रूप से सेवा संबंधी समस्याओं पर परामर्श एवं अनुमति देना।

अनुशंसाओं के फलस्वरूप लोकसेवा आयोग की स्थापना अक्टूबर 1926 में हुई। इसका एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य थे। यह प्रावधान किया गया कि अखिल भारतीय प्रथम और द्वितीय श्रेणियों की सेवाओं के, उन प्रतियोगिता परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों के निर्धारण, जिनके द्वारा कर्मचारियों का निर्वाचन हो, उक्त सेवाओं के लिये पदोन्नति, अनुशासनीय कार्य, वेतन, भत्ते, पेंशन, प्रॉविडेंट फंड एवं पारिवारिक पेंशन विषय आदि मामलों में सरकार उससे परामर्श ले। किसी वर्ग विशेष या सभी सेवाओं के नियम तथा छुट्टी आदि के नियमों के प्रश्नों पर भी सरकार उक्त आयोग से परामर्श करेगी। इसे अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवा प्रथम श्रेणी में भर्ती से संबंधित सभी विषयों पर गवर्नर जनरल इन काउंसिल को सलाह देनी थी। आयोग को सौंपे गए कार्य मात्र परामर्शी स्वरूप के थे। ली आयोग चाहता था कि जहाँ तक भारत में सेवाओं में भर्ती का संबंध है, लोक सेवा आयोग का प्राधिकार अंतिम होना चाहिए। लेकिन तब भारत सरकार ने उसकी सिफारिशों पर कोई ध्यान नहीं दिया और इसलिए लोक सेवा आयोग को केवल परामर्शी शक्तियों सहित गठित किया गया।

लंदन में 1930 में सम्पन्न पहली गोलमेज कांफ्रेंस में एक प्रस्ताव रखा गया था कि, प्रत्येक प्रान्त में और केन्द्र सरकार के संबंध में, यथास्थिति, गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल द्वारा एक सांविधानिक लोक सेवा आयोग नियुक्त

किया जाएगा। ब्रिटिश सरकार के जो सांविधानिक प्रस्ताव 15 मार्च, 1933 को प्रकाशित हुए थे, उनमें भी व्यवस्था थी कि फेडरल लोक सेवा आयोग के साथ-साथ प्रान्तों में भी लोक सेवा आयोग गठित किए जाए। भारतीय सांविधानिक सुधारों पर संयुक्त समिति (1933-34) भी ऐसे प्रस्तावों पर सहमत थी और उसने भी सारे भारत के लिए एक से अधिक लोक सेवा आयोग गठित करने की आवश्यता को स्वीकार किया था।

**द्वितीय काल (1937-50)-** भारतीय लोक सेवा आयोग के 1930-36 के क्रियाकलापों से पता चलता है कि यह आयोग एक शक्तिशाली कार्मिक अभिकरण नही बन सका। यह कार्यपालिका से स्वतंत्र नहीं था। भारत सरकार अधिनियम, 1935, जिसके अंतर्गत प्रान्त पूर्णतया उत्तरदायी बन गए थे, ने सिविल सेवा आयोग के कार्यों का सांविधानिक प्राधिकार बढ़ा दिया था। सन 1935 के भारतीय विधान के परिच्छेद 266 में, उपर्युक्त प्रस्तावों को स्थाई रूप दिया गया। उसमें लोक सेवा आयोगों के कर्त्तव्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिया गया। यह कहा जा सकता है कि उक्त विधान के द्वारा ही आयोगों की अंतिम एवं स्थायी रूप में रचना की गई थी। इस अधिनियम के 1937 में लागू होने से लोक सेवा आयोग का नाम फेडरल लोक सेवा आयोग रख दिया गया। इसमें यह भी व्यवस्था थी कि प्रान्त भी अपने-अपने लोक सेवा आयोग गठित करें। आज के केंद्रीय अथवा राज्यों के आयोग का संगठन, रूप एवं आधार, सब उसी पर आधारित हैं।

इस आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा किया जाना था। आयोग के सदस्यों की संख्या, उनकी पदावधि, सेवा शर्तों आदि गवर्नर जनरल पर ही निर्भर था। प्रावधान यह था कि आयोग के कम से कम आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जिन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के अधीन कम से कम दस वर्ष तक पद संभाला हो। इस आयोग को निम्नलिखित मामलों पर सरकार को सलाह भी देनी थी-

- सिविल सेवाओं और सिविल पदों के लिए भर्ती के तरीकों से संबंधित सभी मामले।
- सिविल सेवाओं और सिविल पदों पर नियुक्तियों करने तथा पदोन्नतियाँ करने और एक सेवा से दूसरी सेवा में अंतरण करने व ऐसी नियुक्ति, पदोन्नति अथवा अन्तरण के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता के संबंध में मामले।
- सिविल कर्मचारी की हैसियत से सेवारत व्यक्ति से संबंधित सभी अनुशासनिक मामले।
- किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा उसकी डयूटियों के निष्पादन में किए गए कार्यो के खिलाफ, यदि कोई कानूनी कार्यवाही की जाती है तो उसमें अपने बचाव के लिए किए गए व्ययों के प्रतिपूर्ति के लिए दावों से संबंधित मामले, और
- सिविल कर्मचारी की हैसियत में किसी सरकारी कर्मचारी को पहुँची क्षति के लिए पेंशन प्रदान करने संबंधी मामले, तथा गवर्नर जनरल द्वारा आयोग को भेजे गए कोई अन्य मामले।

**तृतीय काल(1950 से अब तक)-** फेडरल लोक सेवा आयोग अपने वर्तमान रूप में 1947 से 1950 के बीच काम करता रहा। 26 जनवरी 1950 को जब भारत का संविधान लागू हुआ तो इसका स्थान अंतिम रूप से संघ लोक सेवा आयोग ने ले लिया। भारत की स्वाधीनता कुछ दृष्टियों से संघ लोक सेवा आयोग के लिए एक नए युग का सूत्रपात हुआ। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संघ लोक सेवा आयोग को न्यायपालिका तथा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के साथ-साथ लोकतंत्र को दृढ बनाने का साधन समझा। अतः उन्होंने इसे न केवल सांविधानिक दर्ज़ा दी, बल्कि इसकी स्वतंत्रता के बचाव के लिए विस्तृत उपायों की भी व्यवस्था की।

### 10.4.2 संघ लोक सेवा आयोग का संगठन

भारतीय संविधान में संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा सेवा संबंधी शर्तों का उल्लेख नहीं किया गया है तथा इसे राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है। लोक सेवा आयोग (संघ अथवा संयुक्त) का अध्यक्ष

तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार राज्य आयोग के मामले में अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य उस राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संविधान में आयोग के सदस्यों के संख्या नियत नहीं की गई है किन्तु आयोग के आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जिन्होंने भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष तक किसी न किसी पद पर कार्य किया हो।

सामान्यतया संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष के अतिरिक्त 10 सदस्य होते हैं जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं । सदस्यों का कार्यकाल पदभार ग्रहण करने की तिथि से 6 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, जो भी पहले हो, होता है। सामान्यतया सदस्यों की नियुक्ति करते समय नियुक्ति करते समय प्रशासनिक योग्यता के साथ साथ उनके चरित्र, कर्तव्य निष्ठा और ईमानदारी को भी ध्यान में रखा जाता है। ये कभी भी अपना इस्तीफ़ा राष्ट्रपति को सौप सकते हैं। कार्यकाल पूर्ण होने से पहले राष्ट्रपति इन्हें पद की अवमानना या अवैध कार्यों में लिप्त होने के लिए बर्ख़ास्त कर सकता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 317 में सदस्यों के अपदस्थ करने की प्रक्रिया का वर्णन मिलता है इसके अनुसार राष्ट्रपति निम्न स्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या अन्य किसी सदस्य को कार्यकाल के पूर्व भी हटा सकता है - क. यदि अध्यक्ष या सदस्य दिवालिया हो गया हो, ख. यदि आयोग के सेवाकाल में उन्होंने अन्य वेतनभोगी पद स्वीकार किया हो तथा ग. यदि राष्ट्रपति के विचार में अध्यक्ष या सदस्य शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलता के कारण अपने पद का कार्यभार ग्रहण करने में असमर्थ हो।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त दुराचरण और कदाचार के अपराध में भी राष्ट्रपति उन्हें सर्वोच्च न्यायालय से जांच कराकर हटा सकता है। शब्द ‘कदाचार’ को संविधान में स्पष्ट कर दिया गया है। कोई सदस्य कदाचार का दोषी तब माना जाएगा जब (क) वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार की ओर से किए गए किसी करार या संविदा में उसका हित लाभ हो या वा उससे संबंधित हो अथवा (ख) वह किसी निगमित कम्पनी के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर ऐसे करार अथवा संविदा में किसी भी रूप से लाभ का भागीदार हो।

संघ लोक सेवा आयोग के लिए राष्ट्रपति आयोग के सदस्यों में से एक सदस्य को एक कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर सकता है यदि-आयोग के अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाये अथवा, आयोग का अध्यक्ष अनुपस्थिति या किसी अन्य कारण से अपने कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो।

इस तरह का सदस्य एक कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है, जब तक किसी व्यक्ति को कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करने के लिए अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जाये या जब तक अध्यक्ष पुनः अपना कार्य आरंभ ना कर दे, जैस भी मामला हो।

आयोग के सदस्यों के वेतन और भत्ते तथा अन्य शर्तों को तय करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान किया गया है जिसे उनकी पदावधि में बदला नहीं जा सकता। 7 वें वेतन आयोग के अनुरूप संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को रु. 2,50,000 तथा तथा सदस्यों को रु. 2,25,000 मासिक वेतन मिलता है। संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन सहित अन्य सभी प्रकार के खर्चे भारत सरकार की संचित निधि से दिए जाते हैं।

इसके साथ ही आयोग का सचिवालय भी है, जिसमें अनेक प्रकार के कर्मचारी कार्यरत हैं। औपचारिक रूप से आयोग के कार्यालय को केंद्रीय सचिवालय का ही एक अंग माना जाता है। कार्यालय के कर्मचारियों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। आयोग में एक सचिव और दो अतिरिक्त सचिव होते हैं । साथ ही कार्यपालक निदेशक, सूचना प्रणाली निदेशक, परीक्षा सुधार संयुक्त सचिव, 14 उपसचिव और अनेक विशेषज्ञ अधिकारी और अन्य कार्यालय अधिकारी कार्यरत होते हैं। इनके अतिरिक्त आयोग में कार्यों की प्रकृति के आधार पर ढेर सारी नियुक्तियां भी की जाती है। संघ लोक सेवा आयोग के सचिव का दर्जा भारत सरकार के संयुक्त सचिव के समकक्ष है तथा उसका वेतनमान और अन्य सेवा शर्ते भारत सरकार के संयुक्त सचिवों के अनुरूप ही है। संविधान के अनुच्छेद-318 में संघ लोक सेवा आयोग में कर्मचारियों की संख्या एवं उनकी सेवा शर्तों के संबंध में विनियम

बनाने की बनाने का अधिकार राष्ट्रपति के पास है। आयोग का कर्मचारी केंद्रीय सचिवालय के विभागों में स्थानांतरित अथवा पदोन्नत हो सकता है।

भारत के संघ लोक सेवा आयोग का मुख्यालय धौलपुर हाउस, नई दिल्ली मे स्थित है। कुंडलाकार की यह सुन्दर इमारत इंडिया गेट के बगल में शाहजहां रोड पर स्थित है। पहले यह धौलपुर राजघराने का निवास हुआ करता था और इसका निर्माण भी नई दिल्ली के निर्माण के दौरान 1920 के दशक में किया गया था।

### 10.4.3 संघ लोक सेवा आयोग के कार्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-315 के अधीन गठित एक संवैधानिक प्राधिकरण के रूप में संघ लोक सेवा आयोग उच्च सिविल सेवा के अधिकारियों तथा संघ सरकार के संबंधित अन्य पदों की परीक्षा और साक्षात्कार के माध्यम से अधिकारियों की भर्ती करने के अलावा केंद्रीय कार्मिक प्रशासन की संरचना में एक सलाहकार की भूमिका भी निभाता है। समय के साथ इसके कार्यों मे विस्तार हुआ है। संघ लोक सेवा आयोग के जो कार्य संविधान में अनुच्छेद- 320 के अंतर्गत विनिर्दिष्ट किए गए हैं वे वही हैं जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 में फेडरल लोक सेवा आयोग के लिए विनिर्दिष्ट किए गए थे। इन कार्यों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में बाँटा गया है- यथा (1) नियामक, (2) कार्यपालक (3) अर्ध-न्यायिक

1. **नियामक कार्य-** नियामक कार्यों में संघ लोक सेवा आयोग सरकार को निम्नलिखित से संबंधित मामलों में सलाह देता है- भर्ती के तरीके और नियुक्तियाँ, पदोन्नतियाँ तथा एक सेवा में दूसरी सेवा में अन्तरण करने के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धान्त। फिर भी, संयुक्त राज्य अमेरिका के लोक सेवा आयोग को जिस प्रकार का नियामक अधिकार क्षेत्र मिला हुआ है, भारत में संघ लोक सेवा आयोग को ऐसी कोई शक्तियाँ नहीं मिली हैं। संघ लोक सेवा आयोग का कार्य क्षेत्र मात्र परामर्शी है। संविधान के अनुच्छेद-320 (3) में केवल यह उल्लेख है कि यह आयोग का कर्तव्य है कि वह सरकार को सिविल सेवा में भर्ती की पद्धतियों, पदोन्नतियों और अन्तरणों से संबंधित सभी मामलो में सलाह दें। यद्यपि संघ लोक सेवा आयोग के कुछ कार्यों को प्रायः नियामक कार्य कहा जाता है, परन्तु वास्तव में वह कार्य भी मात्र सलाहकारी कार्य ही है।
2. **कार्यपालक कार्य-** आयोग का एक विशिष्ट सांविधानिक कर्तव्य है कि वह संघ की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाएँ ले। इस प्रावधान के अधीन संघ लोक सेवा आयोग प्रति वर्ष विभिन्न वर्गो के पदों के लिए अनेक लिखित परीक्षाएँ लेती है। साथ ही विशिष्ट और अन्य वर्गों के पदों के लिए उम्मीदवारों का चयन करने के लिए साक्षात्कार भी आयोजित किए जाते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आयोग का कार्य-क्षेत्र राजपत्रित अधिकारियों तक ही सीमित रखा गया है, जिनकी संख्या सरकारी कर्मचारियों की कुल संख्या की तुलना में बहुत कम है। वस्तुतः आयोग का कार्यपालक कार्य क्षेत्र केन्द्र सरकार के कुल कर्मचारियों के 1.9 प्रतिशत कर्मचारियों पर ही लागू होता है।

   संघ लोक सेवा आयोग का दूसरा कार्यपालक कार्य है, राष्ट्रपति को प्रति वर्ष आयोग द्वारा पिछले वर्ष के दौरान किए गए कार्य की रिपोर्ट प्रस्तुत करना। राष्ट्रपति यह रिपोर्ट, एक ऐसे ज्ञापन के साथ सदन के दोनों सदनों के समक्ष रखते हैं जिसमं उन मामलो को स्पष्ट किया जाता है, जिनमें आयोग की सलाह नहीं मानी गई थी और साथ ही न मानने के कारण भी दिए जाते हैं।
3. **अर्ध-न्यायिक कार्य-** संघ लोक सेवा आयोग की अर्द्ध-न्यायिक अधिकार क्षेत्र और विस्तार दोनों दृष्टियों से सीमित है। वास्तव में, इसको कोई सचमुच के अपीली अधिकार नहीं है। कर्मचारियों के विरूद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाइयों पर यह केवल सलाह दे सकता है। संविधान के अनुसार, सरकार को निम्नलिखित मामलों में आयोग की सलाह लेनी चाहिए-

- सरकारी कर्मचारी के संबंध में, परिनिन्दा, वेतन वृद्धि अथवा पदोन्नति रोकना, निम्न वेतनमान में पदावनत करना, अनिवार्य सेवा-निवृत्ति, सेवा से हटाना अथवा पदच्युत करना आदि जैसी अनुशासनिक कार्यवाहियां।
- किसी कर्मचारी द्वारा अपनी ड्यूटी के निष्पादन में किए गए कार्यों के संबंध में उसके खिलाफ की गई कानूनी कार्यवाही में उस कर्मचारी द्वारा किए गए खर्च की प्रतिपूर्ति के दावे, और
- किसी कर्मचारी को पहुँची क्षति के संबंध में पेंशन देने के दावे और ऐसी पेंशन की राशि के संबंध में सभी प्रश्न।

संघ लाके सेवा आयोग के जो कार्य निर्धारित किए गए हैं, वे जैसा ऊपर बताया गया है कि भारत के संविधान से तो लिए ही गए हैं साथ ही अन्य स्त्रोतों से भी लिए जाते हैं। जैसे- संसद द्वारा बनाए गए कानून, कार्यपालिका के नियम, विनियम और आदेश और परिपाटियाँ। संविधान के अनुच्छेद 318 और 320 के अनुसार केन्द्र सरकार कुछ विनियमों और आदेशों के माध्यम से आयोग को कुछ कार्य सौंप सकती है। साथ ही राष्ट्रपति भी, समय-समय पर विनियमों के माध्यम से उन मामलों को भी परिनिश्चित कर सकते हैं जिनमे आयोग की सलाह आवश्यक नहीं होती।

आयोग कुछ ऐसे कार्य भी करता है जो परिपाटियों के माध्यम से उसे सौंपे गए हैं, यद्यपि संविधान में इनकी व्याख्या नहीं है। संविधान के अधीन रक्षा सेनाओं के लिए भर्ती का कार्य आयोग के अधिकार क्षेत्र में नहीं है, क्योंकि रक्षा सेवाएँ सिविल सेवाओं का अंग नहीं हैं। लेकिन 1948 से आयोग केडेटों के चयन के लिए लिखित परीक्षा ले रहा है, जो अब एक नियमित कार्यकलाप बन गया है। इसी प्रकार संघ लोक सेवा आयोग उच्च योग्यता प्राप्त वैज्ञानिकों तथा प्रौद्योगविदों के पूल के लिए वैज्ञानिकों तथा तकनीशियनों का चयन करता है, जो केन्द्र सरकार, वैज्ञानिक संस्थानों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं, विश्व विद्यालयों आदि में प्रतिनियुक्त किए जाते हैं। यह कार्य संघ लोक सेवा आयोग द्वारा केवल परिपाटियों के आधार पर किए जा रहे हैं।

संघ लोक सेवा आयोग संविधान के अनुच्छेद 320 और 321 के अंतर्गत संघ की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाएं आयोजित करता है, जिसमें केंद्र शासित प्रदेशों की अखिल भारतीय सेवाएँ, केंद्रीय सेवाएँ, और सार्वजनिक सेवाएँ शामिल हैं। आयोग विभिन्न सेवाओ के लिए लगभग दर्जन भर परीक्षाओ का आयोजन करता है, जैसे अभियांत्रिकी, चिकित्सा, वन सेवा आदि। वर्तमान में संघ लोक सेवा आयोग सिविल सेवा परीक्षाओ के माध्यम से विविध सेवाओ के लिए अभ्यर्थियों का चयन करता है इसमें से सबसे चर्चित भारतीय प्रशासिनिक, भारतीय पुलिस सेवा व भारतीय राजस्व सेवा हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय रक्षा अकादमी और नौसेना अकादमी परीक्षा, सम्मिलित रक्षा सेवा परीक्षा, भारतीय अभियांत्रिकी सेवा, भारतीय आर्थिक और सांख्यिकी सेवा, संयुक्त चिकित्सा सेवा, विशिष्ट श्रेणी रेलवे प्रशिक्षु सेवा, भूगर्भ सेवा, विभागीय अधिकारी/आशुलिपिक (श्रेणी 'ख'/श्रेणी-।) परिसीमित विभागीय प्रतियोगी परीक्षा तथा 'स्पेशल क्लास रेलवे प्रशिक्षु परीक्षा' परीक्षाओ का आयोजन करता है। यह किसी भी सेवा के लिए संयुक्त भर्ती तैयार करने और परिचालन योजनाओं में राज्यों को सहायता करता है जिसके लिए विशेष योग्यता रखने वाले उम्मीदवारों की आवश्यकता होती है, जिसके लिए दो या उससे अधिक राज्यों द्वारा अनुरोध किया गया हो।

## 10.4.4 संघ लोक सेवा आयोग की सलाहकार भूमिका

यद्यपि आयोग को महत्वपूर्ण सांविधानिक कर्तव्य और कार्य सौंपे गए हैं, फिर भी इसकी भूमिका मात्र सलाहकार और परामर्शी की है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत संघीय लोक सेवा आयोग की भूमिका भी परामर्शी ही थी। उस समय यह विचार किया गया था कि यदि आयोग को अधिक अधिकार दिए गए तो इससे

कार्यपालिका की शक्तियों के साथ हस्तक्षेप हो सकता है। संघ लोक सेवा आयोग का कार्य सरकार को केवल मात्र सलाह देना है और कार्यपालिका इसकी सलाह मानने के लिए कानूनी तौर पर बाध्य नहीं है।

लोक सेवा आयोग स्थिति के अनुसार निम्नलिखित मामलों में अपना परामर्श देगा, ये मामले हैं-

- सभी मामले सिविल सेवाओं तथा सिविल पदों की नियुक्ति के तरीके से संबन्धित।
- सिविल सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियों करने में और एक सेवा से दूसरे में स्थानांतरण तथा पदोन्नति और इस तरह की नियुक्तियों, स्थानान्तरण और पदोन्नति के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता पर सिद्धांतों का अनुसरण करना।
- एक नागरिक की हैसियत से भारत सरकार के अधीन सेवारत व्यक्ति को प्रभावित करने वाले सभी अनुशासनात्मक मामले जिसमें इन मामलों से संबन्धित स्मारक या याचिकाएं शामिल हों।
- अपने आधिकारिक कर्तव्य के निष्पादन में या किए गए कृत्यों का उसके खिलाफ स्थापित कानूनी कार्यवाही की रक्षा करने में एक सिविल सेवक द्वारा उठाए गए खर्च का किसी भी प्रकार का दावा करना।
- भारत सरकार के अधीन सेवारत व्यक्ति घायल होने पर पेंशन के हक़ के लिए दावा कर सकता है और किसी भी हक़ के लिए राशि से संबन्धित कोई भी प्रश्न कर सकता है।
- कार्मिक प्रबंधन से संबंधित कोई भी मामला राष्ट्रपति द्वारा संदर्भित।

संघ लोक सेवा आयोग के प्रदर्शन से संबन्धित वार्षिक रिपोर्ट को राष्ट्रपति के समक्ष पेश किया जाता है। इसके बाद राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को संसद के दोनों सदनों में ज्ञापन के साथ प्रस्तुत करता है जिसमें यह बताया गया होता है कि कहाँ पर आयोग की सलाह को नहीं स्वीकार किया गया और इस गैर स्वीकृति के पीछे का कारण क्या है।

यह समझा जा सकता है कि संविधान के अधीन, कुछ ऐसे मामले हैं जिन पर सरकार आयोग की सलाह लेने के लिए बाध्य है। इस प्रावधान का उल्लंघन असांविधानिक माना जाएगा। लेकिन सरकार आयोग की सलाह स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। साथ ही संविधान में एक नया अनुच्छेद- 323 जोड़कर आयोग की सलाह स्वीकार न करने पर एक सांविधानिक अवरोध लगा दिया गया है। जिन मामलों में आयोग की सलाह स्वीकार नहीं कि जाती है, उन मामलों में इस अनुच्छेद की अपेक्षाओं के अनुसार, सरकार को संसद के समक्ष एक ज्ञापन प्रस्तुत करना होता है जिसमें सलाह स्वीकार ने करने के कारण बताए जाते हैं। साथ ही, आयोग की सलाह पर, कार्यवाही करने के लिए मंत्रालय अथवा विभाग की शक्तियाँ सोच-समझकर इस तरह सीमित कर दी गई है कि वे आयोग तब तक अस्वीकार नहीं कर सकते जब तक मंत्रीमंडल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन प्राप्त न हो जाए। आयोग की सलाह के खिलाफ कोई भी प्रशासनिक विभाग तब तक कार्रवाई नहीं कर सकता जब तक कि उसे समिति की सहमति प्राप्त न हो जाए। इन आंतरिक और बाध्य प्रतिबंधों के कारण आयोग की सलाह स्वीकार न करने के मामलों की संख्या नगण्य रही है।

### 10.4.5 संघ लोक सेवा आयोग भूमिका का मूल्यांकन

संघ लोक सेवा आयोग केंद्रीय भर्ती अभिकरण है। यह प्रतिभा प्रणाली को बनाए रखने और पदों के लिए सबसे उपयुक्त लोगों को आगे लाने के लिए उत्तरदायी है। यह परीक्षा आयोजित करता है और समूह क एव समूह ख में अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं में कर्मियों की नियुक्ति के लिए सरकार को अपनी सिफ़ारिश भेजता है। संघ लोक सेवा आयोग की भूमिका स्वभाव से सलाहकार की होती है और सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं होती है। हालांकि, सरकार संसद के प्रति जवाबदेह है, यदि, वह आयोग की सलाह को खारिज कर दे। इसके अलावा, संघ लोक सेवा आयोग का संबंध परीक्षा प्रक्रिया से है और ना की सेवाओं के वर्गीकरण, कैडर प्रबंधन, प्रशिक्षण, सेवा शर्तों आदि के साथ संबंध रखता है। इन मामलों को कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय

के अधीन कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा नियंत्रित किया जाता है। सरकार पदोन्नति और अनुशासनात्मक मामलों पर संघ लोक सेवा आयोग से सलाह लेती है। लेकिन कुछ ऐसे मामले हैं जो संघ लोक सेवा आयोग के कार्यक्षेत्र में नहीं आते हैं। वे इस प्रकार हैं-

- भारत के संविधान में अनुच्छेद- 335 के अंतर्गत व्यवस्था है कि विभिन्न पदों की नियुक्ति के मामलों में सरकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों पर विचार करेगी। अनुच्छेद- 320(4) के अनुसार, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों के लिए आरक्षणों की सीमा निर्धारित करने के संबंध में संघ लोक सेवा आयोग की सलाह लेना आवश्यक नहीं है। लेकिन एक बार ऐसी शर्तें निर्धारित हो जाने के बाद आयोग, एक भर्ती एजेंसी के रूप में, चयन की कार्य पद्धति शुरू कर देता है।
- राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे विनिमय बना सकता है जिनसे कुछ मामले संघ लोक सेवा आयोग की सलाह के कार्य क्षेत्र से बाहर रखे जा सकते है। ऐसे सभी विनियमों को अनुमोदन के लिए अधिक से अधिक चैदह दिनों की अवधि के लिए संसद के दोनों सदनों में रखा जाना अनिवार्य है। संसद, यदि आवश्यक समझे तो, इनमें संशोधन कर सकती है अथवा इन्हें रद्द कर सकती है।

जिन पदों की भर्ती के लिए संघ लोक सेवा आयोग की सलाह आवश्यक नहीं है, वे हैं- अभिकरणों, आयोगों, उच्च-अधिकार प्राप्त समितियों के सदस्यों अथवा अध्यक्षों के पद उच्च तकनीकी अथवा प्रशासनिक पद, ऐसी अस्थायी रिक्तियाँ भरना जहाँ नियुक्तियाँ एक वर्ष से कम अवधि के लिए की जाती हैं।

अपने 70 वर्ष के कार्यकाल में लोक सेवा आयोग ने अपने संविधानिक उद्देश्यों को काफी सीमा तक पूरा किया है और वास्तव में यह सिद्ध कर दिया है कि यह किसी खास वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं बल्कि निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से किसी भी प्रकार के दबाबों से अपने आप को अछूता पाता है। आयोग ने कार्यपालिका के दबाव के विरुद्ध बिना भय या पक्षपात कर अधिक अच्छी मिसाल कायम की है।

## 10.5 राज्य लोक सेवा आयोग

भारत के संविधान के भाग-14 के अनुच्छेद- 315 में प्रावधान है कि इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन संघ के लिए एक संघ लोक सेवा आयोग तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा। यदि दो या उससे अधिक राज्य उन राज्यों के समूह के लिए एक लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए सहमत हैं और यदि प्रत्येक राज्य की विधानसभा में इस आशय का प्रस्ताव पारित हो गया हो तो संसद विधि द्वारा संयुक्त लोक सेवा आयोग की स्थापना करेगी। इसके अतिरिक्त संघ लोक सेवा आयोग राज्य के राज्यपाल के अनुरोध पर राष्ट्रपति के अनुमोदन से राज्य की सभी या किसी भी अपेक्षा को पूरा कर सकता है।

भारत 29 राज्यों और 7 केन्द्र शासित प्रदेशों का एक संघीय ढांचा है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने प्रांतीय स्तर पर लोक सेवा आयोग की स्थापना की जिसे राज्य लोक सेवा आयोग के रूप में जाना जाता है तथा भारत के संविधान ने इसे स्वायत्त निकायों के रूप में संवैधानिक दर्जा दिया है। राज्य लोक सेवा आयोग एक संवैधानिक निकाय है। राज्य लोक सेवा आयोग राज्य के सबसे बड़े भर्ती अधिकरण होते हैं। यह राज्य के सबसे बड़े प्रशासनिक अधिकारियों की भर्ती करते हैं।

### 10.5.1 राज्य लोक सेवा आयोग का गठन सम्बन्धी प्रावधान

संविधान के भाग-14 में अनुच्छेद 315 से 323 में ही राज्य लोक सेवा आयोग की स्वतंत्रता व शक्तियों के अलावा इसके गठन व सदस्यों की नियुक्ति व बर्खास्तगी का उल्लेख है। राज्यपाल राज्य सरकार की सिफारिश पर राज्य सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति करता है। राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति

राज्यपाल (अनुच्छेद- 316) करता है। सांविधानिक व्यवस्था के अनुसार राज्यपाल, राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवा संबंधी शर्तों का निर्धारण करेगा तथा आयोग के सदस्यों या कर्मचारियों की संख्या और उनकी सेवा शर्तों का भी विनियमन करेगा । राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्य की नियुक्ति के बाद उसकी सेवा संबंधी शर्तों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे उसे कोई नुकसान हो।

कार्यकाल की अवधि पूरी हो जाने के बाद लोक सेवा आयोग की सदस्य धारित करने वाला व्यक्ति उस पद पर पुनर्नियुक्ति का पात्र नहीं होगा। संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष भारत सरकार अथवा किसी अन्य राज्य सरकार में भावी नियोजन के लिए अयोग्य होगा तथापि राज्य लोक सेवा का आयोग का अध्यक्ष अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद किसी अन्य प्रयोजन को छोड़कर संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या किसी अन्य पद पर नियुक्ति के लिए योग्य होगा।

### 10.5.2 राज्य लोक सेवा आयोग का संगठन

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष के लिए निर्धारित किया गया है। परंतु नियुक्ति की अधिकतम आयु 62 वर्ष रखी गयी है। एक राज्य लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष और राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए गए अन्य सदस्य शामिल होते हैं। नियुक्त सदस्यों में से आधे सदस्यों को भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य की सरकार के तहत कार्यालय में कम से कम दस साल के लिए कार्यरत होना चाहिए। संविधान ने आयोग के सामर्थ्य को स्पष्ट रूप से नहीं बताया है। राज्यपाल के पास सदस्यों की संख्या के साथ साथ आयोग के कर्मचारियों और उनकी सेवा की शर्तों को निर्धारित करने का अधिकार होता है।

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य राज्यपाल को अपना त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैं। राज्य लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्यों का पदमुक्ति के बारे में भी संघ लोकसेवा आयोग के समान ही प्रावधान है। राज्यपाल अध्यक्ष या सदस्यों को निलम्बित कर सकते हैं लेकिन ऐसा तभी संभव है जबकि सर्वाच्च न्यायालय की रिपोर्ट राष्ट्रपति के पास भेजी जा चुकी हो। राज्यपाल राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों में से किसी एक को कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर सकते हैं यदि- आयोग के अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाये; याआयोग का अध्यक्ष अनुपस्थिति के कारण या किसी अन्य कारण से अपने कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो।

इस तरह का सदस्य एक कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है जब तक किसी व्यक्ति को कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करने के लिए अध्यक्ष के रूप में नियुक्त ना किया जाये या जब तक अध्यक्ष पुनः अपना कार्य आरंभ ना कर दे, जैसी भी स्थिति हो।

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों को राज्य की संचित निधि से वेतन दिया जाता है। राज्य लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन विभिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न है। अधिकांश राज्यों में सातवें वेतन आयोग संस्तुतियों के अनुसार अब अध्यक्ष का वेतन 80,000 रुपये के बजाए 2,25,000 रुपये प्रति महीने है जबकि सदस्यों का वेतन 64,000 रुपये के बजाए 1,82,200 रुपये प्रति महीने है ।

### 10.5.3 राज्य लोक सेवा आयोग के कार्य

संविधान के अनुच्छेद 315 से 323 में एक 'संघीय लोक सेवा आयोग' और राज्यों के लिए 'राज्य लोक सेवा आयोग' के गठन का प्रावधान है। संघ लोक सेवा आयोग संघ सरकार की सेवाओं संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा, एक संयुक्त लोक सेवा आयोग दो या अधिक राज्यों की और राज्य लोक सेवा आयोग एक राज्य की सेवाओं संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। अनुच्छेद- 320 के अनुसार राज्य लोक सेवा आयोग के कार्य निम्नलिखित होते हैं-

- राज्य लोक सेवा आयोग का यह दायित्व होगा कि राज्य लोक सेवा संबंधी पदों की नियुक्ति के लिए परीक्षाएं आयोजित करे।
- राज्य लोक सेवा आयोग स्थिति के अनुसार निम्नलिखित मामलों में अपना परामर्श देगा, ये मामले हैं- सिविल सेवाओं और सिविल सेवा संबंधी पदाधिकारियों की भर्ती से संबंधित सभी मामले तथा लोक सेवाओं के पदों से संबंधित भर्ती करने और एक से दूसरी सेवा के अधिकारियों को पदोन्नति देने और स्थानांतरित करने तथा उसकी उम्मीदवारी को उपयुक्तता के आधार पर एक से दूसरी सेवा में स्थानांतरित करने के औचित्य तथा उम्मीदवारों की ऐसी भर्ती, पदोन्नति और स्थानांतरण के औचित्य के संदर्भ में अपनाए गए नियमों के मामले।
- राज्य सरकार के अंतर्गत लोक सेवाओं में सेवारत व्यक्ति के संबंध में ज्ञापन अथवा याचिका सहित सभी अनुशासनात्मक मामले।
- राज्य सरकार में सिविल सेवा में तैनात किसी व्यक्ति या उनकी ओर से किया गया ऐसा दावा, जिसमें कार्य के निष्पादन के दौरान किसी कार्य के लिए उसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई में अपने बचाव पक्ष में किए गए खर्च के संबंध में राज्य के समेकित निधि में से धनराशि की मांग की गई हो तथा
- राज्य के शासन के अंतर्गत लोकसेवा में सेवरत किसी व्यक्ति को दुर्घटना की स्थिति में पेंशन देने संबंधी दावे या ऐसे दावों के संबंध में निर्धारित की गई धनराशि से जुड़े मामले।
- इसके साथ ही राज्य लोक सेवा आयोग राज्यपाल को यथास्थिति भेजे गए मामलों पर भी परामर्श देगा । इसके अतिरिक्त राज्य विधान मंडल अधिनियम के माध्यम से लोक सेवा आयोग को लोक सेवा आयोग को कार्मिक प्रबंधन से संबन्धित अतिरिक्त कार्य भी सौप सकता है । लोक सेवा आयोग की वार्षिक रिपोर्ट राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी। यह रिपोर्ट राज्य के विधान मंडल में प्रस्तुत की जाएगी, जिसके साथ राज्य सरकार द्वारा आयोग का परामर्श ना मानने वाले मामले और अन्य कार्यों का विवरण संबंधी ज्ञापन भी संलग्न होगा।

## 10.5.4 राज्य लोक सेवा आयोग की सलाहकार भूमिका

लोक सेवा आयोग को संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत महत्वपूर्ण दायित्व दिए गए हैं, परंतु भूमिका केवल एक परामर्शदाता की सौंपी गई है। भारतीय सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत संघ लोक सेवा आयोग का स्वरूप भी परामर्श दात्री था। लोक सेवा आयोग भारत सरकार को अपना परामर्श देता है परंतु सरकार उस परामर्श को मानने के लिए विधिक रूप से बाध्य नहीं है संविधान निर्माता आयोग को मात्र परामर्श दात्री भूमिका सौंपना चाहते थे क्योंकि उन्हें मंत्रिमंडल या कार्यपालिका के लिए किसी अन्य अभिकरण के परामर्श की वैधता मंजूर नहीं थी। सरकार द्वारा आयोग को परामर्श को ना मानने के संबंध में संविधान में कथित तौर पर आवश्यक उपाय किए गए हैं। प्रतिवर्ष राज्य लोक सेवा आयोग के मामले में राज्य की विधान मंडल में आयोग की वार्षिक रिपोर्ट के साथ एक ज्ञापन भी प्रस्तुत करना अपेक्षित होता है। इसमें सरकार द्वारा आयोग का परामर्श अस्वीकार करने के मामले और उनके कारणों से संबंधित विवरण होता है। इसके अलावा आयोग द्वारा किए गए परामर्श को मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति के अनुमोदन के बगैर ना मंजूर नहीं किया जा सकता। इन नियमों के कारण ऐसे मामले कम ही सामने आते हैं।

### 10.5.5 राज्य लोक सेवा आयोग भूमिका का मूल्यांकन

प्रत्येक राज्य में एक लोक सेवा आयोग होता है। यह संघ लोकसेवा आयोग की भांति ही कार्य करता है। राज्य लोक सेवा आयोग भी भारतीय संविधान के अंतर्गत ही कार्य करते हैं तथा इनकी कार्यप्रणाली संघ लोकसेवा आयोग की समान ही होती है। परन्तु लोकसेवा आयोग की कार्य प्रणाली हर राज्य की मांग के अनुरूप अलग-अलग होती है। विविध राज्य लोक सेवा आयोग ने , कुछ अपवादों को छोड़कर, अपने संविधानिक उद्देश्यों को काफी सीमा तक पूरा किया है और वास्तव में यह सिद्ध कर दिया है कि यह किसी खास वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं बल्कि निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से किसी भी प्रकार के दबाबों से अपने आप को अछूता पाता है। आयोग ने कार्यपालिका के दबाव के विरुद्ध बिना भय या पक्षपात कर अधिक अच्छी मिसाल कायम की है।

## 10.6 कर्मचारी चयन आयोग

कर्मचारी चयन आयोग भारत सरकार के कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय से संबद्ध एक संस्था है। कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना का उद्देश्य भारत सरकार के गैर तकनीकी संवर्ग के पदों पर निम्न स्तर के कर्मचारियों की भर्ती करने संबंधी व्यवस्था को युक्तिसंगत बनाना है। भारत सरकार के मंत्रालयों व विभागों और अधीनस्थ कार्यालयों में गैर तकनीकी समूह 'ग' और समूह 'घ' के अराजपत्रित पदों में भर्ती का कार्य आयोग द्वारा किया जाता है। इसके लिए समय-समय पर आयोग द्वारा परीक्षायें आयोजित किये जाते हैं । संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग के कार्यों की अधिकता को देखते हुए तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना संसद की आकलन समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई थी।

### 10.6.1 कर्मचारी चयन आयोग का गठन सम्बन्धी प्रावधान

संसद की आकलन समिति ने अपनी 47वीं रिपोर्ट (1967-68) में कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना की सिफारिश की थी जिसके आधार पर निम्न श्रेणी के पदों पर कर्मचारियों की भर्ती संबंधित परीक्षाएं आयोजित करने का दायित्व एक नई संस्था को देने का फैसला किया गया। विविध नियुक्ति संबंधी परीक्षा आयोजित करने के कारण संघ लोक सेवा आयोग द्वारा परीक्षा एवं परिणाम की घोषणा करने में अनावश्यक विलंब हो जाता था तथा निम्न स्तर के पदों पर कर्मचारियों की नियुक्ति की समस्या बनी रह जाती थी। इसलिए एक निकाय की स्थापना आवश्यकता महसूस हुई। अंतरिम तौर पर सचिवालय प्रशिक्षण विद्यालय में एक परीक्षा स्कन्ध स्थापित किया गया जिसे बाद में सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान कहा गया।

प्रशासनिक सुधार समिति ने भी कार्मिक प्रशासन संबंधी अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया था कि केंद्र और राज्य सरकारों के अधिकांश पद तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी से संबंध रखते हैं। नियुक्ति संबंधी व्यवस्थाओं को समान स्वरूप देने के लिए विभिन्न अनुशंसाएं की थी। आयोग की इन अनुशंसाओं के पश्चात भारत सरकार ने वर्ष 1975 में एक अधीनस्थ चयन आयोग की स्थापना का निर्णय लिया। इस आयोग द्वारा विभिन्न सरकारी एवं अधीनस्थ कार्यालयों में लिपिक आशुलिपिक एवं विविध सैनी एवं निम्न श्रेणी के पदों पर नियुक्ति संबंधी परीक्षाएं आयोजित करने और सफल परीक्षार्थियों की सिफारिश करने का उत्तरदायित्व एक नवगठित चयन आयोग को सौंपा गया। इसे बाद मे कर्मचारी चयन आयोग का नाम दिया गया जो जुलाई 1976 से गतिमान हुआ। इसे पहले "अधीनस्थ सेवा आयोग" कहते थे। इसका पुन: नामकरण सितंबर 1977 में 'कर्मचारी चयन आयोग' के रूप में हुआ।

### 10.6.2 कर्मचारी चयन आयोग का संगठन

कर्मचारी चयन आयोग केंद्रीय कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का संबंध कार्यालय है, इसमें एक अध्यक्ष और 2 सदस्य होते हैं। साथ ही एक सदस्य सचिव सह-परीक्षा नियंत्रक होते हैं जिनकी नियुक्ति समय-समय पर केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित नियम एवं शर्तों के अधीन की जाती है। सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष या 62 वर्ष की आयु, जो पहले हो, होता है। सदस्यों की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा की जाती है। आयोग की अध्यक्षता अध्यक्ष द्वारा की जाती है। सचिव दोनों सदस्यों के अधीन कार्य करता है। आयोग का मुख्यालय नई दिल्ली के सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड में स्थित है। वर्तमान मे आयोग मे एक निदेशक, दो संयुक्त निदेशक, एक उप सचिव, 9 अनु सचिव, 4 उप निदेशक, एक वित्त अधिकारी, 24 अनुभाग अधिकारी और 183 से अधिक अन्य कर्मचारी मुख्यालय में कार्यरत हैं।

इसके अतिरिक्त कर्मचारी चयन आयोग के सात क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो इलाहाबाद, मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, गुवाहाटी, बैंगलुरु और चेन्नई में स्थित हैं। इसके साथ ही, कर्मचारी चयन आयोग के दो उप-क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो रायपुर और चंडीगढ़ में स्थित है। उप-क्षेत्रीय कार्यालय मे क्षेत्रीय निदेशक प्रधान होते है, जिनकी सहायता के लियए उप निदेशक नियुक्त होते हैं। कर्मचारी चयन आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय आयोग की नीतियों तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, क्षेत्रीय कार्यालय के पर्यवेक्षण मे राज्य सरकार के साथ संपर्क बनाए रखने तथा अपने केंद्र में अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर रहकर परीक्षा और साक्षात्कारों का आयोजन करने में आयोग की सहायता करते हैं।

### 10.6.3 कर्मचारी चयन आयोग के कार्य

कर्मचारी चयन आयोग का कार्य भारत सरकार के मंत्रालयों व विभागों, संबद्ध और अधीनस्थथ कार्यालयों और महानियंत्रक एवं लेखा परीक्षक एवं महालेखाकारों के कार्यालयों में गैर-तकनीकीय समूह 'ग' और 'घ' के अराजपत्रित पदों में भर्ती करना है। अधीनस्थध सेवा आयोग की स्था पना सरकारी क्षेत्र में निम्न श्रेणी के पदों में भर्ती के लिए परीक्षाओं का आयोजन करने के लिए की गई है। कर्मचारी चयन आयोग ने सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान की परीक्षा स्कंध द्वारा आयोजित किए जाने वाले परीक्षा संबंधित सभी कार्य अपनी स्थापना के वक्त ही ले लिए थे। धीरे धीरे आयोग ने दिल्ली और दिल्ली के बाहर स्थित संपूर्ण केंद्र सरकार के संगठनों में सभी मध्य स्तरीय और अधीनस्थ स्तर के गैर तकनीकी पदों पर नियुक्ति करने का कार्य संपादित करना शुरू किया जो संपूर्ण सरकारी पदों का लगभग 55 फ़ीसदी है। आयोग नीतियां तैयार करने के लिए उत्तरदायी है जिसमें परीक्षाओं की एवं अन्या प्रक्रियाओं की योजना बनाना शामिल है, ताकि परीक्षाओं और चयन परीक्षणों को सुव्य वस्थित रूप से चलाया जा सके। कर्मचारी चयन आयोग संयुक्त स्नातक स्तरीय परीक्षा के साथ-साथ संयुक्त उच्चतर माध्यमिक परीक्षा, आशुलिपिक सीमित विभागीय प्रतियोगी परीक्षा, इंजीनियरिंग सहायक, कनिष्ठ अभियंता सीमित विभागीय परीक्षा और अन्य परीक्षा आयोजित करता है।

कर्मचारी चयन आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

- केंद्रीय सरकार के निम्न श्रेणी के लिपिकों की भर्ती हेतु प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन।
- केंद्रीय सचिवालय के आशुलिपिक सेवा संवर्ग की भर्ती के लिए प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन।
- केंद्रीय सचिवालय के लिपिक श्रेणी तथा वर्ग चतुर्थ सेवर भारतीय में पदोन्नति के लिए विभागीय परीक्षाओं का आयोजन।
- अंग्रेजी और हिंदी की टंकण परीक्षा का आयोजन आदि।

इस प्रकार, भारत सरकार के लगभग 55 प्रतिशत पद, जो मध्य एवं अधीनस्थ स्तर के गैर तकनीकी पद होते हैं तथा उन पर नियुक्ति का कार्य कर्मचारी चयन आयोग द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान समय में इस आयोग के पास

कुछ नए कार्य भी सौपे गए हैं। भर्ती के लिए योग्यताओं पर परामर्श, पद विशेषीकरण, विशेष वर्गों एवं श्रेणियों के उम्मीदवारों के लिए चयन के विशेष प्रयास, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उम्मीदवारों के लिए नियुक्ति से पूर्व प्रशिक्षण आदि ऐसे विषय हैं, जिन पर कर्मचारी चयन आयोग कार्य करता है।

### 10.6.4 कर्मचारी चयन आयोग भूमिका का मूल्यांकन

स्थापना से लेकर आज तक कर्मचारी चयन आयोग की भूमिका सकारात्मक रही है। लगातार बढ़ रहे नियुक्तियों की जिम्मेदारियों का निर्वाह इस संस्था ने बखूबी किया है। विगत कुछ वर्षों में पद संबंधी अपेक्षाओं और उम्मीदवारों की उपलब्धता को देखते हुए कर्मचारी चयन आयोग ने मंत्रालयों, विभागों और संगठनों को परामर्श देने का कार्य भी अपने हाथों में ले लिया है। साथ ही जिन क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की उम्मीदवार उपलब्ध हैं, वहां आयोग ने अपने अथक प्रयास से अपनी परीक्षाओं को लोकप्रिय बनाया है और विगत कुछ वर्षों से इन वर्गों के छात्र-छात्राएं विविध परीक्षाओं के माध्यम से कर्मचारी आयोग द्वारा सम्मिलित किए जा रहे हैं। यह आयोग शिक्षण सामग्री और शिक्षण केंद्र आदि के माध्यम से नियुक्ति पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था करके एक उत्प्रेरक अभिकरण की भूमिका भी निभाता है। कर्मचारी चयन आयोग मूक बधिर लोगों के लिए आरक्षित पदों को भरने के लिए विशेष भर्ती अभियान भी चलाता है। इस आयोग द्वारा परीक्षाएं आयोजित करने और उम्मीदवारों के चयन में अपनाई गई कार्य विधियां क्रियाएं संघ लोक सेवा आयोग द्वारा इस संदर्भ में दशकों से अपनाई गई प्रणाली पर ही आधारित है परंतु आयोग ने प्रशासनिक तंत्र की स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले सरकारी कर्मचारियों की व्यापक नियुक्ति संबंधी अपेक्षाओं के अनुरूप कुछ नए परिवर्तन भी किए हैं।

## 10.7 कार्मिक अभिकरणों की भूमिका का मूल्यांकन

राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। आज के संदर्भ में राज्य केवल सतही और विनियामक कार्य ही नहीं करता बल्कि वह लोगों की राज्य के प्रति आकांक्षाओं के अनुरूप आर्थिक विकास को गति देता है और सामाजिक और संस्कृति प्रगति को भी एक परिवर्तित रूप देता है। सरकार के कार्य, परिस्थितियों के अनुसार विगत कई दशकों से परिवर्तित हुए हैं और अब प्रशासन एक गतिमूलक, परिवर्तनमूलक और उद्देश्यमूलक प्रणाली का रूप ले चुका है। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्मिक अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं। कार्मिकों को व्यवसायिक और प्रेरणात्मक रूप से तैयार करने के लिए एक ठोस संगठनात्मक प्रणाली का विकसित होना अत्यावश्यक है और ऐसी संगठनात्मक संरचना की छवि हमें केंद्रीय कार्मिक अभिकरण में दिखाई पड़ती है। केंद्रीय कार्मिक अभिकरण ऐसे ही माध्यम हैं जो सभी महत्वपूर्ण कार्मिक गतिविधियों को क्रियान्वित करते हैं तथा भावी नीतियों को बनाने में और विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने में सही दिशा भी प्रदान करते हैं। कार्मिक अभिकरण सक्रिय कार्मिक नीति बनाने और कार्मिक संबंधी आधुनिक प्रयोगों को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अपने 70 वर्ष के कार्यकाल में लोक सेवा आयोग ने अपने संविधानिक उद्देश्यों को काफी सीमा तक पूरा किया है और वास्तव में यह सिद्ध कर दिया है कि यह किसी खास वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं बल्कि निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से किसी भी प्रकार के दबाबों से अपने आप को अछूता पाता है। आयोग ने कार्यपालिका के दबाव के विरुद्ध बिना भय या पक्षपात कर अधिक अच्छी मिसाल कायम की है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. केन्द्रीय कार्मिक विभाग की स्थापना कब की गई थी?
2. भारत के संविधान में लोक सेवा आयोगों के कितने वर्गो पर विचार किया गया है?

3. सम्मिलित रक्षा सेवा परीक्षा का आयोजन कौन करता है?
4. राज्य लोक सेवा आयोग की वार्षिक रिपोर्ट किसके सम्मुख प्रस्तुत की जाती है ?
5. कर्मचारी चयन आयोग के कितने क्षेत्रीय कार्यालय हैं ?

## 10.8 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने विविध केंद्रीय अभिकरण के उद्भव एवं विकास, संगठन एवं कार्यों के संबंध में व्यापक रूप से चर्चा की, जो विविध कार्मिक गतिविधियों के लिए जिम्मेदार हैं। परामर्श दात्री भूमिका तथा उन उपायों पर भी चर्चा की, जो सरकार द्वारा आयोग के परामर्श से संभावित अनादर के संबंध में संविधान में उपस्थित हैं। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रवादियों ने जो राजनीतिक आन्दोलन चलाया, उसकी एक प्रमुख मांग थी कि लोक सेवा आयोग में भर्ती भारत में हो, क्योंकि तब इसकी परीक्षा इंग्लैंड में हुआ करती थी। प्रथम लोक सेवा आयोग की स्थापना अक्तूबर 1926 को हुई। आज़ादी के बाद संवैधानिक प्रावधानों के तहत 26 अक्तूबर 1950 को लोक आयोग की स्थापना हुई। इसे संवैधानिक दर्जा देने के साथ साथ स्वायत्ता भी प्रदान की गयी ताकि यह बिना किसी दबाव के योग्य अधिकारियों की भर्ती क्र्र सके। स्वतंत्रता के बाद, संविधान सभा ने अनुभव किया कि सिविल सेवाओं में निष्पक्ष भर्ती सुनिश्चित करने के साथ ही सेवा हितों की रक्षा के लिए संघीय एवं प्रांतीय, दोनों स्तरों पर लोक सेवा आयोगों को एक सुदृढ़ और स्वायत्त स्थिति प्रदान करने की आवश्यकता महसूस की गई। इस नव स्थापित लोक सेवा आयोग को संघ लोक सेवा आयोग नाम दिया गया। संघ लोक सेवा आयोग भारत के संविधान द्वारा स्थापित एक ऐसी संस्था है, जो भारत सरकार के लोक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति के लिए परीक्षाएँ संचालित करती है। आयोग की मुख्य भूमिका केंद्र तथा राज्यों (अर्थात अखिल भारतीय सेवा) के लिए सामान्य विभिन्न केंद्रीय सिविल सेवाओं तथा पदों एवं सेवाओं में नियुक्ति के लिए व्यक्तियों का चयन करना है।

संघ और राज्य लोक सेवाओं की स्थापना के अलावा वर्ष 1976 में कर्मचारी चयन आयोग का गठन किया गया जिसे सरकार के मध्य स्तरीय और गैर तकनीकी श्रेणी की अधीनस्थ कर्मचारियों की भर्ती संबंधी दायित्व सौंपा गया। इस इकाई में हमने कर्मचारी चयन आयोग के कार्यों की भी व्याख्या की है।

## 10.9 शब्दावली

संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून, प्रश्रय- किसी पर अनुग्रह करके नियुक्ति प्रदान करने का तरीका, ढ़ांचा- संरचना, दिवालिया- ऐसा व्यक्ति जिसके पास धन धन लौटाने के लिए पर्याप्त धन माल्या संपत्ति ना हो, परिनिन्दा- त्रुटियों को दर्शाने वाली टिप्पणी, अध्यादेश- विधान मंडल की कार्यवाही न होने की स्थिति में राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा लाया गया कानून

## 10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** वर्ष 1970 में, **2.** तीन, **3.** संघ लोक सेवा आयोग, **4.** राज्यपाल के **5.** सात

## 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

4. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

## 10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

## 10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संघ लोक सेवा आयोग के उद्भव एवं विकास का वर्णन कीजिए।
2. संघ लोक सेवा आयोग के कार्यों की समीक्षा कीजिए।
3. संघ लोक सेवा आयोग की परामर्शदात्री भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. राज्य लोक सेवा आयोग के संगठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना के उत्तरदायी कारणों का विश्लेषण कीजिए।
6. कर्मचारी चयन आयोग के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

# इकाई- 11 केन्द्रीय एवं राज्य प्रशिक्षण संस्थान

**इकाई की संरचना**

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 प्रशिक्षण का महत्व
11.3 प्रशिक्षण के प्रकार
11.4 प्रशिक्षण की महत्वपूर्ण पद्धतियां
11.5 प्रशिक्षण संस्थानों का उद्देश्य
11.6 केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान
11.7 राज्य प्रशिक्षण संस्थान
11.8 प्रशिक्षण संस्थानों की महत्ता
11.9 प्रशिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन
11.10 सारांश
11.11 शब्दावली
11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.15 निबन्धात्मक प्रश्न

## 11.0 प्रस्तावना

प्रशिक्षण मानव संबंध विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। ज्ञानार्जन और संबंधित कार्य प्रणाली को समझने के लिए प्रशिक्षण एक आवश्यक माध्यम है। प्रशिक्षण की महत्ता को ध्यान में रखकर स्वतंत्रता के पश्चात भारत में राष्ट्रीय और राज्य दोनों ही स्तर पर अनेक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए गए हैं। ये संस्थान विविध प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को चलाते हैं तथा कर्मचारियों में आवश्यक दक्षता, ज्ञान एवं दृष्टिकोण का विकास करते हैं। प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। इसका प्रयोजन कर्मचारियोंकी उनके कार्यकुशलता, ज्ञान और कार्य क्षमता को सुधारना है तथा इसका लक्ष्य कर्मचारियों को उच्च जिम्मेदारियों के लिए तैयार करना भी है। लोक सेवकों की योग्यता, कुशलता, बुद्धि व दृष्टिकोण को एक निश्चित दिशा में अग्रसर करने का प्रयास प्रशिक्षण कहलाता है। किसी कार्यविशेष को कुशलता के साथ करने हेतु कर्मचारियों के ज्ञान, कुशलता, अभिरुचि तथा क्षमताओं में वृद्धि की प्रक्रिया का नाम प्रशिक्षण है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। लोक सेवाओं में नियुक्त व्यक्ति पूर्व से ही न्यूनतम शैक्षिक योग्यताधारी होते हैं। आमतौर पर लोक सेवा में प्रवेश करने से पूर्व ही वे अपनी शिक्षा पूरी कर चुके होते हैं, परंतु शिक्षा की प्रक्रिया उसके बाद भी जारी रहती है। विभिन्न परिवर्तनों एवं तकनीक से उनकी कुशलता और दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य शिक्षा को लोक सेवाओं में प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में प्रशिक्षण कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कई प्रशिक्षण संस्थाएं स्थापित की गई हैं और समय-समय पर इनमें आवश्यक संरचनात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन भी किए गए हैं।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को प्रशिक्षण के महत्व, प्रशिक्षण के प्रकार तथा विविध प्रशिक्षण संस्थानों से परिचय कराना है। इसमें प्रशिक्षण संस्थानों का उद्देश्य, भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं, केन्द्रीय एवं राज्य प्रशिक्षण संस्थान, प्रशिक्षण संस्थानों की महत्ता एवं प्रशिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा से की जाएगी। इस इकाई में प्रशिक्षण के विभिन्न कार्यों के संबंध में केंद्रीय एवं राज्य प्रशिक्षण संस्थानों के महत्व तथा संस्थानों द्वारा आयोजित किए जाने वाले विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रकृति के बारे में अध्ययन करेंगे। इसमें प्रशिक्षण के लिए प्रमुख अभिकरण- केन्द्रीय तथा राज्य प्रशिक्षण संस्थान के कार्यों पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

## 11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशिक्षण के महत्व एवं प्रकार के बारे में जान सकेंगे।
- साथ ही प्रशिक्षण संस्थानों के उद्देश्य, भारत में प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं, केन्द्रीय एवं राज्य प्रशिक्षण संस्थान के बारे में भी अवगत होंगे।
- भारत में प्रशिक्षण की प्रणाली एवं प्रशिक्षण संस्थानों की महत्ता को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- प्रशिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन भी कर पाएंगे।

## 11.2 प्रशिक्षण का महत्व

प्रशिक्षण प्रशासन एवं प्रबन्धन की एक विधा है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों की दक्षता, ज्ञान एवं दृष्टिकोण में विकास कर उन्हें मौजूदा और भावी कार्यों के योग्य बनाना है। कार्य निष्पादन हेतु एक बुनियादी निवेश के रूप में प्रशिक्षण कार्य करता है। लोक सेवकों को संगठन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के संबंध में प्रशिक्षित करना अनिवार्य है। प्रशिक्षण सरकारी सेवा मैं नियुक्त कर्मचारियों को इस योग्य बना देता है कि जिससे कि वह संगठन में उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों से परिचित हो जाए। इस प्रकार प्रशिक्षण कार्यों की भूमिका और महत्व के प्रति जागरूक बनाता है।

किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया है। प्रशिक्षण कार्य एवं संगठन की आवश्यकताओं के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान निपुणताओं, व्यवहार, अभिरूचियों तथा मनोवृत्तियों में सुधार करता है, परिर्वतन उत्पन्न करता है तथा ढालता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य लोक सेवकों की कार्यकुशलता और क्षमता को बढ़ाना है। प्रशिक्षण का शाब्दिक अर्थ किसी खास कला या व्यवसाय शिक्षा देना है। लोक प्रशासन में प्रशासन का अर्थ किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता, शक्ति और बुद्धिमत्ता को सुधारने तथा वांछित दिशा में उसकी रुचि और मूल्य को विकसित करने का सक्रिय प्रयास करना है। व्यापक अर्थों में प्रशिक्षण जीवन पर्यंत चलने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षा के समान ही प्रशिक्षण जीवन पर्यंत चलने वाली एक लंबी प्रक्रिया है, परंतु शिक्षा की तुलना में प्रशिक्षण के उद्देश्य सीमित और निश्चित होता है। शिक्षा किसी व्यक्ति के बाल्यकाल से प्रारंभ होकर व्यक्तित्व, चरित्र, व्यवहार, रुचियां, क्षमता आदि के निर्माण को प्रभावित करती है और व्यापक मानसिकता उत्पन्न करती है। परंतु प्रशिक्षण किसी विशेष किस्म के कार्य अथवा व्यवसाय के लिए अपेक्षित कार्यकुशलता और ज्ञान में सुधार करता है। इस प्रकार प्रशिक्षण की अपेक्षा शिक्षा अधिक व्यापक अवधारणा है। फिर भी प्रशिक्षण और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और अधिकांश बार वे परस्पर व्यापी होते हैं। साधारण शब्दों में, प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है। प्रशिक्षण एक

अल्पकालीन शैक्षणिक प्रक्रिया है तथा जिसमें एक व्यवस्थित एवं संगठित कार्य-प्रणाली उपयोग में लायी जाती हैं, जिसके द्वारा एक कर्मचारी किसी निश्चित उद्देश्य के लिए तकनीकी ज्ञान एवं निपुणताओं को सीखता है।

प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है। बदली हुई परिस्थितियों में प्रशिक्षण की आवश्यकता अत्यधिक महसूस की गई है। प्रशिक्षण प्रबंध का सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि उत्तरदायित्व है। संगठन के कार्यों को संपन्न कराने के लिए शिक्षण एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरा है। व्यक्ति में जो कुशलता, आदत, ज्ञान आदि जो पूर्व में विद्यमान रहते हैं, उन्हें प्रशिक्षण द्वारा अधिक परिमार्जित किया जा सकता है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रशासन में कार्यकुशलता स्थापित कर कर्मचारियों को उच्च स्तर के कार्यो का उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता विकसित करना है तथा उनकी तकनीकी योग्यताओं के विकास द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उनकी कार्यकुशलता को बढ़ाना भी है। प्रशासनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में प्रशिक्षण का अत्यधिक योगदान है। इस प्रकार अधिकारियों एवं कर्मचारियों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता में वृद्धि प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है।

प्रशिक्षण का उददेश्य कर्मचारियों को उनके वर्तमान तथा आगामी कार्यो से परिचित होने हेतु सक्षम बनाना है। प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। प्रशिक्षण के महत्व निम्नलिखित हैं-

1. उच्चतर कार्यनिष्पादन- प्रशिक्षण के द्वारा समग्र रूप से संस्था तथा कर्मचारी दोनों के कार्य की गुणवत्ता तथा मात्रा बेहतर बनती है। ज्ञान, कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।
2. प्रक्रियाओं की एकरूपता- इसके द्वारा कार्य करने की सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध कार्यविधियों का मानकीकरण किया जा सकता है तथा उन्हें सभी कर्मचारियों को सिखाया जा सकता है, जिससे कार्यनिष्पादन की गुणवत्ता में सुधार होता है।
3. सीखने की कम अवधि- इससे कार्यनिष्पादन के स्वीकार्य स्तर तक पहुंचने हेतु आवश्यक सीखने की अवधि तथा लागत दोनों में कमी लाने में सहायता मिलती है। कर्मचारियों को गलतियां करके तथा दूसरों को देखकर काम सीखने पर समय व्यर्थ नहीं गंवाना पड़ता।
4. उच्च मनोबल- इससे कर्मचारियों के कार्य संबंधी संतोष तथा मनोबल में वृद्धि होती है तथा सकारात्मक सोच विकसित होती है जिसके कारण वे अपने कार्य तथा संस्था के प्रति अधिक सहायक तथा वफ़ादार बनते हैं। अनुशासन तथा संबंधों में सुधार आने के फ़लस्वरूप अनुपस्थिति की दर तथा श्रमिकों के आवर्तन में कमी आती है।
5. कम पर्यवेक्षण- इससे कर्मचारियों के विस्तृत तथा निरंतर पर्यवेक्षण की आवश्यकता कम होती है तथा वे अपने कार्य में आत्मनिर्भर हो जाते हैं क्योंकि उन्हें पता होता है, उन्हें क्या करना है और कैसे करना है।
6. सामाजिक-आर्थिक विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन हेतु आवश्यक- देश के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन हेतु प्रशिक्षण की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है बल्कि बदलती परिस्थितियों के संबंध में आवश्यक भी होती है।
7. सहभागितापूर्ण प्रबंधन- इससे प्राधिकारों के प्रत्यायोजन तथा विकेंद्रीकरण में सहायता मिलती है। प्रशिक्षित कर्मचारी नये तथा चुनौतीपूर्ण कार्य स्वीकार करने हेतु तत्पर रहते हैं।

इस प्रकार सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। कुशल प्रशासन हेतु लोक सेवकों को उपयुक्त एवं प्रभावी प्रशिक्षण आवश्यक है। लोक सेवा के कर्मचारियों का प्रशिक्षण आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है। अधिकांश चुने गए व्यक्तियों में उपाधियां पूर्व से ही धारित होती है जो बदलते परिदृश्य में पर्याप्त नहीं होती। प्रशिक्षण अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नवीन परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक कार्यों को कुशलता पूर्वक करने में

मददगार सिद्ध होता है एवं उसकी कार्यकुशलता एवं दक्षता को सुधारता है। लोक सेवकों को अपने संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों, संघ कार्य के स्वरूप, वास्तविक कार्य करने की तकनीक और पद्धतियों के बारे में ज्ञान प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा दिया जा सकता है। इसी प्रकार बदलते हुए परिदृश्य में अर्जित ज्ञान और कार्यकुशलता को नवीन एवं अद्यतन बनाने हेतु प्रशिक्षण आवश्यक है, जो एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। कार्य की प्रकृति ,परिणाम की महत्ता और विकासात्मक कार्यों में रुचि मौजूदा समय की आवश्यकता को और महत्वपूर्ण बनाती है।

## 11.3 प्रशिक्षण के प्रकार

सभी प्रजातांत्रिक देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण बुनियादी महत्व का होता है। प्रशिक्षण न केवल नवनियुक्त कर्मचारियों के लिए आवश्यक है बल्कि उनके लिए भी आवश्यक है, जो सेवा में कार्यरत हैं। इसकी प्रकृति अलग-अलग हो सकती हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम देश में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक दशाओं को रखकर तैयार किए जाते हैं । प्रशिक्षण देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से और विभिन्न तकनीकों से दिया जाता है। सामान्यतया प्रशिक्षण को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-

1. **औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण-** प्रमुखतया प्रशिक्षण दो प्रकार के होते हैं- अनौपचारिक और औपचारिक। अनौपचारिक प्रशिक्षण का अर्थ है, वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन के अधीन वास्तविक काम करते हुए काम सीखना। अत: यह प्रशिक्षण अनुभव से या प्रयत्न एवं भूल पद्धति द्वारा होता है। प्रशिक्षु को प्रशासनिक कुशलता की प्राप्ति वास्तविक काम करते हुए अर्थात व्यवहार के दौरान होती है। इसको 'काम पर प्रशिक्षण' कहते हैं। लोक प्रशासन में यह प्रशिक्षण की परंपरागत पद्धति है। ए.डी. गोरवाला के शब्दों में, ''एक अच्छे कलेक्टर (जिलाधीश) का घर नए सहायक कलेक्टर के लिए अक्सर ही उसका दूसरा घर होता है।'' दूसरी ओर, औपचारिक प्रशिक्षण विशेषज्ञ मार्गदर्शन तथा निरीक्षण के अंतर्गत व्यवस्थित ढंग से पूर्व नियोजित और सुस्पष्ट पाठ्यक्रमों के द्वारा दिया जाता है ।

   औपचारिक प्रशिक्षण की परम्परा प्रक्रिया में पूर्व निर्धारित योजना के अन्तर्गत विशिष्ट प्रशिक्षकों के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विधिवत् प्रशिक्षण केन्द्र में संगोष्ठी, वाद-विवाद, व्याख्यान आदि के माध्यम से दिया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के प्रशासनिक कौशल व कार्यविधि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके विपरीत अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव एवं व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित होता है। इसमें नवनियुक्त अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ रहकर उसके आचरण को देखकर अनुभव ज्ञान व कौशल की प्राप्ति करता है।

   अनौपचारिक प्रशिक्षण लोक प्रशासन में प्रशिक्षण का परंपरागत तरीका है और व्यावहारिक प्रशासन इसे आज भी प्राथमिकता देते हैं परंतु यह प्रक्रिया सीखने की सबसे कठिन तरीका है और इसमें कर्मचारियों को काफी धैर्य और लता की आवश्यकता होती है । अनौपचारिक प्रशिक्षण अधिकांश देशों में लोकप्रिय नहीं है।

2. **अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण-** अल्पकालीन प्रशिक्षण अल्पविधि के लिए दिया जाता है, जबकि दीर्घकालीन प्रशिक्षण एक लम्बे समय तक चलता है। अल्पकालीन प्रशिक्षण किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दिया जाता है। जैसे- युद्ध के समय मोर्चे पर भेजते समय नवनियुक्त सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत दीर्घकालीन प्रशिक्षण में विषय की गहन जानकारी एक लम्बी अवधि में प्रदान की जाती है। जैसे- शान्तिकाल में सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण जटिल व तकनीकी प्रकृति का होता है।

   अवधि के अनुसार प्रशिक्षण को अल्पकालिक और दीर्घकालिक वर्गों में रखा जाता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यदि कुछ सप्ताहों या एक-दो माह का होता है तो उसे अल्पकालिक प्रशिक्षण कहते हैं और यदि

यह छह महीने से एक या दो-तीन वर्ष का होता है तो उसे दीर्घकालिक प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत में दीर्घकालिक प्रशिक्षण का उदाहरण भारतीय विदेश सेवा का प्रशिक्षण है जिसकी अवधि तीन वर्ष होती है।

3. **विभागीय एवं केन्द्रीय प्रशिक्षण-** विभागीय प्रशिक्षण विभाग या कार्यालय के अन्दर ही अनुभवी विभागीय अधिकारियों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह प्रशिक्षण विभाग की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप दिया जाता है। इसके विपरीत उच्च एवं जटिल कार्यों के लिए प्रशिक्षण विभाग के केन्द्रीय मुख्यालय या केन्द्रीय सत्ता द्वारा दिया जाता है। प्रशिक्षण जब विभाग द्वारा (विभाग के अंदर) आयोजित किया जाता है तो उसे विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। यह विभाग के वरिष्ठ एवं अनुभवी सदस्य देते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एस. बी. पी. राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है।

   दूसरी ओर विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन जब केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान द्वारा होता है तो उसे केंद्रीय या केंद्रीयकृत प्रशिक्षण कहते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एल.बी.एस. राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है।

4. **कौशल एवं सामान्य प्रशिक्षण-** कौशल प्रशिक्षण विशिष्ट योग्यता प्रदान करने के उद्देश्य से दिया जाता है। उदाहरणार्थ- पुलिस विभाग को आपराधिक कृत्यों की खोज व निवारण हेतु दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत, सामान्य प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कौशल को बढ़ाने के लिए नहीं वरन् कार्य-सम्पादन को सुगम बनाने की दृष्टि से दिया जाता है। इसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों की जानकारी देते हुए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की जाती है जिससे कि प्रशिक्षणार्थी सरलता से विषय को ग्रहण कर सकें।

5. **प्रवेश-पूर्व, सेवाकालीन एवं प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण-** लोक सेवाओं में प्रवेश से पूर्व दिया गया प्रशिक्षण प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण है जबकि किसी व्यक्ति विशेष को सेवा में प्रवेश के बाद दिया गया प्रशिक्षण प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण कहलाता है। महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों की औपचारिक शिक्षा के पश्चात चयनित लोक सेवकों का प्रशिक्षण विभिन्न संस्थानों में आयोजित किए जाते हैं। इसे सेवाकालीन प्रशिक्षण भी कहा जाता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप भी हो सकता है और इस सेवा के सभी स्थानों पर दिया जा सकता है। इससे कर्मचारी की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य बनाया जाता है। कभी-कभी कर्मचारी के वास्तविक कार्य से प्रवेश उत्तर प्रशिक्षण का सीधा संबंध नहीं होता परंतु उनकी सामान्य योग्यता और संगठनात्मक कार्य निष्पादन सुधारने प्रत्यक्ष रूप से बहुत सहायक होता है। सेवा में पद-स्थापन से पूर्व दिया जाने वाला प्रशिक्षण 'प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण' कहलाता है। शिक्षण संस्थाएँ इस प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वर्तमान में विश्व विद्यालयों में तकनीकी व व्यावसायिक प्रशिक्षण को विशेष महत्व दिया जा रहा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण पहले से कार्यरत कार्मिकों को दिया जाता है जिससे कि वे अपने कार्य को अधिक कुशलता व दक्षता के साथ सम्पन्न कर सकें। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रशिक्षण सामूहिक या व्यक्तिगत किसी भी रूप में हो सकता है। महाविद्यालय एवं विश्व विद्यालय की शिक्षा तथा व्यवसाय अथवा तकनीकी शिक्षा को प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण की संज्ञा दी गई है। प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण काफी प्रचलित प्रथा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप हो सकता है तथा इसे सेवा के सभी स्तरों पर दिया जाता है। कर्मचारियों की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य थी बनाया जाता है। यह प्रशिक्षण उन प्रत्याशियों को दिया जाता है जो सार्वजनिक सेवा में निकट भविष्य में प्रवेश करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह विभिन्न

संस्थानों और कॉलेजों में दिए जाना वाला व्यावसायिक शिक्षण है। यह शिक्षण एप्रेंटिसशिप और इंटर्नशिप के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका में बेहद लोक प्रिय है।

6. **अनुस्थापन प्रशिक्षण-** अनुस्थापन प्रशिक्षण सेवाकालीन प्रशिक्षण का ही एक प्रकार है। किसी भी संगठन में नवनियुक्त कर्मचारीकों उसके पद व स्थिति से महत्वपूर्ण जानकारी दी जाती है उसे ही 'अनुस्थापन प्रशिक्षण' कहा जाता है। अभिविन्यास प्रशिक्षण नए लोक सेवकों को संगठन कार्य कार्य करने की स्थिति तथा पद्धतियों का ज्ञान से परिचय वही विन्यास प्रशिक्षण द्वारा दिया जाता है। यह एक योजनाबद्ध प्रशिक्षण है जिसका मूल उद्देश्य कर्मचारियों की मूल अवधारणा, नए वातावरण संगठन के लक्ष्य और उद्देश्य और संगठन में उसके अपने स्थान से परिचित कराना है। हाल के वर्षों में विभिन्न देशों में इस प्रकार के प्रशिक्षण का महत्व बढ़ रहा है।

इस प्रकार विभिन्न संगठनों द्वारा अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उपयोग अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु किया जाता है। ज्ञान का नवीनीकरण एंव विकास सूचनाओं का प्रसार, कार्य-शैलियों में परिवर्तन तथा वैयक्तिक विकास आदि इस प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं। आधारभूत प्रशिक्षण कार्मिक विकास के व्यवसायिक पहलुओं से भी संबंध है। यह विशेष क्षमता के संवर्धन और एक विशेष कार्य हेतु दक्षता को सुधारने में मदद करता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण व्यवसायिक प्रशिक्षण संस्थानों, कॉलेजों आदि द्वारा आयोजित किया जाता है और यह कार्य के दौरान या कार्यस्थल पर उद्देश्यों की शिक्षा देकर भी आयोजित किया जाता है। सेवा में भर्ती के बाद प्रशिक्षण कार्य आदि के विभिन्न रूपों स्थिति निर्धारण संपादन में दिया जा सकता है।

## 11.4 प्रशिक्षण की महत्वपूर्ण पद्धतियां

1. **औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण-** आजकल अधिकांश देशों में औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण की तकनीक अपनाई गई है। इसके अंतर्गत व्याख्यान या कक्षाएं आयोजित करके नवनियुक्त कर्मचारियों को वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा औपचारिक रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। यदा-कदा बाह्य विशेषज्ञों द्वारा भी व्याख्यान का आयोजन किया जाता है। निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर यह प्रशिक्षण सामूहिक चर्चा ,संगोष्ठी आ अभिभाषण और कार्यशाला ऊपर आधारित होती है। विभागीय अध्यक्ष भी इस दौरान कर्मचारियों को संबोधित करता है तथा उन्हें आवश्यक निर्देश भी देता है। औपचारिक प्रशिक्षण में फिल्म, दृश्य-श्रवण उपकरण तथा कंप्यूटरों का ही प्रयोग किया जाता है।
2. **कार्य करते हुए अर्जित अनुभव द्वारा प्रशिक्षण-** प्रायः अधिकारी और कर्मचारी कार्य करने के दौरान अर्जित अनुभवों से बहुत कुछ सीखते हैं और इसी सीखने की प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए उनका स्थानांतरण एक अनुभाग से दूसरे अनुभाग में किया जाता है। वरिष्ठ तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा समय-समय पर अनुदेश या निर्देश इस सीखने की प्रक्रिया में नए कर्मचारियों की सहायता करते हैं। अल्पकालिक तौर पर अंतर विभागीय विनिमय कार्यक्रम या अध्ययन दौरे द्वारा भी कर्मचारियों की दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है । समय के साथ यह सीखने की प्रक्रिया अधिक परिपक्व होती जाती है और प्रशासक के रूप में उसकी कार्यशैली में आवश्यक सुधार भी लाती है। लेकिन यह पद्धति काफी धीमी है और इसमें अत्यधिक समय भी लगता है। अक्सर इसके स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य और निश्चित समय सीमा नहीं होती है।
3. **प्रशिक्षण की सम्मेलन पद्धति-** वर्तमान समय में यह पद्धति सर्वाधिक प्रचलित है। प्रशिक्षण हेतु विभिन्न विभागों से चुने गए अधिकारियों एवं कर्मचारियों के समूह को एक मंच पर लाकर चर्चा द्वारा अनुभव और विचारों को साझा किया जाता है। प्रशिक्षण की यह व्यवस्था विश्लेषण पद्धति भी कही जाती

है। इसमें दूसरों के अनुभव से सीखने का पर्याप्त अवसर भी प्राप्त होता है और प्रशिक्षण पा रहे कर्मचारियों की भूमिका भी सक्रिय बनी रहती है। चर्चा को सही दिशा में रखने के लिए अनुदेशक का कार्य भी महत्वपूर्ण हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कई अन्य देशों में सम्मेलन पद्धति बहुत ही लोकप्रिय है। भारत में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के अल्पकालिक प्रशिक्षण के लिए इस पद्धति का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रशिक्षण की कोई भी पद्धति सर्वश्रेष्ठ नहीं है। इसे आवश्यकता, समय एवं उद्देश्यों को देखकर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न देश प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकताओं के अनुकूल विभिन्न पद्धतियों का समावेश कर अपने कार्यक्रमों को संचालित करते हैं। संगोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला इस सामूहिक चर्चाएं और क्षेत्र के दौरे इस संदर्भ में काफी आवश्यक हो जाते हैं । पुनश्चर्या और अभिविन्यास पाठ्यक्रम की उपयोगिता भी इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

## 11.5 प्रशिक्षण संस्थानों का उद्देश्य

प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने की एक निश्चित विधि होती है जिसे प्रशिक्षण के माध्यम से ही सीखा जा सकता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य केवल तकनीकी कार्यों एवं नित्य के कार्यों का निष्पादन सिखाना ही नहीं वरन् एक समझदार एवं गम्भीर दृष्टिकोण का विकास करना भी है। प्रशिक्षण, कार्यों को सही एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों को जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया है, जिससे कि उनकी कार्य के प्रति समझ, कार्यक्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि हो सके। विश्व के सभी देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण एक आवश्यक तथ्य है किंतु विकासशील देशों में इसकी आवश्यकता और महत्व अधिक है। विकासशील देशों में प्रशिक्षण की तात्कालिक आवश्यकता के कई महत्वपूर्ण कारक हैं। इन कारकों की वजह से विकासशील देशों में विकास नीतियों की संपूर्ण सफलता उपयुक्त प्रशिक्षण पर ही निर्भर है। अधिकांश विकासशील देशों में सामान्यतया प्रशिक्षित और योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की कमी है और प्रशिक्षण की सुविधाएं और प्रशिक्षण संस्थान अपर्याप्त हैं। सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि के फल स्वरुप लोक सेवकों को नए प्रकार के कार्यों को संपादित करने में उच्च कोटि की दक्षता और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रशासन जटिल, तकनीकी और विशेषीकृत हो गया है, वहीं दूसरी और विकासशील देशों में सामाजिक आर्थिक स्थितियां लगातार बदल रही हैं और तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों की चुनौतियों के लिए प्रशासन के नवीनीकरण की आवश्यकता है। विकासशील देशों में चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन असाधारण तेजी और दक्षता से करने के लिए अक्सर प्रशासन पर दबाव बना रहता है, जिसे लोक सेवकों के प्रशिक्षित होने की अवस्था में ही तुरंत निस्तारित किया जा सकता है।

सर्वप्रथम ब्रिटेन में लोकसेवकों के लिए प्रशिक्षण की भूमिका का विश्लेषण एशेटन कमेटी रिपोर्ट, 1944 में किया गया था। कमेटी के अनुसार बड़े स्तर के किसी भी संगठन में कुशलता दो तत्वों पर निर्भर है। उसको सौंपे गए कार्य विशेष को करने के लिए व्यक्ति की तकनीकी कुशलता और एक संगठित संस्था के तौर पर संगठन की कम सुनिश्चित कुशलता, जो संस्था को संघटित करने वाले व्यक्तियों की सामूहिक भावना और उनके दृष्टिकोण से पैदा होती है। प्रशिक्षण को इन दोनों का ध्यान रखना चाहिए। एशेटन कमेटी रिपोर्ट, 1944 ने प्रशिक्षण के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य बताये-

- कार्मिकों में विश्व सनीय कार्य चातुर्य उत्पन्न करना।
- कार्मिकों को इस योग्य बनाना कि वे परिवर्तित परिस्थितियों में अपने कार्य को दक्षतापूर्वक एवं सुगमता से सम्पदा कर सकें।

- कार्मिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर उन्हें अनुभव कराना कि वे सेवक हैं, स्वामी नहीं।
- कार्मिकों में सामुदायिक भावना उत्पन्न करना तथा उन्हें यन्त्रीकरण से बचाना।
- कार्मिकों को दायित्वों की पूर्ति हेतु अधिक क्षमता प्रदान करना।

यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में प्रशिक्षण कर्मचारियों के दक्षता सुधारता है। साथ ही कर्मचारियों की व्यवसायिक कार्यकुशलता और ज्ञान को प्रशिक्षण बढ़ाता है ताकि वे अपना काम प्रभावी ढंग से कर सकें। नए कर्मचारियों के संगठन में प्रवेश का प्रशिक्षण एक सहायक माध्यम है और उसे संगठन के लक्षण तथा उद्देश्य संगठन में उसकी अपनी भूमिका तथा उसके कार्यों के निर्वहन की तकनीकी ज्ञान और पद्धतियों से अवगत कराता है जिसके फलस्वरूप कर्मचारी संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सकते हैं। प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारी को अपने कार्य में कुशल एवं दक्ष बनाना है। प्रशिक्षण के पश्चात् कर्मचारी का व्यक्तित्व तो वही रहता है किन्तु उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आ जाता है । प्रशिक्षण कर्मचारियों को क्षेत्र विशेष में हुए नवीनतम प्रगति और विकास की जानकारी देता है। विश्व के सभी देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण एक आवश्यक तथ्य है किंतु विकासशील देशों में इसकी आवश्यकता और महत्व अधिक है। विकासशील देशों में प्रशिक्षण की तात्कालिक आवश्यकता के कई महत्वपूर्ण कारक हैं। सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि के फल स्वरुप लोक सेवकों को नए प्रकार के कार्यों को संपादित करने में उच्च कोटि की दक्षता और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रशासन जटिल, तकनीकी और विशेषीकृत हो गया है, वहीं दूसरी और विकासशील देशों में सामाजिक आर्थिक स्थितियां लगातार बदल रही हैं और तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों की चुनौतियों के लिए प्रशासन के नवीनीकरण की आवश्यकता है। विकासशील देशों में चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन असाधारण तेजी और दक्षता से करने के लिए अक्सर प्रशासन पर दबाव बना रहता है, जिसे लोक सेवकों के प्रशिक्षित होने की अवस्था में ही तुरंत निस्तारित किया जा सकता है। इस प्रकार उन्हें ज्ञान से अद्यतन बनाए रखता है। संगठन के लक्ष्य और तकनीकों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए प्रशिक्षण कर्मचारियों को ने संगठनात्मक परिवर्तनों के अनुकूल बनाता है। प्रशिक्षण में भर्ती किए गए व्यक्तियों में विद्यमान कमियों को पूरा करता है तथा सरकार के प्रशासनिक कार्यों के लायक बनाने तथा उसी दिशा में डालने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। प्रशिक्षण कर्मचारियों में निष्ठा और मनोबल बढ़ाता है तथा कर्मचारियों के लिए सामुदायिक सेवा और अपनेपन की भावना विकसित करता है। कर्मचारियों को इस बात का एहसास होता है कि वे और उनका काम संगठन और समुदाय का अनिवार्य अंग है। कार्यों में समर्पण कर्मचारियों को गौरव परम संतोष प्रदान करता है।

प्रशिक्षण, कार्यों को सही एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों को जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया है, जिससे उनकी कार्य के प्रति समझ, कार्यक्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि हो सके। प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों को उनके वर्तमान तथा आगामी कार्यों से परिचित होने हेतु सक्षम बनाना है। प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। नए कर्मचारियों के संगठन में प्रवेश का प्रशिक्षण एक सहायक माध्यम है और उसे संगठन के लक्षण तथा उद्देश्य संगठन में उसकी अपनी भूमिका तथा उसके कार्यों के निर्वहन की तकनीकी ज्ञान और पद्धतियों से अवगत कराता है, जिसके फलस्वरूप कर्मचारी संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सकते हैं। संगठन के लक्ष्य और तकनीकों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए प्रशिक्षण कर्मचारियों को ने संगठनात्मक परिवर्तनों के अनुकूल बनाता है। प्रशिक्षण में भर्ती किए गए व्यक्तियों में विद्यमान कमियों को पूरा करता है। सरकार के प्रशासनिक कार्यों के लायक बनाने तथा उसी दिशा में डालने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। प्रशिक्षण कर्मचारियों में निष्ठा और मनोबल बढ़ाता है। प्रशिक्षण प्रक्रिया मात्र अस्तित्व ही प्रशिक्षणार्थियों में उनके कार्य तथा कार्यालय में सम्मान और गौरव का भाव पैदा करता है। प्रशिक्षण कर्मचारियों

के लिए सामुदायिक सेवा और अपनेपन की भावना विकसित करता है। कर्मचारियों को इस बात का एहसास होता है कि वे और उनका काम संगठन और समुदाय का अनिवार्य अंग है। कार्यों में समर्पण कर्मचारियों को गौरव परम संतोष प्रदान करता है। प्रशिक्षण कर्मचारियों को जनता के करीब लाता है। यह उनमें यह आधारभूत सिद्धांत संचालित करता है कि भी जनता के सेवक हैं ना कि मालिक और यह लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अत्यावश्यक है। प्रशिक्षण क्षमता का दृष्टिकोण विकसित करता है और कर्मचारियों की दृष्टि और दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है।

## 11.6 केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान

भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण संबंधी समस्या और समाधान ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है । भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल के दौरान प्रारंभ होता है। भारत में सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में वरिन हेस्टिंग्स ने 'प्रशिक्षण' की आवश्यकता अनुभव की। उनके मतानुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं व पद्धतियों आदि का ज्ञान कराने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक था। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हेतु लॉर्ड वेलेजली (1798-1805) ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। तत्पश्चात् 1813 ई में 'हेलिबरी कॉलेज' भी इसी उद्देश्य से स्थापित किया गया। यह सन् 1857 ई तक चलता रहा। इसके बाद लोक सेवकों को ब्रिटिश विश्व विद्यालय कैम्ब्रिज या किसी अन्य में प्रशिक्षण देने की पद्धति आरम्भ की गयी उन्हें भारतीय कानून, भारतीय भाषा, भारतीय राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता था। एक भारतीय भाषा का ज्ञान होना भी अनिवार्य था।
भारत में केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान द्वारा लोक सेवाओं के लिए प्रशिक्षण देने का एक संस्थापक कार्य काफी लंबे समय से संपादित किया जा रहा है। इनकी मौजूदगी स्वतंत्रता से पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी के काल में हुई थी। यद्यपि कोलकाता में स्थित फोर्ट विलियम कॉलेज और ईस्ट इंडिया कॉलेज जैसे हेलबेरी कॉलेज के नाम से भी जाना जाता था, जैसे संस्थान थे जो अपने उच्च स्तर के सिविल सेवकों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण देते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए सरकार के कार्यों में विस्तार के फलस्वरुप लोक सेवकों को प्रणालीबद्ध और अद्यतन प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग अखिल भारतीय और केन्द्रीकय सेवाओं की प्रशिक्षण नीतियां बनाने और उनका समन्वय करने और राज्यर सरकार के कर्मचारियों की क्षमता निर्माण का कार्य भी करता है। स्वतंत्रता के पश्चात लोक प्रशासन पर गोरवाला रिपोर्ट 1951 से लेकर प्रशासनिक सुधार आयोग तक प्रशासनिक सुधार आयोग के बाद तैयार किए अधिकतर प्रशासनिक सुधार की रिपोर्टों में व्यवस्थित सुसंगत प्रशिक्षण और लोक सेवाओं के जीवन वृति के विकास पर बल दिया गया है।
केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने कई प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए हैं जो लोक सेवकों को समय-समय पर उनके उनके सेवाकाल के दौरान भी सामान्य और व्यवसायिक दोनों प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या अधिक है। स्वाधीन भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण हेतु निम्नलिखित संस्थान हैं-

- लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी।
- सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद।
- भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।
- सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली।
- प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद।

- राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद।
- रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा।
- राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्धन, संस्थान।
- राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर।

कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रीय संस्थानों का विवरण निम्न है-

1. **लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी-** भारत में उच्च लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षण केंद्र है। वर्ष 1959 में भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली को संयुक्त कर इस संस्थान की स्थापना की गई थी। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी नाम दिया गया। यह अकादमी भारतीय सिविल सेवाओं के सदस्यों को सामान्य बुनियादी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शुरुआती स्तर पर प्रशिक्षण प्रदान करती है। अखिल भारतीय एवं केंद्रीय सेवाओं के नवनियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन संस्थान मसूरी में 4 माह के आधारभूत पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण दिया जाता है और तत्पश्चात वे अपनी-अपनी प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। आधार पाठ्यक्रम का उद्देश्य सामान्य दृष्टिकोण का विकास है तथा मौलिक विषयों से शिक्षा देने के लिए सभी अखिल भारतीय सेवाओं के प्रथम वर्ग के लिए 5 महीने का पाठ्यक्रम आधारित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है।

   वर्ष 1969 से भारत सरकार ने भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण के लिए नया प्रारूप प्रस्तुत किया है, जिसे सैंडविच पाठ्यक्रम अर्थात मिश्रित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है। अधिकारियों, जिनका सेवा का लाभ हो 15 साल हो चुका है, वह छोटे-छोटे पाठ्यक्रम गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में सम्मिलित होते हैं । इन पाठ्यक्रमों का संबंध सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय नीति, अंतर विभागीय नियोजन और समन्वय आदि से संबंधित होता है। इन पाठ्यक्रमों के लिए सामान्य और प्राविधिक दोनों प्रकार के अधिकारी आमंत्रित किए जाते हैं। वर्तमान में इस अकादमी में तीन प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है- अखिल भारतीय परीक्षा अधीन अधिकारियों के अंतिम परीक्षा नियमों के अंतर्गत पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए 1 वर्ष पाठ्यक्रम तथा  10 साल तक के अधिकारियों के लिए सप्ताह का पाठ्यक्रम।

   संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा में चयनित उम्मीदवार जिन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा तथा केंद्रीय सेवा वर्ग का आवंटित किया जाता है, इन्हें एक साथ लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी उत्तराखंड में आधारभूत पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाता है। आधारभूत पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षु अधिकारियों को लोक सेवाओं की मूलभूत जानकारी देने, उन्हें अभिप्रेरित करने, संविधान और प्रशासन तंत्र को समझने तथा भारतीय परिवेश और मूल्यों को जानने के अतिरिक्त अन्य सेवाओं के साथ समन्वय का भाव दिखाना होता है। आधार पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षु अधिकारियों को भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजनीतिक सिद्धांत, भारत का संविधान और शासन, लोक प्रशासन विधि, आधारभूत अर्थशास्त्र और जनसंख्या अध्ययन तथा हिंदी भाषा का सामान्य अध्ययन करवाया जाता है। इस आधारभूत प्रशिक्षण के बाद आई.ए.एस. संवर्ग के अधिकारी अकादमी में ही बने रहते हैं, जबकि अन्य सेवाओं के अधिकारी अपने विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थानों में अग्रिम प्रशिक्षण हेतु चले जाते हैं। लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में व्यवसायिक प्रशिक्षण भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए इसके बाद प्रारंभ

होता है जो 26 सप्ताहों तक चलता है। इसके अंतर्गत शिक्षकों को प्रशासनिक सेवाओं के दायित्वों का अध्ययन कराया जाता है।

व्यवसायिक प्रशिक्षण के पहले चरण के पूर्ण होने के बाद प्रशिक्षु अधिकारी आवंटित राज्य में जिला स्तरीय व्यवसाय प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जो 1 वर्ष का होता है। इस दौरान 3 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण जिसमें उन्हें राज्य के प्रशासनिक तंत्र से संबंधित सामने महत्वपूर्ण बातें सिखाई जाती है। इसके उपरांत प्रशिक्षु अधिकारियों को वास्तविक प्रशासनिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यालयों एवं क्षेत्रों में भेजा जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य सामान्य कानून एवं नियम, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय एवं राजस्व प्रशासन, भूमि सुधार और नियोजन तथा विकास का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना होता है।

2. **सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद-** केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू 1975 तक भारतीय पुलिस सेवा के नए नियुक्त अधिकारियों को प्रवेश के समय व्यवसायिक प्रशिक्षण देता था। अब इसका कार्य राष्ट्रीय पुलिस अकादमी हैदराबाद करता है । केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू अब भारतीय पुलिस सेवा और राज्य पुलिस सेवा दोनों के मध्यवर्ती और वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को पुनःचर्या प्रशिक्षण और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करता है। यह अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के नए अधिकारियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करता है। इस अकादमी का उद्देश्य भारतीय पुलिस के लिए ऐसे अधिकारियों को प्रशिक्षण द्वारा तैयार करना था जो बल का नेतृत्व ईमानदारी समर्पण और जनसेवा की भावना के साथ कार्य करें। केंद्रीय सचिव की अध्यक्षता में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के रूप में लेकर एक सलाहकार बोर्ड गठित किया जाता है जो भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करता है। यह पुलिस अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए बुनियादी पाठ्यक्रम सेवाकालीन प्रबंधन पाठ्यक्रम आयोजित करती है। साथ ही पुलिस और अर्धसैनिक बलों के पुलिस प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुशासन, चरित्र, अपराध शाखा, व्यवहारिक ज्ञान, विद्रोह और आतंकवाद, आपदा प्रबंधन, आम जनता-पुलिस संबंध पर विशेष बल देती है।
3. **प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज हैदराबाद-** प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना प्राविधिक शिक्षा संबंधी अखिल भारतीय परिषद की सिफारिश पर 1957 में हुई थी। इंग्लैंड में स्थापित हैनले एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज की तर्ज पर गठित की गई है। सामान्यतया 8 से 15 वर्ष की व्यावहारिक अनुभव के आधार पर हर मनुष्य जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित व्यक्तियों के साथ रहने के कारण अपने कार्य के संबंध में एक अलग स्थिति में सोच कर उससे लाभ उठा सकता है तथा यह भी संभव है कि उसे उच्चतर उत्तरदायित्व के योग्य बनाने हेतु यह एक सर्वोत्तम सफल प्रमाणित शैक्षणिक चरण है। निजी क्षेत्र के प्रशासन सार्वजनिक क्षेत्र के सदस्य प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में 10-10 की संख्या में सिंडिकेट के रूप में बांट दिए जाते हैं। विभिन्न विषयों के अनुभवी सदस्यों को एक साथ अपने अनुभवों को साझा करने का एक मंच प्रदान किया जाता है। शासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में इस प्रकार के पाठ्यक्रम के मुख्य अंश संगठनों की संरचना, आंतरिक संबंध और प्रशासन तथा जीवन से संबंधित होते हैं। इन विषयों में अर्थशास्त्र, आर्थिक क्रियाएं, आर्थिक संस्थाएं, नियोजन और विकास, व्यापारिक संबंध एवं सरकार, संविधान की कार्यप्रणाली, प्रबंधन, सार्वजनिक व्यापारिक लेखा तथा उद्योग जगत से संबंधित सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। प्रशिक्षण प्रणाली सामूहिक चर्चा के आधार पर होती है। विभिन्न सुझावों के आधार पर एक विस्तारपूर्वक रिपोर्ट तैयार की जाती है और इन पर व्यापक चर्चा होती है।

4. **राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान हैदराबाद-** 1956 में स्थापित संस्थान ग्राम विकास प्रशासन के क्षेत्र में नियुक्त उच्च और मध्यम स्तर के लोक सेवकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम में आयोजित करता है तथा ग्राम विकास से के क्षेत्र में यह अनुसंधान कार्य भी संपादित करता है। राष्ट्रीय विकास संस्थान हैदराबाद जून 1958 में इस उद्देश्य के साथ स्थापित किया गया था कि अधिकाधिक संख्या में ऐसे महत्वपूर्ण कर्मचारी तैयार किए जाएं, जो कार्यक्रम के प्रशासकीय एवं समाजशास्त्रीय पहलुओं से परिचित हो। ग्रामीण विकास में अध्ययन, अनुसंधान करना इस संस्था का प्रमुख अंग है। यह ग्रामीण विकास संस्थान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन करता है, जिसमें आधारभूत जानकारियां प्रदान की जाती है। पाठ्यक्रम में प्रतिभाग करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी अपने विचारों एवं अनुभवों के परस्पर आदान-प्रदान से सामुदायिक विकास कार्यक्रम और समग्र राष्ट्रीय योजना के बीच अंतर संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही सामुदायिक विकास के लक्ष्य तक पहुंचने में संतुलन और समन्वय के प्रयोग पर भी इस कार्यक्रम में बल दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम सामान्य प्रशासकीय नमूने जैसा संगठित प्रशिक्षण नहीं होता बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य कार्यक्रम में लगे प्रमुख कर्मचारियों में नए विचारों को जगाना और अनुभवों के आधार पर उन्हें बेहतर मंच प्रदान करना होता है। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद में विकास आयुक्त विकास से जुड़े अन्य अधिकारी शासन के सचिव, उप सचिव, प्राविधिक विकास विभागों के प्रधान एवं क्षेत्रीय पदाधिकारी, आयुक्त, जिलाधीश, अतिरिक्त जिलाधीश, चयनित खंड विकास अधिकारी तथा विविध केंद्र सरकार के मनोनीत अधिकारी और कर्मचारी भी प्रतिभाग करते हैं। यह संस्थान जनप्रतिनिधियों को भी प्रशिक्षित करने का कार्य संपादित करता है। इसके अंतर्गत संसद और विधानमंडल के सदस्य, जिला पंचायत के अध्यक्ष एवं सदस्य, विश्व विद्यालय के प्रतिनिधि एवं अन्य देशों से भाग लेने वाली व्यक्तियों को भी यह प्रशिक्षित करता है।
5. **भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली-** भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना पॉल अपेल्बी रिपोर्ट 1953 की अनुशंसा के आधार पर 1954 में नई दिल्ली में की गई थी। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, लोक प्रशासन में अनुसंधान के अलावा केंद्रीय और राज्य सरकारों के वरिष्ठ और मध्य स्तर के कर्मचारियों के लिए अल्पकालिक अभिविन्यास और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करता है। यह पाठ्यक्रम बड़े स्तर के अधिकारियों के लिए नियमित रूप से संचालित किए जाते हैं जो विशेषीकृत व्यवसायिक पाठ्यक्रम संबंधी विषयों के वरिष्ठ अधिकारियों और विशेषज्ञों के व्याख्यान पर निर्भर करता है। यह संस्थान विविध पाठ्यक्रमों द्वारा लोक सेवकों को लोक प्रशासन के विविध पहलुओं से परिचित कराता है। सामान्यतः केंद्र और राज्य सरकारों की उप सचिव एवं अवर सचिवों की श्रेणी के कर्मचारी इन पाठ्यक्रमों में भाग लेते हैं। मध्य श्रेणी के अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम लगातार संचालित किए जाते हैं जिसमें विचार-विनिमय का अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त समस्याओं के संबंध में आधुनिकतम विचारों का आदान-प्रदान भी होता है। इसके साथ ही सामूहिक चर्चा, विचारों के आदान-प्रदान की आधार पर प्रशिक्षण कार्य संपादित किया जाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली 1975 से लगातार 9 माह का शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करता रहा है जो देश का एकमात्र अनूठा पाठ्यक्रम है।
6. **रेलवे स्टाफ कॉलेज, वड़ोदरा-** यातायात परिवहन तथा वाणिज्य विभाग तथा रेलवे लेखा सेवा के लिए नियुक्त कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त बड़ोदरा का स्टाफ कॉलेज सी भारत पदाधिकारियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम का आयोजन भी करता है। भारतीय रेलवे लेखा सेवा के नवनियुक्त कर्मचारी भी आने में 2 माह का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व्यवहारिक होता है। इसका सीधा संबंध नवीनतम कार्यप्रणाली से होता है।

7. **सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली-** इस संस्थान का पुराना नाम केंद्रीय सचिवालय प्रशिक्षण है जिसकी स्थापना 1948 में की गई थी। केंद्रीय सचिवालय और क्षेत्रीय संगठन के पदाधिकारियों के पदों के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए संस्थान की स्थापना की गई थी। इसमें संगठन और नीतियां कार्यालय की कार्यप्रणाली वित्तीय नियम और विनियम इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है। शिक्षण पूर्ण करने के पश्चात व्यवहारिक प्रशिक्षण के लिए इन कर्मचारियों को विभिन्न मंत्रालय में नियुक्त किया जाता है। उच्च श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों के लिए यह विद्यालय पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

कई केंद्रीय सेवाओं के अलग-अलग शिक्षण संस्थान भी स्थापित है जो अपने लोक सेवकों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। पुलिस, आयकर, लेखा और लेखा परीक्षा, रेलवे, दूरसंचार, विदेशी व्यापार आदि सेवाओं के क्षेत्र में विभिन्न व्यवसायिक संस्थानों द्वारा उनके संबंधित सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए भी नया पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। राज्य में इस प्रकार की व्यवस्था विगत कुछ वर्षों में देखने को मिली है। इसके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालय लोक प्रशासन और सार्वजनिक उद्यम विभाग आदि भी उच्च और मध्यम स्तरीय लोक सेवकों के लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करते हैं। आयकर प्रशिक्षण विद्यालय, नागपुर; रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा; सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय वन अनुसंधान संस्थान देहरादून; केंद्रीय लेखा परीक्षा और लेखा प्रशिक्षण स्कूल शिमला; अखिल भारतीय स्थानीय स्वशासन संस्थान मुंबई; राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय नागरिक सेवा महाविद्यालय नागपुर एवं प्रशिक्षण संस्थान सहारनपुर; डाक स्टाफ कॉलेज गाजियाबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान हैदराबाद, बेंगलुरु, कोलकाता, लखनऊ, इंदौर, कोजिकोंड, चेन्नई; केंद्रीय संस्थान मुंबई; भारतीय राजस्व सेवा प्रशिक्षण संस्थान नागपुर ;राष्ट्रीय जन सहयोग और बाल विकास संस्थान नई दिल्ली; जयपुर लोक प्रशासन संस्थान ; हिमालय पर्वतारोहण संस्थान पटियाला ; पर्यावरण अध्ययन संस्थान नई दिल्ली; विविध क्षेत्रों में भारत के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान है।

## 11.6 राज्य प्रशिक्षण संस्थान

केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थानों के अतिरिक्त मध्यवर्ती स्तर पर राज्य की लोक सेवाओं के लिए राज्य प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई है। विगत कुछ वर्षों में राज्य सरकारों के कार्यों में अत्यधिक बदलाव आया है और राज्य के कार्यों का दायरा अप्रत्याशित रूप से बढ़ा है। फलस्वरूप राज्य लोक सेवा आयोग से चयनित लोक सेवकों को राज्य की प्रकृति के अनुरूप विकासात्मक एवं नागरिक सुविधाएं प्रदान करने हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की गई है। कर्मचारियों की संख्या में निरंतर वृद्धि के कारण विशेष तकनीक, आधुनिक प्रबंध कौशल और तकनीकी स्तर की वृद्धि हेतु जैसे आयाम निरंतर जुड़ते गए हैं।

अधिकांश राज्यों में प्रशिक्षण का कार्य काफी लंबे समय से उपेक्षित रहा है। हालांकि प्रशासनिक सुधार समितियों द्वारा राज्य के विभिन्न स्तरों के लोक सेवकों को संस्थागत प्रशिक्षण एवं आधारभूत प्रशिक्षण देने पर समय-समय पर बल दिया गया। महाराष्ट्र प्रशासनिक पुनर्गठन समिति (1962 -1968), आंध्र प्रदेश प्रशासनिक सुधार समिति (1964 -1965) और मैसूर वेतन आयोग (1966 -1968) ने इस संदर्भ में अपनी अनुशंसाएँ प्रस्तुत की थी। प्रशासनिक सुधार आयोग और राज्य स्तर के प्रशासनिक अध्ययन दलों द्वारा लोक सेवकों को प्रशिक्षण की आवश्यकता के संदर्भ में अनुशंसा भी की गई जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए अपना एक प्रशिक्षण कॉलेज या संस्थान की आवश्यकता पर बल दिया गया। अध्ययन दलों के अनुसार प्रशिक्षण एक सतत प्रक्रिया है और यह न केवल नए नियुक्त कर्मचारियों को ही दिया जाना चाहिए, बल्कि उसे भी देना चाहिए जो पहले से सेवारत हैं।

प्रत्येक राज्य का अपना एक अधिकारी प्रशिक्षण विद्यालय होना वांछनीय है। विभिन्न संस्थाएं राज्यों में प्रशिक्षण के संबंध में राज्य प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करने के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं।

देश में लगभग 21 राज्य प्रशिक्षण संस्थान हैं जिनमें महत्वपूर्ण संस्थान निम्न हैं- प्रशासनिक संस्थान, हैदराबाद। सरदार पटेल लोक प्रशासन संस्थान, अहमदाबाद। हरियाणा लोक प्रशासन संस्थान, चंडीगढ़। हिमांचल प्रदेश लोक प्रशासन संस्थान, शिमला। सरकारी प्रबंधन संस्थान, त्रिवेंद्रम। पंजाब राज्य लोक प्रशासन संस्थान, चंडीगढ़। एच. सी. एम. राजस्थान लोक प्रशासन संस्थान, जयपुर। प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान, कोलकाता। प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान, नैनीताल। राज्य आयोजना संस्थान, लखनऊ और प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर।

राज्य प्रशिक्षण संस्थान सामान्यतया विशिष्ट कार्यों का निष्पादन करते हैं, जो निम्न हैं-

1. राज्य में आबंटित अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों को राज्य की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा उनके कार्यों से संबंधित राज्य के प्रशासनिक तंत्र से परिचित कराना तथा उन्हें उस राज्य की विशेषताओं को समझने के योग्य प्रशिक्षित करना।
2. केंद्रीय व राज्य सेवाओं के कर्मचारियों के लिए विभिन्न मंत्रालयों द्वारा प्रायोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन।
3. राज्य सरकार के नवनियुक्त कर्मचारियों को प्रशासनिक तंत्र के मूलभूत मूल्यों एवं उनसे जुड़े विविध आयामों का परिचय भी राज्य प्रशिक्षण संस्थानों का कार्य है।
4. राज्य प्रशिक्षण संस्थान सामान्य प्रबंधन, वित्तीय प्रबंधन, कार्यालय प्रबंधन, कंप्यूटर आदि विशिष्ट विषयों का प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं। सुविधा रहित संस्थानों या विभागों में मूलभूत अवस्था अपना ना होने के कारण भी प्रशिक्षण संस्थान ऐसे कार्यक्रमों को संचालित करते हैं।
5. राज्य सरकार के अधिकारियों के लिए उनके रुचि के विशिष्ट क्षेत्रों में पुनश्चर्या और सेवाकाल के दौरान दिए जाने वाले प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों का आयोजन भी राज्य प्रशिक्षण संस्थान करते हैं।
6. राज्य के विभागों एवं प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने का काम भी राज्य प्रशिक्षण संस्थान द्वारा किया जाता है।
7. राज्य प्रशिक्षण संस्थान यह भी सुनिश्चित करते हैं कि समस्त विभागों को समुचित प्रशिक्षण दिया जाए और राज्य स्तर पर इन सभी क्रियाकलापों का समन्वय भी किया जाए।

इस प्रकार देश में विद्यमान विभिन्न राज्य प्रशिक्षण संस्थान में लोक सेवकों को विविध प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, परंतु उनकी संरचना और कार्यक्रमों में एकरूपता का अभाव दिखता है। वर्तमान परिस्थिति में एकरूपता आवश्यक है और यह कार्य राज्य प्रशिक्षण संस्थानों को अन्य संस्थानों से जोड़कर किया जा सकता है। केन्द्रीय संस्थानों की बेहतर तकनीकों का भी उपयोग किया जा सकता है। राज्य प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। कार्यकुशलता, प्रभावशीलता, नैतिकता आदि जटिल एवं चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रशिक्षण को ज्ञान कौशल और अभिवृत्ति में वृद्धि का कारक बनना होगा। साथ ही लोक सेवकों को नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान एवं सूचना से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है।

## 11.8 प्रशिक्षण संस्थानों की महत्ता

राज्य के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में शिक्षण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की उपयुक्त योजना का निर्माण आवश्यक हो गया है। नियुक्ति के पश्चात प्रशासकीय क्षमता पर कार्मिकों के प्रशिक्षण का काफी प्रभाव पड़ता है। सरकार के प्रत्येक कार्य के लिए उसके अनुरूप प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। संसदीय प्रजातंत्र की परंपरा के प्रति सम्मान की भावना का विकास एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि लोक सेवकों को दक्ष और कार्य कुशल बनाने के साथ-साथ उन्हें तदनुरूप प्रशिक्षित भी

किया जाए। भारत विविधताओं का देश होने के कारण अलग-अलग प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है। ग्रामीण एवं शहरी विभाजन रेखा तथा निरंतर बदलते परिदृश्य में लोक सेवकों का अभिमुखीकरण आवश्यक तथ्य है।
प्रशिक्षण की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परंपरा एक प्रथा थी। इसमें गुरु से स्पष्ट ज्ञान, कार्यकुशलता और कला सीखने के लिए विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरुकुल आश्रम में रहते थे तथा विविध प्रकार के शिक्षाओं से प्रशिक्षित होते थे। परंतु यह व्यवस्था केवल समाज के उच्च वर्गों तक सीमित थी। सामान्य नागरिकों का व्यवसाय उनके जन्म और जाति के आधार पर तय होता था तथा उनके परिवार या समुदाय के अनुरूप ही औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। निजी क्षेत्र, व्यापार और प्रबंध के क्षेत्र में यूरोप में प्रारंभ औद्योगिक क्रांति के पश्चात व्यवस्थित और प्रणाली प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। उद्योग विस्तार के बाद कार्य कुशल और विशेषज्ञ कामगारों की आवश्यकता हुई ताकि कार्यकुशलता और गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। इस प्रकार प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता औद्योगिक क्रांति के काल में प्रारंभ हुई। परंतु सामान्य प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण को जरूरी नहीं समझा गया क्योंकि सरकार के कार्य सीमित थे। लोक सेवकों के परीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से अनुभव द्वारा सीखने की उम्मीद की जाती थी और यही प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण आदमी के राज्य और लोक कल्याणकारी राज्य हो गए हैं। सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है तथा समय के अनुसार वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति प्रगति ने जीवन में काफी बदलाव लाए हैं जिससे शासन के कार्यों में कई गुना वृद्धि हुई है। प्रशासन को चलाने के लिए अत्यंत कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है और इसके लिए योजनाबद्ध प्रयोजनमूलक प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की गई है। जिस कारण प्रत्येक देश में लोक सेवकों को किसी न किसी प्रकार से प्रशिक्षण देने के लिए राष्ट्रीय एवं राज्य संस्थान स्थापित किए गए हैं। राज्य प्रशिक्षण संस्थान प्रशिक्षण के संदर्भ में राज्य स्तर पर एक ऐसा संस्थान है जिसका मुख्य कार्य राज्य की प्रमुख सेवाओं के लिए आधारभूत, पुनश्चर्या और सेवाकाल के दौरान दिए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना ही नहीं बल्कि राज्य के सभी विभागों संगठनों के सभी स्तरों के विभिन्न कर्मचारियों की प्रशिक्षण संबंधी आवश्यकताओं का निर्धारण करना और आवश्यक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना भी है। प्रशिक्षण के लिए यह एक बेहतर योजना भी तैयार करती है और समय-समय पर विविध मूल्यांकन द्वारा प्रशिक्षण स्तर के उन्नयन का प्रयास भी करती है।

## 11.9 प्रशिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप लोक प्रशासन के कार्यों में भी अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग में इस कारण लोक सेवकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है। केंद्र राज्य सरकारों ने कई प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए हैं जो लोक सेवकों को समय-समय पर उनके उनके सेवाकाल के दौरान भी सामान्य और व्यवसायिक दोनों प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। भारत जैसे देश में लोक सेवकों को नवीनतम परिवर्तन एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए समय-समय पर यथा अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते रहे हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुई है, लेकिन प्रशिक्षण प्रणाली पूरी तरह से आशाओं पर खरी नहीं उतरती है। लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम विगत कुछ वर्षों से आयोजित की जा रहे हैं उनमें कुछ कमियां प्रतीत होती है। सर्वप्रथम प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या एवं प्रकार की आवश्यकता से अधिक वृद्धि हुई है। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन होने लगा है जो आकर्षक तो प्रतीत होते हैं, लेकिन आवश्यक नहीं होते हैं। इन कार्यक्रमों में प्रशासन की वास्तविक समस्याओं पर सही विचार नहीं होता। प्रशिक्षण एक व्यवसाय सा प्रतीत होने लगा है। बहुधा ऐसे कर्मचारी प्रशिक्षण के लिए प्रेषित किए जाते हैं जिनका चयन वैध

नहीं होता। द्वितीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम विशेषकर लोक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य और चुनौतियों की दृष्टि से व्यावहारिक और उद्देश्य पूर्ण नहीं होते। प्रशिक्षण का कार्मिक प्रबंधन से कोई संबंध है, अक्सर देखने को नहीं मिलता। प्रायः देखने में आता है कि एक व्यक्ति को जिस क्षेत्र में प्रशिक्षण मिलता है उसमें उसकी नियुक्ति नहीं होती। प्रशिक्षण में तकनीकी अध्ययन वालों को मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की शिक्षा नहीं दी जाती है और सामान अध्ययन वाले को विज्ञान आदि की जानकारी दी जाती है। इस प्रकार प्रशिक्षणार्थी का बहुमुखी विकास नहीं हो पाता। बदलते परिदृश्य में जिसे उदारीकरण वैश्वीकरण निजीकरण के कारण प्रशासन की महत्व अधिक बढ़ी है। प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

भारत जैसे विशाल देश में जहां सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण के लिए किए गए प्रबंध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। बदलते परिदृश्य में जिसे उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण के कारण प्रशासन की महत्व अधिक बढ़ा है। प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। कार्यकुशलता, प्रभावशीलता, नैतिकता आदि जटिल एवं चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रशिक्षण को ज्ञान कौशल और अभिवृत्ति में वृद्धि का कारक बनना होगा। साथ ही लोक सेवकों को नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान, सूचना से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। प्रशिक्षण को क्षमता निर्माण का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। लोक सेवकों को दायित्व निर्वहन की योग्य बनाने जनसाधारण के प्रति संवेदनशील बनाने एवं परिवर्तन करने योग्य बनाने के लिए लोक सेवाओं में कार्यकुशलता, मितव्ययिता और प्रभावशीलता लाने के लिए शिक्षण पद्धति का सहारा लिया जाता है। शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। भारतीय प्रशिक्षण पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। बौद्धिक गुणों के विकास के साथ ही भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों में वर्णित गुणों के विकास पर भी बल दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी में परस्पर सहयोग की भावना एवं नेतृत्व आदि गुणों का विकास हो सके। प्रशासकों को सेवा काल के दौरान ही अवकाश देकर प्रशिक्षण हेतु भेजा जाना चाहिए और निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

राज्य प्रशिक्षण संस्थान केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान के साथ मिलकर एक बेहतर योजना को रूप दे सकते हैं। राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों से संपर्क साध कर इन्हें प्रशिक्षण को और प्रोफाइल बनाए जाने की आवश्यकता है। विविध स्तर पर समन्वय स्थापित कर इसे एक रुप दिया जा सकता है। इसी प्रकार जिला स्तर पर नियुक्त नए कर्मचारियों के लिए क्षेत्रीय प्रभागीय जिला स्तर पर विकेंद्रीकृत प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना आवश्यक है। हिमाचल प्रदेश में इस प्रकार के प्रयोग किए गए हैं और लोक प्रशासन संस्थान द्वारा विविध जिलों में इसकी शाखाएं भी स्थापित की गई है। केरल में भी इस प्रकार के प्रयोग सफल रहे हैं। प्रशिक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देना है। पराया प्रशिक्षकों की गुणवत्ता प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रभाव से निर्धारित होती है। प्रशिक्षार्थियों के सम्मुख आने वाले जीवन की वास्तविक कठिनाइयों और उन्हें प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान चर्चा के माध्यम से अध्ययन करने को प्रोत्साहित करना प्रशिक्षण का वास्तविक उद्देश्य है। प्रशिक्षण के संबंध में लगातार विकसित हो रहे तकनीकों को भी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान उपलब्ध कराया जाना चाहिए। व्याख्यान देने की प्रणाली का प्रतिस्थापन मामला अध्ययन आदि प्रणालियों द्वारा प्रशिक्षण को और भी रोचक बनाया जा सकता है। इस प्रकार प्रशिक्षण संस्थान प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नवीनता लाकर प्रशिक्षण कार्यक्रमों को रोचक और प्रभावी बना सकते हैं। राज्य शिक्षण संस्थानों की भूमिका इस प्रकार से काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता निर्भर है। अत: इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज कहाँ स्थापित है?
2. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी किस राज्य में स्थित है?

3. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली की स्थापना कब की गई थी?
4. एच. सी. एम. लोक प्रशासन संस्थान किस राज्य में स्थापित है?
5. रेलवे लेखा सेवा के लिए नियुक्त कर्मचारियों को प्रशिक्षण कहाँ दिया जाता है ?

## 11.10 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों का प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग बन गया है। प्रशिक्षण मनोवृत्ति को परिवर्तन करने तथा उत्पादकता में वृद्धि लाने में सहायक सिद्ध होता है। विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में प्रशिक्षण एक महत्व का केंद्र बिंदु और सरकार के कार्मिक नीतियों का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासनिक क्रियाकलाप जटिल और तकनीकी बन गए हैं जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। लोक सेवकों को उपयुक्त और प्रभावी प्रशिक्षण देने के लिए प्रायः सभी देशों में प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था की गई है। भारत इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों के जिम्मेदार और क्रियाशील बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्धारित किया गया। हाल के वर्षों में प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या में भी काफी विस्तार हुआ है तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रकार और से भाग लेने वालों की श्रेणियों में असाधारण वृद्धि भी हुई है। प्रशिक्षण का महत्व नवीन ज्ञान कौशल और मनोभाव परिवर्तन में स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा रहा है, किंतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों के मूल्यांकन के पश्चात यह प्रतीत होता है की प्रशिक्षण संस्थान अभी भी आवश्यक तत्वों को समावेशित नहीं कर पा रहे तथा नवीनतम परिवर्तनों के अनुसार इन्हें समन्वय स्थापित करने में कुछ समय अवश्य लगेगा।

## 11.11 शब्दावली

मंत्रालय-सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, परिवीक्षाधीन- वास्तविक तैनाती के शुरुआती एक या दो वर्ष की अवधि, जिसमे प्रशिक्षण भी शामिल है, के दौरान लोक सेवकों को परिवीक्षाधीन अधिकारी कहा जाता है, अभिविन्यास- समय के अनुसार ज्ञान को अद्यतन करना, उपबंध- प्रावधान

## 11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** हैदराबाद, **2.** उत्तराखंड, **3.** 1954 में, **4.** राजस्थान, **5.** रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा

## 11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. माहेश्वरी, श्रीराम, 2010, भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
3. चतुर्वेदी, टी. एन., 1989, लोक प्रशासन में प्रशिक्षण: बदलते परिप्रेक्ष्य, आई.आई.पी.ए., नई दिल्ली।
4. माथुर, हरिमोहन, 1982, सेवाकालीन प्रशिक्षण के विषय, आई.आई.पी.ए., नई दिल्ली।
5. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।

## 11.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. सक्सेना, ए.पी., 1985, सरकारी प्रशिक्षण:उद्देश्य और अवसर, आई.आई.पी.ए. नई दिल्ली।

3. डे, बाटा के., 1978 , भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

## 11.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशिक्षण के महत्व एवं प्रकार का वर्णन कीजिए।
2. प्रशिक्षण संस्थानों के उद्देश्य एवं प्रशिक्षण के प्रकार का का मूल्यांकन कीजिए।
3. केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थानों की प्रशिक्षण प्रणालियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. राज्य प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत मे प्रशिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

# इकाई- 12 प्रशासनिक अधिकरण

**इकाई की संरचना**


12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 प्रशासनिक अधिकरण : अर्थ एवं विशेषताएं
12.3 प्रशासनिक अधिकरण का उद्भव एवं विकास
12.4 प्रशासनिक अधिकरण की संरचना
12.5 प्रशासनिक अधिकरण का गठन
12.6 प्रशासनिक अधिकरण के कार्य एवं अधिकार
12.7 प्रशासनिक अधिकरण की कार्य प्रणाली
12.8 प्रशासनिक अधिकरण की भूमिका का मूल्यांकन
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.14 निबन्धात्मक प्रश्न


## 12.0 प्रस्तावना

प्रशासनिक राज्य के उद्भव एवं विकास के साथ लोक प्रशासन के कार्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। फलस्वरुप कार्यपालिका की शक्तियों में वृद्धि हुई है। साथ ही विधायी कार्य भी काफी बढ़े हैं। इन कारणों से अधिकारी तथा कर्मचारियों के मध्य लगातार गतिरोध भी बढ़ा है। 18वीं और 19वीं शताब्दी में न्यायालय नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतंत्रता के संरक्षक के रूप में उभरे। काफी समय तक उन्होंने राज्य के प्राधिकार की कीमत पर सभी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा भी की। कल्याणकारी राज्य के उदय होने पर व्यक्तिगत अधिकारों की अपेक्षा सामाजिक हितों को प्राथमिकता दी जाने लगी। रोजगार की स्थिति पर सामूहिक नियंत्रण के विकास, रहन-सहन के तरीके और लोगों की बुनियादी आवश्यकता में परिवर्तन के फलस्वरुप ऐसे न्यायालय की तकनीकी आवश्यकता महसूस की जाने लगी जो न्यायालय में मुकदमे बाजी द्वारा दी गई सुविधा की अपेक्षा समय के अनुसार सामाजिक आवश्यकताओं के अधिक अनुकूल हो। इस प्रकार प्रशासन का एकीकरण सामाजिक नीति और विधान लागू करने के लिए एक तंत्र के रूप में उभरा। साथ ही, व्यापार और वाणिज्य के तेजी से विकास के फलस्वरूप सामान्य न्यायालय बढ़ते हुए कार्य भार से निपटने की स्थिति में नहीं हैं। सेवा संबंधी तकनीकी ज्ञान एवं अन्य आवश्यकताओं को देखते हुए विश्व के अधिकांश देशों में प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना की गई ताकि कार्यरत कर्मचारियों को शीघ्र एवं सस्ताप न्याय दिलाया जा सके। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण प्रशासनिक अधिकरण की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है।

इस अध्याय के माध्यम से पाठकों को प्रशासनिक अधिकरण से परिचय कराना है। इसमें प्रशासनिक अधिकरण के अर्थ एवं महत्व, प्रशासनिक अधिकरण का उद्भव एवं विकास एवं प्रशासनिक अधिकरण की संरचना के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा। साथ हीं प्रशासनिक अधिकरण का संगठन, प्रशासनिक अधिकरण के कार्य एवं अधिकार,

प्रशासनिक अधिकरण की कार्य प्रणाली, प्रशासनिक अधिकरण की भूमिका का मूल्यांकन आदि मुद्दों पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा।

## 12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासनिक अधिकरण के अर्थ एवं विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- प्रशासनिक अधिकरण का उद्भव एवं विकास, प्रशासनिक अधिकरण की संरचना के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- प्रशासनिक अधिकरण का संगठन एवं प्रशासनिक अधिकरण के कार्य एवं अधिकार के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे तथा
- प्रशासनिक अधिकरण की कार्य प्रणाली तथा प्रशासनिक अधिकरण की भूमिका का मूल्यांकन से भी आप अवगत होंगे।

## 12.2 प्रशासनिक अधिकरण: अर्थ एवं विशेषताएं

कार्मिक प्रबंधन को नियंत्रित करने वाले नियमों तथा विनियमों की विस्तृत व्यथवस्थान के बावजूद भी कुछ सरकारी कर्मचारी कभी-कभी सरकार के निर्णयों से व्यतथित हो सकते हैं। इन मामलों का निपटारा करने में न्याभयालयों को कई वर्ष लग जाते थे और मुकद्दमेबाजी बहुत महंगी हो जाती है। सरकार के निर्णयों से व्योथित कर्मचारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय उपलब्ध करवाने के प्रयोजन से, सरकार ने 1985 में केन्द्री य प्रशासनिक अधिकरण स्थायपित किया था जो अब सेवा से सम्बेन्धित ऐसे सभी मामलों पर विचार करता है, जिन पर पहले उच्च न्यायालयों सहित उनके स्तर तक के न्यातयालयों द्वारा कार्रवाई की जाती थी।

प्रशासनिक अधिकरण एक अर्द्ध-न्यायिक संस्था है जिसे प्रशासनिक या कर-संबंधी विवादों को हल करने के लिये स्थापित किया जाता है। यह विवादों के अधिनिर्णयन, संघर्षरत पक्षों के बीच अधिकारों के निर्धारण, प्रशासनिक निर्णयन, किसी विद्यमान प्रशासनिक निर्णय की समीक्षा जैसे विभिन्न कार्यों का निष्पादन करती है। सामान्य रूप से प्रशासनिक अधिकरण का आशय ऐसे व्यक्ति या संस्था से है जिसके पास दावों तथा विवादों पर निर्णयन, अधिनिर्णयन या निर्धारण का प्राधिकार होता है।

प्रशासनिक अधिकरण की आवश्यकता विविध कारणों से आवश्यक है। विभिन्न न्यायालयों में लंबित मामलों की बड़ी संख्या से निपटने के लिये विभिन्न विधानों के तहत घरेलू अधिकरणों और अन्य अधिकरणों की स्थापना की जाती है। न्यायालयों के कार्यभार को कम करने, निर्णयन में तेजी लाने और एक ऐसे मंच का निर्माण करने हेतु जहाँ अधिवक्ताओं और विशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ उठाया जा सके। प्रशासनिक अधिकरण न्याय तंत्र में एक महत्व पूर्ण और विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। वे लंबित मामलों के बोझ से दबे न्यायालयों के बोझ को कम करने हेतु पर्यावरण, सशस्त्र बलों, कराधान और प्रशासनिक मुद्दों से संबंधित विवादों की सुनवाई करते हैं।

प्रशासनिक अधिकरणों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. प्रशासनिक अधिकरण किसी विधि के अंतर्गत गठित सांविधिक संस्थाएँ हैं।
2. प्रशासनिक अधिकरण में राज्य की न्यायिक शक्ति निहित होती है और इस प्रकार शुद्ध प्रशासनिक कार्यों से अलग यह अर्द्ध-न्यायिक कार्य करते हैं।
3. प्रशासनिक अधिकरण औचित्य एवं और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर कार्य करते है।

4. प्रशासनिक अधिकरण नागरिक प्रक्रिया न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रक्रिया व साक्ष्य के कठोर नियमों का पालन करने हेतु बाध्य नहीं होते है।
5. इनसे न्यायसंगत, पारदर्शी और निष्पक्ष रूप से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है।

## 12.3 प्रशासनिक अधिकरण का उद्भव एवं विकास

एक लोक कल्याणकारी राज्य आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास हेतु विविध क्रियाकलापों को संपादित करती है। स्वतंत्र भारत के सामने राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक-आर्थिक प्रगति एक चुनौती के रूप में उभरा था। सामाजिक-आर्थिक प्रगति एवं पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन के फलस्वरुप भारत में राष्ट्र निर्माण का बृहत् कार्य स्वतंत्रता के पश्चात बड़े पैमाने पर संपादित हुआ। क्रियाकलापों में परिवर्तन के फलस्वरुप सरकार के लक्ष्य और प्रशासन की कार्रवाई काफी हद तक अपने आयामों में विस्तृत होती चली गई। लोक प्रशासन के एक नए आयाम विकास प्रशासन के उद्भव के बाद लोक नीतियों का क्रियान्वयन नौकरशाही पर निर्भर हो गया। अनंतर लोक सेवकों के कार्यों में विस्तार होता गया और भारत में कार्यों के विविध पहलू जुड़ते चले गए। विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक संतुष्ट और प्रेरित लोग कार्मिक की महत्ता को भारतीय प्रशासन ने आवश्यक समझा। कार्यों में विस्तार, राजनीतिक नेतृत्व से अनुबंध तथा कार्य परिवेश को लेकर लोक सेवकों की संतुष्टि समय के साथ उभरने लगी। इन्हीं गतिरोधों और असंतोष को समाप्त करने तथा लोक सेवा कार्मिकों के सेवा संबंधी विवादों का फैसला करने हेतु प्रशासनिक अधिकरण के रूप में एक उपयुक्त संस्थागत ढांचे की स्थापना की गई ताकि संतुष्ट और प्रेरित लोग कार्मिक उच्च प्राथमिकता वाले विकास लक्ष्यों को साकार रूप दे सके।

प्रशासनिक अधिकरणों का विकास बीसवीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण घटना है। समस्याओं के निराकरण हेतु प्रशासनिक अधिकरणों का उद्भव केवल भारत में ही नहीं बल्कि अन्य देशों में हुआ है, जो एक नए प्रकार के न्याय, सार्वजनिक जनहित परक न्याय, प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित किए गए हैं। भारत में भी केंद्र और राज्य स्तर पर समय-समय पर प्रशासनिक अधिकरण स्थापित किए गए, जिनके अधिकार क्षेत्र में व्यापार, उद्योग, बैंकिंग, कराधान जैसी गतिविधियों के क्षेत्र शामिल थे। नियुक्ति तथा सेवा शर्तों से संबंधित अन्य शिकायतों के त्वरित निस्तारण हेतु प्रशासनिक अधिकरणों के गठन का प्रश्न लंबे समय तक भारत सरकार के विचाराधीन ही रहा। न्यायिक संस्थाओं के कार्य में अत्यधिक विस्तार, बढ़ते अदालती मामले, खर्चे एवं समय संबंधी कारणों से लोक कार्मिकों को सुलभ न्याय नहीं मिल पा रहा था। सरकार के साथ उनके विवादों में सरकारी कर्मचारियों को समाधान की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की जा रही थी। सभी वर्गों, श्रेणी या समूह के कर्मचारियों में सेवा संबंधी मामलों के लंबे समय तक विचाराधीन होने के कारण असंतोष बढ़ता जा रहा था। कर्मचारियों के बेहतर अभिप्रेरण तथा आत्मबल के बनाए रखने के लिए समय-समय पर उनकी सेवा संबंधित शिकायतों के निपटारे की आवश्यकता पर बल दिया जाता रहा। कार्यक्षमता प्रभावित होने की भी आशंका समय-समय पर विभिन्न संगठनों ने उठाई। अनंतर प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-1970) ने लोक सेवा अधिकरण की स्थापना की अनुशंसा सरकार को दी, जिसके अनुसार यह अधिकरण उन मामलों में अंतिम अपील प्राधिकरण के रूप में कार्य करें, जहां सरकारी आदेश से कर्मचारी को बर्खास्तगी नौकरी से हटाने और उसकी पदावनति का गंभीर दंड मिला हो। जे. सी. शाह की अध्यक्षता में गठित एक समिति ने वर्ष 1969 में ही एक स्वतंत्र अधिकरण स्थापित किए जाने की सिफारिश की थी, जो केवल सेवा संबंधी मामलों में अंतिम निर्णय ले सके। ऐसा प्रस्ताव सेवा संबंधी मामलों में कर्मचारियों की ढेर सारी याचिकाओं के लंबित होने के कारण किया गया था।

वर्ष 1980 में सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस ओर ध्यान दिलाया था कि सरकारी कर्मचारियों को अदालती लड़ाई में समय गंवाने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। उनके सेवा संबंधी शर्तों एवं कार्यक्षेत्र के विवादों के निस्तारण हेतु लोक सेवा प्राधिकरण की स्थापना आवश्यक है, जिसका सेवा से संबंधित विवादों के हल करने के

मामले में फैसला अंतिम होना चाहिए। कुशल प्रशासन हेतु इसकी आवश्यकता समय-समय पर महसूस की जा रही थी । विविध मंचों के माध्यम से इस आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाया जाता रहा। यह आवश्यक माना गया कि लोक सेवा अधिकरण की स्थापना जनहित में सरकारी कर्मचारियों के कष्ट और शिकायतों का फैसला करने के लिए आवश्यक होगी। भारतीय संविधान में 42वें संविधान संशोधन विधेयक के अनुसार लोक सेवा अधिकरण की स्थापना भारत में की गई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 323 के अनुसार संसद को यह अधिकार मिल गया कि वह सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी निगम या सरकार के नियंत्रण के अधीन या भारत के साथ ही क्षेत्र के अंदर किसी राज्य स्तर के या स्थानीय या दूसरे प्राधिकरण या संघ के मामले के संबंध में सरकारी नौकरी या पद पर नियुक्त किए गए व्यक्तियों की भर्ती और सेवा संबंधित शिकायतों को प्रशासनिक अधिकारों के जरिए निपटाया चुने जाने की व्यवस्था करे।

संविधान के अनुच्छेद-323 'ए' के प्रावधानों के अनुसार लोकसभा में 29 जनवरी 1985 को प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम लाया गया, जिसे 27 फरवरी 1988 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गई। यह प्रावधान संघ और राज्यों के विषयों के संबंध में लोक सेवाओं और सार्वजनिक पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की भर्ती और सेवा शर्तों से संबंधित विवादों और शिकायतों का अधिनिर्णयन करता है। कार्मिक प्रबंधन को नियंत्रित करने वाले नियमों तथा विनियमों की विस्तृत व्यतवस्थाभ के बावजूद भी कुछ सरकारी कर्मचारी कभी-कभी सरकार के निर्णयों से व्य थित हो सकते हैं। इन मामलों का निपटान करने में न्या यालयों को कई वर्ष लग जाते थे और मुकद्दमेबाजी बहुत महंगी थी। प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 तीन प्रकार के अधिकरणों का प्रावधान करता है। केंद्र सरकार एक प्रशासनिक अधिकरण स्थापित करती है, जिसे केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण कहा जाता है। केंद्र सरकार किसी राज्य सरकार के अनुरोध पर उस राज्य के कार्मिकों के लिये एक प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना कर सकती है। दो या दो से अधिक राज्य एक संयुक्त अधिकरण की माँग कर सकते हैं, जिसे संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण कहा जाता है, जो इन राज्यों के लिये प्रशासनिक अधिकरणों की शक्तियों का उपयोग करता है। विभिन्न प्रशासनिक और कर-संबंधी विवादों के समाधान के लिये कई अधिकरण गठित किये गए हैं जिनमें केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, आयकर अपीलीय अधिकरण, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क एवं सेवा कर अपीलीय अधिकरण, राष्ट्रीय हरित अधिकरण, प्रतिस्पर्द्धा अपीलीय अधिकरण, प्रतिभूति अपीलीय अधिकरण आदि शामिल हैं।

प्रशासनिक अधिकरण सामान्य न्यायिक प्रणाली से भिन्न हैं, जो कानूनों की व्याख्या तब करते हैं और उन्हें लागू करते हैं जब न्यायालय द्वारा या अन्य संस्था के तरीकों द्वारा अनौपचारिक दावों में लोक प्रशासन के नियमों को चुनौती दी जाती है। इस प्रकार के अधिकरण न तो न्यायालय है और न ही वे कार्यकारी निकाय हैं । इनकी स्थापना कार्यपालिका द्वारा की जाती है और ये व्यापक नियमों या सामान्य न्यायालयों को शासित करने वाली प्रक्रिया से बंधे नहीं होते। कल्याणकारी राज्य के अंग के रूप में सामाजिक आवश्यकताओं के रूप में अधिकरण आवश्यक प्रतीत हुए हैं। व्यापार और वाणिज्य की प्रगति के कारण सामान्य न्यायालय कार्यभार को निपटाने की स्थिति में नहीं है। जिसके परिणामस्वरूप अत्यधिक देरी होती है, वही प्रशासनिक अधिकरण त्वरित और कम खर्चीला न्याय उपलब्ध कराता है। त्वरित और सस्ती कार्यवाही हेतु प्रशासनिक अधिकरण आवश्यक हो जाते हैं ताकि जनधन को हानि न पहुंचे। जटिल आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया से उत्पन्न तकनीकी समस्याओं को प्रशासनिक अधिकरण त्वरित गति से निष्पादित करता है। केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, सीमा शुल्क और उत्पाद अपीलीय प्राधिकरण, एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार व्यवहार आयोग, निर्वाचन आयोग, विदेशी मुद्रा विनिमय बोर्ड, आयकर अपीलीय प्राधिकरण, रेलवे प्राधिकरण और औद्योगिक प्राधिकरण विविध प्रकार के प्रशासनिक अधिकरण हैं।

## 12.4 प्रशासनिक अधिकरण की संरचना

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 में केंद्र स्तर पर एक केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण और प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्य प्रशासनिक अधिकरण तथा दो या दो से अधिक राज्यों के लिए संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण का प्रावधान किया गया। जुलाई 1985 में प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम पारित होने के बाद केंद्र स्तर पर 1 नवंबर 1985 को केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना की गई, जिसका मुख्य न्यायपीठ दिल्ली में तथा अन्य न्याय पीठें- इलाहाबाद, मुंबई, कोलकाता और चेन्नई में हैं। वर्तमान में जहाँ भी उच्च न्यायालय हैं, वहाँ प्राधिकरण की पीठ है। इस प्रकार देश में कुल 17 मुख्य पीठें तथा 33 डिविशन बेंच हैं। प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 के अनुसार केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण को उन व्यक्तियों के नियुक्ति एवं सेवा संबंधी विषयों के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्राधिकार और प्राधिकार मिल गया, जो अखिल भारतीय सेवाओं और संघ की किसी और लोक सेवा के सदस्य हैं या संघ में किसी सरकारी पद पर हैं या एक ग़ैर सैनिक की क्षमता से प्रतिरक्षा से संबंधित या प्रतिरक्षा सेवाओं में किसी पद पर कार्यरत हैं । प्रशासनिक अधिकरणों का विस्तार जून 1986 में और हो गया जिसके अंतर्गत अधिकरण की और न्याय पीठें क्रमशः अहमदाबाद, हैदराबाद, जोधपुर, पटना, कटक और जबलपुर में स्थापित हुई। 1988 में एर्नाकुलम में 15 वीं  पीठ की स्थापना की गई थी। साथ हीं,नागपुर, गोवा, औरंगाबाद, जम्मू, शिमला, इन्दौर, ग्वालियर, बिलासपुर, राँची, पांडीचेरी, गंगटोक, पोर्टब्लेयर, शिलांग, अगरतल्ला, कोहिमा, इम्फाल, इटानगर, आइज़ोल और नैनीताल में चल पीठें (सर्किट सिटिंग) लगती हैं।

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 के अंतर्गत ही राज्य प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना का प्रावधान किया गया, जो राज्य सरकार के कर्मचारियों के सेवा संबंधी मामलों का निपटारा कर सकें। दो या दो से अधिक राज्यों के लिए संयुक्त प्रशासनिक अधिकरणों का प्रावधान किया गया, जिसके अंतर्गत उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु की सरकारों के विशेष अनुरोध पर संबंधित राज्य सरकारों के कर्मचारियों की सेवा संबंधी मामलों के लिए प्रशासनिक अधिकरणों  की स्थापना की गई है। अरुणाचल प्रदेश के लिए भी एक संयुक्त अधिकरण की स्थापना की गई जो केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की गुवाहाटी पीठ के साथ संयुक्त रूप से काम करती है।

संविधान का भाग X। V-क के प्रावधान को 1976 के 42 वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से जोड़ा गया। अनुच्छेद 323, क और 323, ख क्रमश: अन्य मामलों से संबंधित प्रशासनिक न्यायाधिकरण अथवा अधिकरण प्रदान करता हैं। अनुच्छेद 323, क  के तहत, नियुक्ति और संघ के या किसी राज्य अथवा स्थानीय मामलों या फिर भारत सरकार के स्वामित्व या सरकार द्वारा नियंत्रित किसी भी निगम और सरकार द्वारा नियंत्रित संस्थाओं के संबंध में सार्वजनिक सेवाओं और पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों से संबंधित विवादों और शिकायतों पर अधिनिर्णय करने के लिए संसद के पास प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना करने का अधिकार है।

## 12.5 प्रशासनिक अधिकरण का गठन

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 के प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक प्रशासनिक अधिकरण में एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा न्यायिक और प्रशासनिक सदस्य होंगे जितने संबंधित सरकार- केंद्र सरकार, कोई एक राज्य सरकार या संयुक्त रुप से उचित समझे। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष  के पद पर नियुक्ति हेतु संबंधित व्यक्ति को किसी उच्च न्यायालय का कार्यरत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश होना चाहिए अथवा भारत सरकार में सचिव के पद पर कम से कम दो वर्ष का अनुभव होना चाहिए अथवा केंद्र या राज्य सरकार के अधीन सचिव के समकक्ष वेतनमान किसी अन्य पद पर कार्य किया होना चाहिए। न्यायिक सदस्य के लिए संबंधित व्यक्ति को किसी उच्च न्यायालय का कार्यरत अथवा सेवानिवृत्त न्यायाधीश होना चाहिए या भारतीय विधि सेवा का सदस्य होना चाहिए और उस

सेवा की प्रथम श्रेणी में कम से कम 3 वर्ष तक किसी पद पर कार्यरत होना चाहिए। वही प्रशासनिक सदस्य के रूप में नियुक्ति हेतु संबंधित व्यक्ति को भारत सरकार के अपर सचिव पद पर कम से कम 2 वर्ष तक कार्य किया होना चाहिए या राज्य सरकार के अधीन समकक्ष वेतनमान वाले किसी पद पर कार्य किया होना चाहिए या भारत सरकार के संयुक्त सचिव पद पर कम से कम 3 वर्ष तक कार्य किया होना चाहिए या केंद्र या राज्य सरकार की अधीन समकक्ष पद पर कार्य किया होना चाहिए और उसके पास प्रशासन का पर्याप्त अनुभव होना चाहिए।

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण और राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना के लिए केंद्र सरकार को अधिकृत करता है। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्य शामिल हैं और इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। न्यायिक और प्रशासनिक क्षेत्रों से केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति होती है। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण का कोई भी अन्य सदस्य अपने कार्यकाल के बीच में ही अपना इस्तीफा राष्ट्रपति को भेज सकता है। केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष उपाध्यक्ष और अन्य सदस्य की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा राज्य या संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण से संबंधित नियुक्तियां संबंधित राज्य/राज्यों के राज्यपाल की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। अध्यक्ष उपाध्यक्ष या न्यायिक सदस्य की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह के बिना नहीं की जा सकती है। यदि अध्यक्ष के त्यागपत्र उसकी मृत्यु या अन्य किसी कारण से अध्यक्ष का पद खाली रहता है या वह अनुपस्थिति बीमारी या अन्य किसी कारण से अपना कार्य करने की स्थिति में नहीं होता है तो उपाध्यक्ष अध्यक्ष के पद संभालने तक अथवा अपने कार्य पर वापस आने तक उसके कार्य को संपादित करता है।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य पद ग्रहण करने की तिथि से 5 वर्ष की अवधि के लिए या अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के संदर्भ में 65 वर्ष की अवस्था तक और अन्य सदस्यों के संदर्भ में 62 वर्ष की अवस्था तक जो भी अवधि कम हो उस अवधि तक कार्य करते हैं। प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या न कोई सदस्य राष्ट्रपति को लिखित रूप से अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है लेकिन त्याग पत्र प्रस्तुत करने की तिथि से 3 माह की अवधि पूरी होने तक या अपना कार्यकाल पूरा होने तक या अपने उत्तराधिकारी करके कार्य पर आने की तारीख तक जो भी अवधि सबसे कम हो अपने पद पर बना रहता है। उन्हें उस पद से तभी हटाया जा सकता है जब राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा जांच के पश्चात उनके दुर्व्यवहार या अक्षमता की पुष्टि हो जाने पर इस आधार पर उन्हें हटाने का आदेश दें और इससे पहले उन्हें अधिनियम के उपबंधों के अधीन इन आरोपों के प्रत्युत्तर का उचित अवसर प्रदान किया जाएगा। केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण का अध्यक्ष केंद्र या राज्य सरकार के अधीन भविष्य में नियुक्ति या सेवा के योग्य होगा परंतु केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण का उपाध्यक्ष, उसी प्रशासनिक अधिकरण या किसी अन्य राज्य या संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण के उपाध्यक्ष पद के लिए योग्य होगा। किसी राज्य या संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण का अध्यक्ष केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य की हैसियत से या किसी अन्य राज्य या संयुक्त प्रशासनिक अधिकारियों के अध्यक्ष की हैसियत से नियुक्ति के लिए योग्य होगा। राज्य या संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण का उपाध्यक्ष राज्य प्रशासनिक अधिकरण का अध्यक्ष हो सकता है। वह केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण या अन्य किसी राज्य या संयुक्त प्रशासनिक का अध्यक्ष भी हो सकता है। किसी प्रशासनिक अधिकरण का सदस्य,ऐसे ही प्रशासनिक अधिकरण का अध्यक्ष उपाध्यक्ष की हैसियत से यानी किसी प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य की हैसियत से नियुक्ति के लिए सर्वथा योग्य होगा। इसके अतिरिक्त केंद्रीय, राज्य प्रशासनिक अधिकरण का उपाध्यक्ष, सदस्य और किसी अन्य राज्य प्रशासनिक अधिकारी भारत सरकार या केंद्र सरकार के अधीन किसी और नियुक्तियां की योग्य नहीं होगा। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्य प्रशासनिक अधिकरण के सामने उपस्थित नहीं होंगे, कार्य नहीं करेंगे या वकालत नहीं करेंगे, जिसके अध्यक्ष उपाध्यक्ष या सदस्य रह चुके हैं। अध्यक्ष न्याय पीठ पर

अपने वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का उपयोग करेगा जो उसके पास औपचारिक रूप से प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन भत्ते और सभी सेवा निवृत्ति लाभों समेत सेवा केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित हो, ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा जिससे उन्हें नुकसान हो।

केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की प्रमुख पीठ दिल्ली में स्थित है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न राज्यों में अतिरिक्त पीठें भी हैं। वर्तमान में 17 नियमित पीठ (बैंचे) और 4 सर्किट बेंच हैं। कैट के पास निम्नलिखित सेवा क्षेत्र के मामलों में अधिकार है: अखिल भारतीय सेवा का कोई भी एक सदस्य, संघ के किसी भी सिविल सेवा या संघ के तहत किसी भी सिविल पद पर नियुक्त एक व्यक्ति, रक्षा सेवाओं में नियुक्त कोई भी नागरिक या रक्षा से जुड़ा कोई भी एक पद। हालांकि, रक्षा बलों के सदस्य, अधिकारी, सुप्रीम कोर्ट और संसद के सचिवालय के स्टाफ कर्मचारी कैट के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं।

## 12.6 प्रशासनिक अधिकरण के कार्य एवं अधिकार

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 ने सरकारी कर्मचारियों को न्यासय देने के क्षेत्र में एक नया अध्या6य प्रारम्भम किया। प्रशासनिक अधिकरण का गठन संविधान के अनुच्छेद- 323, ए के आधार पर हुआ है, जिसके अंतर्गत केंद्र सरकार को, केंद्र और राज्यों के कार्य संचालन के संबंध में लोक सेवा और पदों पर नियुक्ति व्य क्तियों की भर्ती और सेवा शर्तों के संबंध में विवादों और शिकायतों के निपटारे हेतु संसद द्वारा पारित अधिनियम के अंतर्गत प्रशासनिक अधिकरण स्थापित करने की शक्ति प्राप्त है। प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 में निहित प्रावधानों के अनुसार, स्थापपित प्रशासनिक अधिकरणों को इसके अंतर्गत आने वाले कार्मिकों की सेवा संबंधी मामलों पर मूल क्षेत्राधिकार प्राप्तत है। सर्वोच्चक न्या यालय के 18 मार्च 1977 के निर्णय के परिणाम स्वमरूप, किसी प्रशासनिक न्याचयाधिकरण के आदेश के खिलाफ संबंधित उच्चक न्यारयालय की खण्डूपीठ को अपील की जाएगी। प्रशासनिक न्यायाधिकरण का क्षेत्राधिकार इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले वादी के केवल सेवा संबंधी मामलों पर है। इस अधिनियम की प्रक्रियात्मेक सरलता का सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसके समक्ष शिकायतकर्ता स्वेयं अपनी पैरवी कर सकता है। शासन अपने मामले विभागीय अधिकारियों अथवा वकील के माध्यंम से प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार न्याययाधिकरण का उद्देश्यो शिकायतकर्ता को त्वसरित और सस्ता न्याय प्रदान करना है।

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के पास निम्नलिखित सेवा क्षेत्र के मामलों में अधिकार है: अखिल भारतीय सेवा का कोई भी एक सदस्य, संघ के किसी भी सिविल सेवा या संघ के तहत किसी भी सिविल पद पर नियुक्त एक व्यक्ति, रक्षा सेवाओं में नियुक्त कोई भी नागरिक या रक्षा से जुड़ा कोई भी एक पद। किन्तु रक्षा बलों के सदस्य, अधिकारी, सुप्रीम कोर्ट और संसद के सचिवालय के स्टाफ कर्मचारी कैट के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते हैं। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संहिता में निर्धारित प्रक्रिया के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण बाध्य नहीं है, किन्तु प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है। एक अधिकरण के पास उसी प्रकार की शक्तियां होती हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संहिता के तहत एक सिविल कोर्ट के पास होती हैं। कोई व्यक्ति अधिकरण में आवेदन कानूनी सहायता के माध्यम से या फिर स्वंय हाजिर होकर कर सकता है। किसी न्यायाधिकरण अथवा अधिकरण के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में तो अपील की जा सकती है लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में नहीं।

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम-1985 के अध्याय-3 में प्रशासनिक अधिकरण के अधिकार क्षेत्र एवं पदाधिकारियों के संबंध में व्यापक रूप से चर्चा की गई है अधिनियम की धाराओं के अनुसार केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 136 के अनुसार भारत के सर्वोच्च न्यायालय को छोड़कर और सभी अदालतों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले क्षेत्राधिकार, अधिकार और प्राधिकार का इस्तेमाल कर सकता है । यह प्रावधान केंद्र या प्रतिरक्षा सेवा के अधीन गैर-सैनिक पदों पर कार्य करने वाले या संघ की लोक सेवाओं के सदस्यों

पर या अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति एवं अन्य सेवा संबंधी मामलों पर प्रभावी होती है। सर्वोच्च न्यायालय को छोड़कर देश में किसी और अन्य किसी ने अदालत को सेवा संबंधी विवादों में किसी क्षेत्राधिकार या प्राधिकार का इस्तेमाल करने का अधिकार नहीं है। राज्य और संयुक्त प्रशासनिक अधिकरणों को वही प्राधिकार प्रदान किया गया है। कानूनी और संवैधानिक अधिकारों को लागू करने के लिए अदालतों का भारत में एक श्रेणीबद्ध ढांचा है। कोई भी व्यक्ति एक अदालत के फैसले के विरुद्ध दूसरी अदालत में अपील कर सकता है लेकिन प्रशासनिक अधिकारियों का ऐसा कोई श्रेणीबद्ध ढांचा नहीं है और सेवा संबंधी मामलों के निपटारे के लिए संबंधित व्यक्ति केवल किसी एक प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष ही अपनी शिकायतें दर्ज कर सकता है। यह व्यवस्था फ्रांस में प्रचलित व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है जहां प्रशासनिक अधिकारियों का एक श्रेणीबद्ध ढांचा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-136 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को प्रशासनिक अधिकारों के फैसलों पर क्षेत्राधिकार प्राप्त है। फिर भी अधिकार के तौर पर कोई भी पीड़ित व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय में अपील नहीं दर्ज कर सकता। यह सर्वोच्च न्यायालय के विवेक पर सर्वथा निर्भर करता है कि वह अपील के लिए विशेष अनुमति दे या ना दे।

प्रशासनिक अधिकरणों के पास रिट जारी करने का अधिकार है। मामलों का निपटारा करते प्रशासनिक अधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत कानूनों एवं नियमों का पालन करते हैं। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रशासनिक अधिकरण लोक व्यवहार संहिता 1988 में वर्णित प्रक्रिया से प्रभावी नहीं है, बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से निर्देशित होती हैं। प्रशासनिक अधिकरण को अपनी प्रक्रिया को चलाने का अधिकार होगा जिसमें जांच के स्थान और समय निर्धारित करने अधिकार है और इसमें यह फैसला भी शामिल है, जिसमें वह कार्यवाही सार्वजनिक रूप से करें या निजी तौर पर करें। अवमानना के संबंध में दंड देने का प्रशासनिक अधिकरण के पास उच्च न्यायालय जैसे ही क्षेत्राधिकार अधिकार और प्राधिकार हैं और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए न्यायालय अवमानना अधिनियम-1971 के प्रावधानों को लागू करने की व्यवस्था भी है । इससे प्रशासनिक अधिकरण की गंभीरता को स्पष्ट रूप दिया गया है तथा आदेशों की अवहेलना ना हो सके इसके लिए भी पर्याप्त आधार भी प्रदान किया गया है।

## 12.7 प्रशासनिक अधिकरण की कार्य प्रणाली

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 प्रशासनिक अधिकरण के कार्यप्रणाली का विस्तार रूप से वर्णन करता है। अध्याय 4 में प्रशासनिक अधिकरण में आवेदन करने के तरीकों के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अंतर्गत प्रशासनिक अधिकरण के अधिकार क्षेत्र में आने वाले किसी मामले में किसी आदेश को लेकर यदि किसी व्यक्ति को कोई शिकायत है तो वह उसके निराकरण के लिए प्रशासनिक अधिकरण में अपना आवेदन कर सकता है । इस प्रकार के आवेदन निर्धारित प्रपत्र पर ही होंगे तथा उनके साथ आवश्यक कागजात और प्रमाण पत्र भी संलग्न होने चाहिए तथा केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित शुल्क भी जमा होना चाहिए । लेकिन आवेदन शुल्क ₹100 से अधिक नहीं होगा। सामान्यतया प्रशासनिक अधिकरण तब तक किसी आवेदन को स्वीकार नहीं करता जब तक उसे यह संतुष्टि ना हो जाए कि आवेदन करता प्रासंगिक नियमों के अंतर्गत उपलब्ध सभी उपायों को आजमा चुका हो। इसमें कोई भी प्रतिवेदन किया गया होना सम्मिलित है अगर प्रतिवेदन करने के 6 महीने के पश्चात कोई आदेश जारी नहीं किया जाता है तो आवेदन करता प्रशासनिक अधिकरण में अपील कर सकता है लेकिन आवेदन या अपील खारिज हो जाने का अंतिम आदेश मिलने के 1 साल के भीतर प्रशासनिक अधिकरण में अपील की जानी चाहिए और अगर खारिज होने का अंतिम आदेश जारी नहीं हुआ है तो 6 महीने की अवधि पूरी करने के पश्चात 1 वर्ष के अंदर यह प्रशासनिक अधिकरण में की जाती है। अगर आवेदन करता प्रशासनिक अधिकरण को

इस बारे में संतुष्ट कर देता है कि उसके पास सामान्य निर्धारित अवधि के अंतर्गत आवेदन न कर पाने के पर्याप्त कारण हैं तो प्रशासनिक अधिकरण उसके आवेदन को 1 साल के बाद भी स्वीकार कर सकती है।

प्रशासनिक अधिकरण प्रत्येक आवेदन पर निर्णय लेने के लिए कागजात लिखित प्रतिवेदन की जांच करती है और कभी-कभी किसी मामले में यदि आवश्यक हुआ तो मौखिक तर्क सुनने के बाद ही अपना फैसला दे देती है। आवेदनकर्ता खुद प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष उपस्थित हो सकता है या किसी पेशेवर वकील के माध्यम से वह अपना पक्ष रख सकता है। दोनों पक्ष प्रशासनिक अधिकरण के मानने को बाध्य हैं उसके आदेश को आदेश में धारित अवधि के अंतर्गत मानना होगा और जहां अवधि का जिक्र नहीं किया गया है, वहां आदेश मिलने के 6 महीने के अंतर्गत उसका पालन करना होगा। कोई भी पक्ष संविधान के अनुच्छेद-136 के अंतर्गत प्रशासनिक अधिकरण के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील भी कर सकता है। प्रशासनिक अधिकरण व्यवहार संहिता 1988 में वर्णित प्रक्रिया से बनी हुई नहीं है। यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से निर्देशित होती है जो स्थिति के अनुसार लोचदार और सामंजस्य की गुंजाइश वाले होते हैं। इसलिए प्रशासनिक अधिकरण किसी स्थिति विशेष के अनुसार अपनी प्रक्रिया को रूपांतरित करने में मदद करते हैं।

राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। आज के संदर्भ में राज्य केवल सतही और विनियामक कार्य ही नहीं करता बल्कि वह लोगों की राज्य के प्रति आकांक्षाओं के अनुरूप आर्थिक विकास को गति देता है और सामाजिक और संस्कृति प्रगति को भी एक परिवर्तित रूप देता है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संहिता में निर्धारित प्रक्रिया के लिए कैट बाध्य नहीं है, किन्तु प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है। एक अधिकरण के पास उसी प्रकार की शक्तियां होती हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संहिता के तहत एक सिविल कोर्ट के पास होती हैं। कोई व्यक्ति अधिकरण में आवेदन कानूनी सहायता के माध्यम से या फिर स्वंय हाजिर होकर कर सकता है। किसी न्यायाधिकरण अथवा अधिकरण के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में तो अपील की जा सकती है लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में नहीं।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संहिता में निर्धारित प्रक्रिया के लिए कैट बाध्य नहीं है, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है। एक अधिकरण के पास उसी प्रकार की शक्तियां होती हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की संहिता के तहत एक सिविल कोर्ट के पास होती हैं। एक व्यक्ति अधिकरण में आवेदन कानूनी सहायता के माध्यम से या फिर स्वंय हाजिर होकर कर सकता है। एक न्यायाधिकरण अथवा अधिकरण के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में तो अपील की जा सकती है लेकिन सुप्रीम कोर्ट में नहीं। चंद्र कुमार मामले (1997) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि एक अधिकरण के आदेश के खिलाफ सीधे सुप्रीम कोर्ट में अपील नहीं की जा सकती है और इसके लिए पीड़ित व्यक्ति को पहले संबंधित उच्च न्यायालय से संपर्क करना चाहिए।

## 12.8 प्रशासनिक अधिकरण की भूमिका का मूल्यांकन

प्रशासनिक अधिकरणों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है और यह प्रणाली उपयोगी और प्रभावी सिद्ध हुई है। इससे जहां एक और सामान्य न्यायालयों को राहत मिली है, वहीं दूसरी ओर कर्मचारियों की सेवा संबंधी मामलों में उनके लिए शीघ्र और सस्ता न्याय भी सुनिश्चित हुआ है। प्रशासनिक अधिकरण के कई ऐसे लोग हैं जो सामान्य न्यायालयों के पास नहीं होते। प्रशासनिक अधिकरण न केवल प्रशासनिक न्याय का सबसे उपयुक्त माध्यम है बल्कि व्यक्तियों को निष्पक्ष न्याय देने का प्रभावी माध्यम भी है। सामान्य तौर पर न्याय न मिलने के बाद कर्मचारी प्रशासनिक अधिकरण से न्याय की उम्मीद अवश्य करते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों से उन्हें उस लाभ की उम्मीद होती है जिन पर उनका अधिकार बनता है। लोचदार और सामंजस्य के कारण, प्रशासनिक अधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कठोर नियमों या विगत फैसले या कानून के नियमों से बंधे ना होने के कारण प्रशासनिक अधिकरण कानून की यांत्रिकता से मुक्त होती है।

सामान्य यात्रियों की लंबी एवं खर्चीली प्रक्रिया की तुलना में प्रशासनिक अधिकारियों से प्राप्त होने वाला न्याय काफी सस्ता है। प्रशासनिक अधिकरण इस प्रकार एक लोकप्रिय न्यायिक मंच है, जहां कर्मचारी आसानी से पहुंच सकते हैं और उन्हें सेवा के छोटे-छोटे मामलों में भी त्वरित न्याय मिल सकता है। न्यायालयों के पास मामले लगातार बढ़ रहे हैं। दीवानी, फौजदारी और संवैधानिक मामलों की याचिकाओं से उत्पन्न व्यस्तताएं भी प्रशासनिक अधिकरणों के स्थापित होने के बाद राहत प्रदान करती है।

इन लाभ या खूबियों के बावजूद प्रशासनिक अधिकारियों के काम करने की कुछ सीमाएं हैं। प्रशासनिक अधिकरण का श्रेणीबद्ध ढांचा नहीं है। ढांचा ना होने के कारण सेवा संबंधी मामलों में न्यायिक पुनरावलोकन की संभावना नहीं होती है । प्रशासनिक अधिकरण इसके साथ ही एक समान नजीर पर निर्भर नहीं होती इसीलिए वे कभी-कभी परस्पर विरोधी या मनमाने फैसले लेते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों के अधिकारी एवं सदस्यों में कानून या न्यायिक कार्य का कोई पिछला अनुभव नहीं भी हो सकता है और उनकी नियुक्ति अन्य आधारों पर भी की गई हो। प्रशासनिक अधिकारियों के पास रिट जारी करने का अधिकार होता है जो अभी तक संविधान की व्यवस्थाओं के अंतर्गत केवल सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय के पास था। न्यायालयों और प्रशासनिक अधिकारियों के बीच रिट जारी करने के प्राधिकार को साझा करने संबंधी स्पष्ट प्रावधान नहीं है। प्रशासनिक अधिकरण की संरचना में किसी अपीलीय मंच के ना होने के कारण काफी असुविधा भी होती है। केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की यदि कोई पीठ फैसला देती है तो यह फैसला पूरे देश पर लागू होता है क्योंकि भारत के लिए केवल एक ही प्रशासनिक अधिकरण और देश के विभिन्न भागों में स्थित पीठ थे। अगर कोई अपील का स्थान भी हो जहां संतोषजनक फैसले के विरुद्ध अपील की जा सकती तो यह सरकारी कर्मचारियों और सरकार के लिए न्याय पाने का सम्मानित तरीका हो सकता था।

सदस्यों की कमी के बावजूद मामलों के निपटाने में अधिकरणों की महत्व पूर्ण भूमिका रही है। अनेक निर्णय, देश में सेवा क्षेत्र के विकास की दिशा में मील के पत्थर साबित हुए हैं। इनमें कुछ सुधार आवश्यक है। अधिकरणों की आंतरिक न्यायिक अधिप्रभाव मूल्यांकन की आवश्यकता है। वर्तमान में अधिकांश कानून अस्पष्टता के दायरे में हैं जहाँ शासन में अधिक पारदर्शिता व सरकार के प्रति प्रतिबद्धता के लिये न्याय-शास्त्र की शिक्षा व प्रशिक्षण दिये जाने की आवश्यक है। अधिकरण के कामकाज में तेज़ी लाने के लिये कृत्रिम-बुद्धिमता के उपयोग की आवश्यकता है। और भी 'अधिकतम शासन, न्यूनतम सरकार' के प्रति प्रतिबद्धता की ज़रूरत है। 'प्रदर्शन, सुधार और कायाकल्प' सिद्धांत की प्राप्ति की दिशा में सेवा शर्तों के विभिन्न पहलुओं में सुधार लाने हेतु महत्व पूर्ण प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। अधिकरण पिछले कुछ वर्षों में शिकायत-मुक्त सेवा वितरण प्रणाली की प्राप्ति की दिशा में सरकार का एक आवश्यक अंग रहा है और इसी दिशा में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम तथा अन्य सेवाओं के मामलें में अनेक महत्व पूर्ण परिवर्तन किये गए हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधिकरण के सदस्यों की सेवा शर्तों के बारे में बताते हुए इस बात पर भी ज़ोर दिया कि सदस्यों का कार्यकाल पर्याप्त अवधि का होना का होना चाहिये। सेवा संबंधी मामलों में मुकदमेबाजी वर्तमान में काफी बढ़ गई है।अधिकरणों में लगभग 50,000 मामले लंबित हैं, अतः मामलों में कमी लाने के लिये निर्णय स्पष्ट, तर्कपूर्ण और संक्षिप्त होने चाहिये तथा न्यायिक आदेशों को सभी तथ्यों, संबंधित कानूनों और पूर्ववर्ती फैसलों को ध्यान में रखकर जारी करना चाहिये।

सरकार के कार्य, परिस्थितियों के अनुसार विगत कई दशकों से परिवर्तित हुए हैं और अब प्रशासन एक गतिमूलक, परिवर्तनमूलक और उद्देश्यमूलक प्रणाली का रूप ले चुका है। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था में कार्मिक अति महत्वपूर्ण हो जाते हैं। कार्मिकों को व्यवसायिक और प्रेरणात्मक रूप से तैयार करने के लिए एक ठोस संगठनात्मक प्रणाली का विकसित होना अत्यावश्यक है और ऐसी संगठनात्मक संरचना की छवि हमें अधिकरणों में दिखाई पड़ती है। अपने कार्यकाल में अधिकरणों ने अपने उद्देश्यों को काफी सीमा तक पूरा किया है और वास्तव में यह सिद्ध कर दिया है कि यह किसी खास वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं बल्कि निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से किसी

भी प्रकार के दबाबों से अपने आप को अछूता पाता है। अधिकरणों ने कार्यपालिका के दबाव के विरुद्ध बिना भय या पक्षपात कर अधिक अच्छी मिसाल कायम की है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना कब की गई थी?
2. प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 कितने प्रकार के अधिकरणों का प्रावधान करता है?
3. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को प्रशासनिक अधिकारों के फैसलों पर क्षेत्राधिकार प्राप्त है?
4. संविधान का भाग X। V-क के प्रावधान को किस संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से जोड़ा गया?
5. केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण का मुख्य न्यायपीठ कहाँ स्थित है?

## 12.9 सारांश

इस इकाई में प्रशासनिक अधिकरणों के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रशासनिक अधिकरण सरकारी कार्य में लगे कार्मिकों की सेवा या सेवा संबंधी मामलों का निपटारा करता है। इस अध्याय में आपको विविध प्रकार के अधिकरण, उनके संगठन, अधिकार क्षेत्र, अधिकारों एवं प्राधिकार के संबंध में भी पर्याप्त जानकारी दी गई है। प्रशासनिक अधिकरण के माध्यम से प्रशासनिक न्याय आधुनिक समाज की विविध एवं पेचीदा आवश्यकताओं को ही कहीं अधिक उपयुक्त तरीके से पूरा करती है। विगत कुछ वर्षों के अनुभव के आधार पर यह उपयोगी और प्रभावी भी सिद्ध हुआ है। इससे ना केवल न्यायालयों को बल्कि कर्मचारियों को भी शीघ्र और सस्ता न्याय भी उपलब्ध हुआ है। कम खर्च ,यांत्रिकता से मुक्ति, तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक लचीलापन, लोचदार विवादों का शीघ्र निपटारा तथा सुगमता के कारण प्रशासनिक अधिकरणों का महत्व बढ़ा है। वही कुछ ऐसे कारक हैं जो उनके प्रभावी ढंग से कार्य करने में बाधक भी हैं। प्रशासनिक अधिकारियों में न्याय क्षेत्र के प्रसिद्ध, प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्तियों के अभाव के कारण तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण और तटस्थता के अभाव ऐसे कारक हैं जो अक्सर समस्याएं खड़ी करते हैं। न्यायिक स्तर बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारियों में न्याय अनुभव वाले व्यक्तियों को अधिक से अधिक संख्या में शामिल किया जाए तथा न्यायालयों में प्रशासनिक व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति और स्पष्ट समझ होनी चाहिए जिससे कि अरुचिकर लक्षणों को भी समाप्त किया जा सके।

## 12.10 शब्दावली

प्रशासनिक अधिकरण- विधायिका द्वारा स्थापित विशेष निकाय, जो न्याय की भावना से कार्य करते हुए प्रशासनिक फैसलों से उत्पन्न विवादों का निपटारा करते हैं।

पीठ- पारंपरिक तौर पर पीठ न्यायाधीशों का प्रतीक होती है और बाहर वकीलों और अधिवक्ताओं का।

न्यायिक समीक्षा- विधायिका या कार्यपालिका द्वारा पारित किसी भी आदेश की संवैधानिकता को निर्धारित करने के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान किया गया अधिकार।

रिट- यह एक कानूनी प्रलेख होता है जो किसी व्यक्ति विशेष को कोई कार्य करने या न करने का आदेश देता है।

रूपांतर- रूप को परिवर्तित या किसी अन्य रूप में विकसित करने से संबंधित है।

कानून का नियम- डाइसी द्वारा प्रस्तुत इस नियम के अनुसार कोई भी व्यक्ति देश के कानून से ऊपर नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता या पद के अनुसार सामान्य कानून के दायरे में है और सामान्य अदालतों के अधिकार क्षेत्र के अधीन भी है।

संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून।
प्रश्रय- किसी पर अनुग्रह करके नियुक्ति प्रदान करने का तरीका
ढ़ांचा- संरचना

## 12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** वर्ष 1985 में, **2.** तीन प्रकार के, **3.** अनुच्छेद- 136, **4.** 42 वें संशोधन अधिनियम, **5.** दिल्ली में

## 12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. माहेश्वरी, श्रीराम, 2010, भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान ,नई दिल्ली।
2. बसु, डी.डी., 1986, प्रशासनिक कानून, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
3. डे, बाटा के., 1978 , भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
4. जैन, पी. सी., 1981, एडमिनिस्ट्रेटिव एडजुडिकेशन : कंपैरेटिव स्टडी ऑफ फ्रांस, यू. के.,यू. एस. ए., एंड इंडिया, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. नायक, राधाकांत, 1989, एडमिनिस्ट्रेटिव जस्टिस इन इंडिया, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।


## 12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
3. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।


## 12.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशासनिक अधिकरण क्या है? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. भारत में प्रशासनिक अधिकरण के उद्भव एवं विकास का मूल्यांकन कीजिए।
3. प्रशासनिक अधिकरण की संरचना पर प्रकाश डालिए।
4. प्रशासनिक अधिकरण के कार्यों की समीक्षा कीजिए।
5. प्रशासनिक अधिकरण के लाभ एवं हानियों का मूल्यांकन कीजिए।